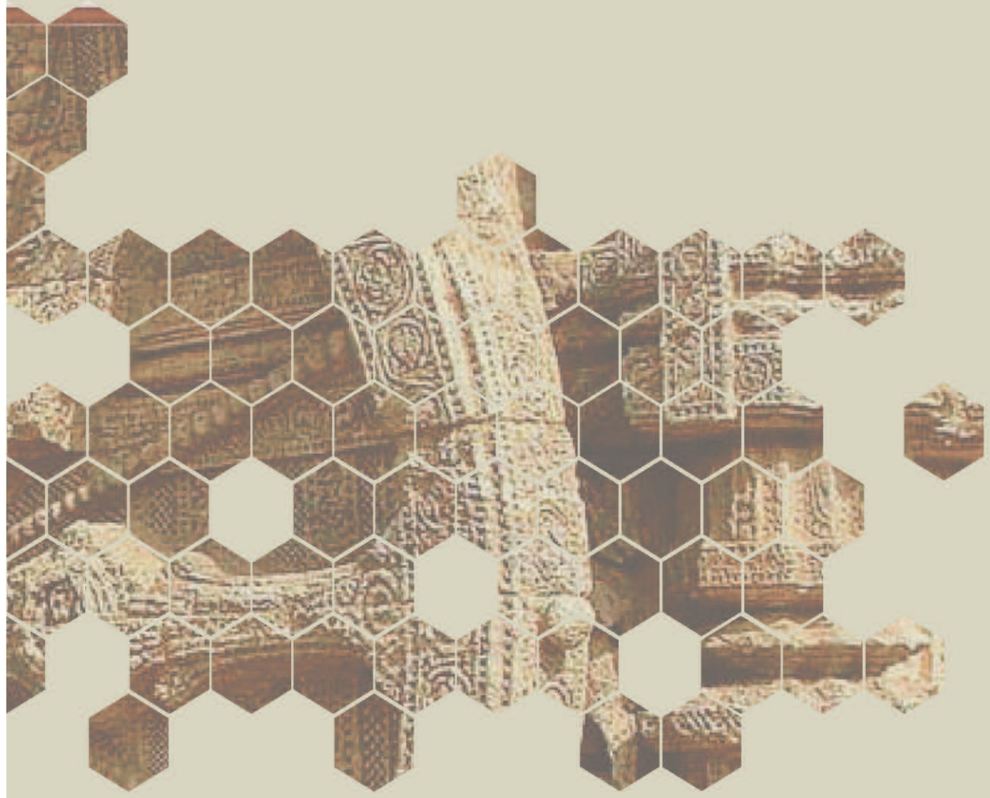

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास -II

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

Institute of **Open** and **Distance Education**

Faculty of Arts

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास -II

2MAHIN1

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

2MAHIN1

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य और उसका इतिहास

2MAHIN1, प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास – II

Edition: March 2024

Compiled, reviewed and edited by Subject Expert team of University

1. Dr. Snehlata Nirmalkar

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Mithlesh Singh Thakur

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Pragya Sharma (Net Qualify)

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning:

All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by:

Dr. C.V. Raman University

Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.),

Ph. +07753-253801, 07753-253872

E-mail: info@cvru.ac.in

Website: www.cvru.ac.in

पद्यांशों की प्रसंग

सूरदास

(1) **हमारे हरि हारिल की लकरी।**
मन बच क्रम नंदनंदन सो उर यह दृढ़ कपि पकरी॥
जागत, सोवत, सपने सांतुख कान्ह जकरी।
सुनतहिं जोग लागत ऐसो अलि ! ज्यों करुई ककरी॥
सोई व्याधि हमैं लै आए देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी॥

संदर्भ एवं प्रसंग- उक्त पंक्तियां महाकवि सूरदास द्वारा रचित "भ्रमरगीत-सार" से ली गई हैं। प्रस्तुत पद में गोपियां उद्धव से अपने कृष्ण विधेयक प्रेम की परिपक्वता और दृढ़ता का प्रमाण दे रही हैं।

व्याख्या- वे कहती हैं कि हमारे निमित्त तो कृष्ण हारिल पक्षी की लकड़ी के समान हो गये हैं। भाव यह है कि जिस तरह हारिल पक्षी अपने पैरों को जमीन पर नहीं आने देता है; चाहे वह किसी भी अवस्था में क्यों न हो; उसी प्रकार हम भी कृष्ण को उसी प्रकार अपने चित्त में दृढ़ किये हुए हैं चाहे परिस्थिति कितनी ही विषम क्यों न हो। हमने अपने मन, वचन और कर्म सभी में कृष्ण को दृढ़तापूर्वक अपना रखा है; उसमें शैथिल्य कहीं नहीं दिखाई देता है। हे उद्धव हमारी स्थिति तो यह है कि हम सोते-जागते तथा प्रत्यक्षत:-अप्रत्यक्षत: 'कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाये रहती हैं। इस नाम के अतिरिक्त हमारा ध्यान किसी अन्य क्षेत्र की ओर जाता ही नहीं है। हे भ्रमर-उद्धव ! तुम्हारे मुख से योग की चर्चा सुनते हुए हमें अच्छा नहीं लगता है। हम उसे सुनकर ऐसा अनुभव करते हैं मानो कड़वी ककड़ी खा रहे हों। हे ऊधो जी तुम हमारे लिए यह क्या व्याधि ले आये हो जिसे हमने न तो कभी देखा है और न कभी जिसका आचरण ही किया है। भाव यह है कि निर्गुण ब्रह्म का उपदेश हमारे लिए अजीब है-ऐसा अजीब कि जिसे हमने न तो कभी अनुभव किया है और न कभी क्रियान्वित किया है। अत: उद्धव जी आप तो हमारे ऊपर एक कृपा कीजिए और यह कीजिए कि इस व्याधि को उन व्यक्तियों को ले जाकर दे दो जिनका मन चकई के समान चकित तथा भ्रमित है। भाव यह है कि जिनके मन में स्थैर्य और एकनिष्ठता का भाव नहीं है; उन्हें जाकर यह कुटिल ज्ञान दीजिए। उद्धव जी हम तो स्थिरचित्त और एकनिष्ठता भाव से कृष्ण की उपासिका हैं फिर हमारा मन भी भ्रमित नहीं है। अत: तुम्हारी कपट-भरी चाल हमारे ऊपर नहीं चल सकती है। हम वैसे मन वाली स्त्रियां नहीं हैं जिनके मन में क्षण भर एक और दूसरे क्षण में दूसरा ही व्यक्ति समा जाता है। रहा योग का उपदेश वह भी उन चंचलाओं के लिए ही उपयुक्त है, हम जैसी दृढ़-प्रतिज्ञा कृष्ण की उपासिकाओं हेतु नहीं है।

(2) **निरखत अंक स्यामसुंदर के बार-बार लावति छाती।**
लोचन जल कागद मसि मिलि कै है गई स्याम-स्याम की पाती॥
गोकुल बसंत संग गिरधर के कबहुं बयारि लगी नहिं ताती॥
तब की कथा कहा कहौ, ऊधो, जब हम बेवुनाद सुनि जाती॥

हरि के लाड़ गनति नहीं लाहू निसिदिन सुदिन रास रसपाती।
प्राननाथ तुम कब धौं मिलोंगे सूरदास प्रभु बाल सघाती॥

संदर्भ- इस पद में उद्धव द्वारा लायी गयी प्रेम पत्रिका को देखकर गोपियों की जो स्थिति हुई उसी का चित्रण किया गया है।

व्याख्या- सूरदासजी कहते हैं कि गोपियों ने कृष्ण द्वारा भेजी हुई पत्रिका के अक्षर देखे हैं और यह जानकर यह कृष्ण की ही भेजी हुई हैं, उसे बार-बार अपने हृदय में लगाने लगी। कृष्ण के अक्षरों को देखकर गोपियों के मानस में अनेकानेक भाव उतरते गये और उनकी स्मृति कर-कर के उनके नेत्रों से आंसुओं की धार बह चली। परिणामस्वरूप नेत्रों के जल और कागज पर अंकित या चमकती हुई स्याही से मिलकर श्याम की पत्रिका श्याम रंग की हो गयी। नेत्रों से आंसू बहाती हुई गोपियां उद्धव के समक्ष अपनी मनोदशा को प्रकट करती हुई कहने लगीं कि हे उद्धव! कृष्ण के साथ गोकुल में रहते हुए भी हमें कभी गर्मी की तपाने वाली वायु भी गर्म नहीं लगती थी। भाव यह है कि कृष्ण के संपर्क सुख के कारण हम दुख का अनुभव ही नहीं करती थीं। संयोग सुख में दुखद वस्तुएं भी सुखद बन जाती हैं। हे उद्धव हम अपने अतीत की तुमसे कौन-कौन सी बातें कहें और विशेषकर उस समय जब हम कृष्ण की मधुर मुरली की मधुर और मोहक ध्वनि सुनने के लिए घर से भाग जाती थीं। उस समय हमारी स्थिति यह थी कि हम कृष्ण के प्रेम के समक्ष किसी और के प्यार की कोई गणना ही नहीं करती थीं। नित्य प्रति और निश: दिवस हम कृष्ण के साथ रचाये गये रास के आनंद में डूबी रहती थीं। अंत में गोपियों ने कहा कि हे बाल्यकाल के साथी कृष्ण, तुम हमें कब आकर दर्शन दोगे। तुम्हारे बिना हमारा जीवन न केवल नीरस है अपितु व्यर्थ भी है।

(3) **काहे को रोकत मारक सूधो।**
सुनहू मधुप! निर्गुन कंटक तैं राजपंथ क्यों रूँधों?
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामधन जू धौं।
वेद पुरान सुमृति सब ढूँढ़ौ जुवतिन जोग कहूँ धौं॥
ताकों कहा परेखो कीजै जग्नत छाछ न दूधौं।
सूर मूर अक्रूर गये लै ब्याज निबेरत ऊधौं॥

प्रसंग- प्रस्तुत पद में उद्धव के निर्गुण मत का गोपियों द्वारा विरोध वर्णन है।

व्याख्या- गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि प्रेमाभक्ति वाले सीधे साधे मार्ग में निर्गुण मार्ग की चर्चा चलाकर क्यों व्यवधान डाल रहे हो? गोपियों का कथन है सगुण मार्ग सीधा-साधा राजपथ साफ सुथरा है, तथा निर्गुण मार्ग कंटकों से भरा हुआ है। किसी के मार्ग में काँटों को बिछाना अच्छा कार्य नहीं है। गोपियाँ उद्धव से पूछती हैं यह मार्ग किसने बताया है? संभवत: यह मार्ग बताने वाले या तो कृष्ण अथवा कुंजा नामक उनकी पत्नी हो सकती है। गोपियों को संदेह विशेष रूप से कुंजा पर होता है क्योंकि कृष्ण इस तरह का उपदेश हमको नहीं कर सकते हैं, हाँ कुंजा संदेह की परिधि में आती है क्योंकि वह हमारे प्रेम को कृष्ण के मध्य में से हटाने को तुमको यहाँ भेज सकती है।

पुन: गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम जिस मार्ग का हमको उपदेश कर रहे हो ऐसा मार्ग नारियों को वेद या शास्त्रों में वर्णित नहीं किया गया है। अगर यह निर्गुण मत नारियों के लिए उपयुक्त होता, तो वेद शास्त्रों में कहीं न कहीं उल्लेख अवश्य किया जाता। गोपियाँ आपस में उद्धव का उपहास करती हुई, उद्धव को नितांत मूर्ख मानती हुई कहती हैं कि इसके कथन का क्या बुरा मानें जो दूध तथा छाछ में अंतर ही नहीं जानता है। यहाँ पर दूध श्री कृष्ण की प्रेमाभक्ति तथा छाछ (मठा) निर्गुण मत गोपियाँ मानती हैं गोपियाँ कहती हैं कि हमारा मूलधन श्री कृष्ण को तो अक्रूर

हमसे वसूल कर ले गये, अब ब्याज मात्र उनका स्मरण रह गया है, जिसे लेने के लिए तुम यहाँ आये हो।

(4) **निर्गुन कौन देस को बासी।**
मधुकर ! हंसि समुझाय, सौंह दे बूझति सांच, न हांजी॥
को है जनक, जनति को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो वरन भेस है कैसे केहि रस में अभिलाषी॥
पावेगौ पुनि कियो आपनो जो रे ! कहैगी गांसी।
सुनत मौन है रह्यो सो सूत सबै मति नासी॥

संदर्भ- प्रस्तुत पद महाकवि सूरदास के द्वारा रचित भ्रमर गीत से उद्धृत किया गया है। गोपियों को कृष्ण के रूप में सगुण तो ज्ञात था पर उद्धव द्वारा कथित सर्वथा अज्ञात था। अत: वे उद्धव से पूछती हैं-

व्याख्या- हे उद्धव ! तुम्हारा निर्गुण किस देश में रहता है। तुम प्रसन्नतापूर्वक हमें यह बता दो। हम शपथपूर्वक तुमसे यह जानना चाहती हैं, हंसी नहीं करती। असल में हम निर्गुण का पूर्ण परिचय ज्ञात करना चाहती हैं। उसके माता-पिता कौन हैं, उनका क्या नाम है। कौन उसकी पत्नी है। कौन उसकी सेविका है। इनके नाम व पते तुम हमें अवश्य बताओ। तुम्हारे निर्गुण का रंग-रूप कैसा है। उसे किस प्रकार की वेशभूषा रुचिकर लगती है। उसे कौन सा रस वांछित है। तुम अपने निर्गुण के संबंध में हमें विस्तार से बतलाओ ताकि हम उसकी अपने सगुण कृष्ण से तुलना कर सकें। हे उद्धव ! तुम हमें सच-सच बतलाना। अगर कुछ भी मिथ्या कहा तो अपने किए हुए का फल पाओगे। गोपियों के इस तरह के प्रश्नों को सुनकर उद्धव ठगा सा रह गया-चुप रह गया। उसके सुख से वाणी नहीं निकली। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसकी बुद्धि ही नष्ट हो गई हो।

विशेष- इसमें निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन किया गया है।

(5) **प्रकृति जोई आके अंग परी।**
स्वान-पूँछ कोटिक जो लागै सुधि न काहु करी॥
जैसे काग भच्छ नहिं छाँड़ै जनमत जौन धरी।
धोये रँग जात कहु कैसे ज्यों कारी कमरी?
ज्यों अहि डसत उदर नहि पूरत ऐसी धरनि धरी।
सूर होउ सो होउ सोच नहि, तैसे हैं एउरी॥

प्रसंग- प्रस्तुत पद में गीताकार का भाव स्पष्ट है-'प्रकृति' यान्ति भूतानि निग्रह: किं करिष्यति' संपूर्ण जीव अपनी प्रकृति स्वभाव से बँधे हुए रहते हैं हठ करने से कोई लाभ नहीं होता है। उद्धव निर्गुण मत पर हठ कर रहे हैं इसके विपरीत गोपियाँ प्रेमाभक्ति पर हठ कर रही हैं।

व्याख्या- गोपियाँ आपस में कथन करती हैं कि जिसका जो स्वभाव बन जाये वह उससे छूटता नहीं है। स्वभाव को स्पष्ट करने हेतु गोपियाँ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं कि कुत्ते की पूँछ को कितना ही प्रयत्न सीधा करने का किया जावे, वह टेढ़ी ही रहेगी। पुन: गोपियाँ स्वभाव की महत्ता बताती हुई अन्य उदाहरण प्रस्तुत करती हैं-कौये का जन्म जात स्वभाव है वह गंदी वस्तु एवं भक्ष्य माँस को ग्रहण करता है। काले कम्बल को कितना ही धोया जावे क्या वह अपना रंग छोड़ सकता है? भाव यह है कि काला कंबल भी अपना रंग नहीं छोड़ता है।

गोपियाँ एक बहुत ही सरल अप्रस्तुत द्वारा अपने तथ्य की पुष्टि करती हैं कि सर्प का दंशन (काटने) से उसका कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता है किन्तु फिर भी वह अपने स्वभाव से परवश हुआ दूसरे लोगों को काटता है, सर्प के दंशन से लोगों की मृत्यु तक हो जाती है, पर सर्प ने यह कभी भी सोचने का प्रयास नहीं किया कि हमारी क्रिया कितनी हानिकारक है। तात्पर्य यह है कि जिसका जैसा स्वभाव बन जाता है वह उसको छोड़ता नहीं है भले ही उसको व्यक्तिगत कुछ भी लाभ या हानि हो। अंत में गोपियाँ स्वभाव के संबंध में निर्णय लेती हुई निश्चय करती हैं, जो होगा सो देखा जायेगा। उद्धव के इस हठ योग के विषय में कथन करती हैं कि उद्धव अपने स्वभाव से परवश हैं, भले ही गोपियों को कष्ट देने से उनको कोई भी लाभ नहीं मिल रहा है। पर वे स्वभाव की परवशता के कारण हम सभी को कष्ट दे रहे हैं।

(6) **नयननि वहै रूप जौ देख्यो।**
तौ ऊधो यह जीवन जग को साँचु सफल करि लेख्यो॥
लोचन चारु चपल खंजन, मनरंजन हृदय हमारे।
रुचिर कमल मृग मीन मनोहर स्वेत अरुन अरु कारे॥
रतन जटित कुण्डल स्रवननिं बर, गंड कपोलनि झाँई।
मनु दिनकर-प्रतिबिम्ब मुकुर महँ ढूँढत यह छबि पाई॥
मुरली अधर बिकट भौहैं करि ठाढ़े होत त्रिभंग।
मुकुतमाल उर नीलसिखर तें धँसि धरनी ज्यों गंग॥
और भेस को कहै बरनि सब अंग-अंग केसरि खौर।
देखत बनै, कहत रसना सो सूर बिलोकत और॥ 72 ॥

प्रसंग सहित व्याख्या- प्रस्तुत पद में गोपियाँ अपनी प्रेम भावना और अपने प्रेम भरे जीवन के चरम फल के रूप में कृष्ण भक्ति को प्रतिपादित कर रही हैं। उद्धव के नीरस और शुष्क उपदेश का गोपियों के हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। पड़े भी कैसे, उनके हृदय में तो कृष्ण का मोहक रूप बसा हुआ है। इसी प्रसंग में कृष्ण के ध्यान में डूबी हुई एक गोपी उद्धव से कह रही है कि यदि मैं अपने इन नेत्रों से कृष्ण के उसी रूप को पुनः देख लूँ जो पहले देखा था तो इस संसार में मैं अपने जीवन को सफल समझ लूँगी। भाव यह है कि जीवन की सार्थकता कृष्ण की रूपराशि को देखने में है न कि उद्धव द्वारा दिये जा रहे ज्ञानोपदेश के सुनने में। कृष्ण अंग-प्रत्यंग की माधुरी पर मुग्ध गोपी पहले उनके नेत्र-सौन्दर्य का वर्णन करती है। वह कहती है कि कृष्ण के आकर्षक नेत्र जो चंचलता में खंजन पक्षी के समान हैं, हमारे हृदय को आनन्दित करने वाले थे। उनके श्वेत, लाल और श्याम नेत्र सुन्दर कमल मछली और हिरण के समान ही हैं। भाव यह है कि उनके नेत्रों में इतना आकर्षण था कि आज तक हम उन्हें स्मरण कर रही हैं। नेत्रों के साथ ही कृष्ण के रत्नजड़ित कुण्डल भी मोहक थे जिनका प्रतिबिम्ब उनके गन्ध स्थल और कपोल पर पड़ता था। जो ऐसा लगता था कि मानो सूर्य दर्पण में अपनी छवि ढूँढ़ रहा हो। कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा में मोहित गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि होंठ पर मुरली और तिरछी भौहें करके त्रिभंगी मुद्रा में खड़े होकर कृष्ण ने हमको मोह लिया था और हृदय पर शोभित श्वेत मोतियों की माला ऐसी लगती थी कि जैसे नीले पहाड़ से निकल कर गंगा पृथ्वी पर उतर आई हो (यहाँ ग्रीवा को नील शिखर, मुक्ता की माला को गंगा और वक्षस्थल को पृथ्वी के रूप में कल्पित किया गया है)। इतना कहने के पश्चात् गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण की रूप माधुरी और वेशभूषा का हम कहाँ तक वर्णन करें। उनके शरीर के अंग प्रत्यंगों के ऊपर केसर के चिन्ह लगे हुए थे, वस्तुतः गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण के रूप को देखते ही बनता है। उसे शब्दों में कहा नहीं जाता है। यदि कहे तो कहने और वर्णन में अन्तर आ जाता है। भाव है कि कृष्ण का सौन्दर्य अनुभव-गम्य है।

विशेष- कृष्ण भक्ति की स्थापना सरस शब्दावली में की गई है। रूपासक्ति से विकसित इस भक्ति का जो स्वरूप यहाँ प्रस्तुत किया गया है, वही सूर के काव्य की प्रमुख विशेषता है। इस पद में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकारों का विधान किया गया है।

(7) **प्रीति करि दीन्ही गरै छुरी।**
जैसें बधिक चुगाइ कपट कन, पाछैं करत बुरी॥
मुरली मधुर चेंप कांपा करि, मोर चन्द्र फंदवारि।
बंक बिहोकनि लगी, लोभ बस, सकी न पंख पसारि॥
तरफत छांड़ि गए मधुबन कौं, बहुरि न कीन्हीं सार।
सूरदास प्रभु संग कल्पतरु, उलटि न बैठी डार॥

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत अवतरण महाकवि सूरदासजी द्वारा रचित महाकाव्य 'सूर सागर' के 'ब्रजदशा' प्रसंग से अवतरित है। प्रस्तुत पद कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् गोपियों के विरह वर्णन से सम्बद्ध है जिसमें गोपियां कृष्ण की निष्ठुरता का वर्णन कर रही हैं।

व्याख्या- गोपियां कहती हैं कि कृष्ण ने पहले तो प्रेम किया और बाद में गले पर छुरी चला दी। जिस प्रकार बहेलिया पक्षी पकड़ने के लिए कपट से पेड़ के नीचे दाने बिखेर देता है और पीछे बुरा व्यवहार करता है, उसी प्रकार कृष्ण ने भी किया। उन्होंने मुरली रूपी लासे को कम्पा रूपी हाथ द्वारा डाल पर लगाया और दृष्टि रूपी बन्धन से बांध लिया। उनके तिरछे नेत्रों के लोभ के कारण हम उनके पास से पंख फैलाकर उड़ भी न सके। कृष्ण ने पहले अपने प्रेम के बन्धन में बांध लिया और फिर हमें तड़फता छोड़ कर मथुरा चले गये और फिर हमारी खबर भी नहीं ली। गोपियां कहती हैं कि हम भी अब कृष्ण रूपी कल्पवृक्ष पर बैठकर फिर किसी दूसरी डाल पर नहीं बैठ सकतीं।

विशेष- (1) सांगरूपक अलंकार का निर्वाह किया गया है। (2) विप्रलम्भ श्रृंगार।

(8) **कोउ ब्रज बाँचत नाहिंन पाती।**
कत लिखि लिखि पठवत नँदनंदन कठिन बिरह की काती॥
नयन, सजल, कागत अति कोमल, कर अंगुरी अति ताती।
परसत जरै, बिलोकत भीजै, दुहूँ भाँति दुख छाती॥
क्यों समुझैं ये अंक सूर सुनु कठिन मदन-सर-धाती।
देखे जियहिं स्यामसुंदर के रहहिं चरन दिनराती॥ 76॥

प्रसंग सहित व्याख्या- उद्धव के ज्ञान मार्ग के उपदेश का प्रभाव ब्रज में एक तीखी प्रतिक्रिया के रूप में होता है। कृष्ण के उपदेश से गोपियाँ और अधिक वेदना का अनुभव करती हैं। कारण यही है कि कृष्ण ये जानते हुए भी हम उन्हीं की प्रेमिकाएं हैं, हमारे पास उद्धव जैसे धूर्त छलिया को क्यों भेजा है। हम कृष्ण द्वारा भेजी गई ऐसी अनुचित पत्रिका को पढ़ना नहीं चाहती हैं। इस प्रसंग में एक सखी कह रही है कि कृष्ण द्वारा भेजी गई चिट्ठी ब्रज में कोई पढ़ता ही नहीं है। न मालूम कृष्ण ने इस प्रकार की चिट्ठी किस लिए लिखकर भेजी है। इसे देखकर तो हमारे हृदय में विरह की छुरी चल गयी है। भाव यह है कि यह पत्र हमें उतनी ही तीखी वेदना दे रहा है जितनी कि छुरी द्वारा किया गया घाव देता है। यों भी कृष्ण की चिट्ठी को यदि कोई पढ़ना चाहे तो वह उसे इसलिए नहीं पढ़ पाती है क्योंकि उसके नेत्र पहले से ही आँसुओं से भरे हुए हैं। आँखों में जब आँसू हों तो अक्षर दिखाई भी कैसे दें? बात इतनी ही नहीं चिट्ठी का कागज भी बहुत कोमल है। वह आँसुओं के पानी से गल जाता है। हाथ से पकड़ने में भी कागज की खैर नहीं रहती है क्यों विरह के दुःख के कारण गोपियों के हाथों की अंगुलियाँ इतनी अधिक गर्म हो गयी हैं कि कहीं

यह चिट्ठी नष्ट न हो जाए। इन सब शंकाओं और आशंकाओं व भावनाओं के कारण ब्रज में कोई भी उस पत्र को पढ़ना नहीं चाहता है। उसकी व्यंजना यह भी है कि चिट्ठी में कुछ भी लिखा हो, पर वह है तो प्रिय की चिट्ठी है इसलिए यदि इसे जैसे तैसे करके पढ़ भी लिया तो अधिक दुःख होगा और उंगलियों की तपन, नेत्रों के आंसुओं के कारण यह समाप्त हो जाएगी। यदि समाप्त हो गयी तो प्रिय की एक़मात्र धरोहर भी हमारे हाथ से जाती रहेगी। इसलिए गोपियाँ निश्चय करती हैं कि इस पत्र का न पढ़ना ही बेहतर है जिससे यह कम से कम सुरक्षित तो रहे और हमें हमारे निष्ठुर प्रिय की याद दिलाता रहे। सूरदासजी कहते हैं कि अन्त में गोपियों ने यह भी कहा है कि इस पत्र के अक्षरों को हम कैसे समझ सकती हैं। इसमें जो अक्षर हैं वे योग साधना के सूचक हैं और हमारे हृदय पर कामदेव ने कठोर बाण चला रखे हैं। भाव यह है कि हम प्रेम और काम पीड़ित हैं और यह पत्र योग की शिक्षा लेकर आया है। गोपियों ने कहा कि हम तो कृष्ण को देखकर ही जीवित रह सकती हैं और सदैव उनके चरणों की दासी बनकर ही जीवन बिताना चाहती हैं।

(9) **हम, अलि, गोकुलनाथ अराध्यो।**
मन बच क्रम हरि सों धरि पतिव्रत प्रेमयोग-तप साध्यो॥
मातु-पिता हित-प्रीति निगम-पथ तजि दुख-सुख-भ्रम नाख्यो।
मानऽपमान परम परितोषा अस्थिर थिर मन राख्यो॥
सकुचासन, कुलसाल, परस करि, जगतबद्य करि बंदन॥
मानऽपवाद पवन-अवरोधन हित-क्रम काम-निकंदन॥
गुरुजन-कानि अगिनि चहुँदिसि, नभ-तरनि-ताप बिनु देखे।
पिवत धूम-उपहास जहाँ तहँ, अपजस श्रवन-अलेखे॥
सहज समाधि बिसारि बपु करी, निरखि निमेख न लागत।
परम ज्योति प्रति अंग-माधुरी धरत यहै निसि जागत॥
त्रिकुटी संग, भ्रुभंग, तराटक नैन नैन लगि लागे।
हँसन प्रकास, सुमुख कुंडल मिलि चंद्र सूर अनुरागे॥
मुरली अधर श्रवन धुनि सो सुनि अनहद सब्द प्रमाने।
बरसत रस रुचि-बचन-संग, सुखपद-आनन्द-समाने॥
मंत्र दियो मनजात भजन लगि, ज्ञान ध्यान हरि ही को।
सूर, कहौ गुरु कौन करै, अति, कौन सुने मत फीको?॥ 78॥

प्रसंग सहित व्याख्या- उद्धव के द्वारा दिये गये निर्गुण ब्रह्म के उपदेश को सुनकर गोपियों ने उनसे कहा कि हे भ्रमर उद्धव! हमने तो गोकुल के साथ श्रीकृष्ण की पूजा की है। ध्यान रहे गोपियों ने गोकुलनाथ कहकर श्रीकृष्ण को याद किया है न कि बृजनाथ या मथुरानाथ को। यदि वे मथुरानाथ कहती तो कृष्ण उनके कहाँ रहते और यदि बृजनाथ कहतीं तो कृष्ण सारे ही ब्रज प्रदेश के हो जाते जो कि बहुत ही अधिक विस्तृत हैं, इसलिए गोपियों ने अपने प्रेम की प्रगाढ़ता बतलाते हुए तथा कृष्ण पर अपना एक मात्र अधिकार बतलाते हुए उन्हें गोकुलनाथ कहा है। कारण कृष्ण और गोपियों का प्रेम गोकुल में हुआ, वहीं विकसित हुआ और वहीं उन्हें वियोग की ज्वाला में जलना पड़ा और वहीं उद्धव जैसे धूर्त से पाला पड़ा। जब गोपियों के जीवन की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएं गोकुल में हुईं और जिस गोकुल का कृष्ण से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, वह गोपियों के अनुसार अभी भी है तो फिर कृष्ण गोपियों के गोकुलनाथ ही हो सकते हैं और कोई नहीं। गोपियाँ कहती हैं कि हमने मन, वचन और कर्म से कृष्ण से ही पतिव्रत धर्म निभाया है। हमारा यह प्रेम ही योग साधना के समान है। गोपियाँ यह कहना चाहती हैं कि जिस प्रकार योगी ब्रह्म की प्राप्ति के लिए

साधना करता है वैसे ही हमने भी अपने प्रियतम कृष्ण की प्राप्ति के लिए साधना की है। हमारी प्रेम साधना और ज्ञानियों की योग साधना में कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार योगी सुख-दुःख और भ्रम आदि का योग लाँघकर, वैदिक मार्ग को छोड़कर प्रेम मार्ग में प्रवृत्त हुई हैं। ऐसी स्थिति में हम भी किसी योगी से कम नहीं हैं।

गोपियाँ कहती हैं कि योगी स्थिर चित्त होता है। मान-अपमान की चिंता से दूर रहकर सन्तोषी होकर जीवन जीता है। हे उद्धव ! हमारी भी यही स्थिति है। हमने भी अपने मन को योगी की तरह कृष्ण के प्रेम में स्थिर कर लिया है। उसके अर्थात् प्रेम के निर्वाह के लिए हमने मान अपमान की चिन्ता छोड़ दी है और उसी में परम सन्तोष का अनुभव किया है। इतना ही नहीं जिस तरह योगी आसन पर बैठता है, उसके बाद आचमन करता है, और ब्रह्म की पूजा करता है, उसी प्रकार हमने भी संकोच रूपी आसन बनाया है, कुल शील आदि रूप जल का पान किया है, और कृष्ण की वन्दना की है फिर तुम्हीं बतलाओ कि क्या हम तुम्हें योगिनी नहीं लगती हैं? अपनी प्रेम साधना को योगी की योग साधना के समान ही महत्त्वपूर्ण बतलाती हुई गोपियाँ आगे कहती हैं कि हमने योगियों के प्राणायाम की तरह मान और अपमान का अवरोधन किया है। जिस तरह योगी काम भावना पर विजय प्राप्त करता है, हमने भी प्रेमपूर्वक लीलाएं करके अपना हित दिखलाया है और काम भावना पर विजय प्राप्त की है।

गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव योगी अपनी योग साधना के दौरान अपने चारों ओर अग्नि प्रज्ज्वलित करता हुआ सूर्य को देख रहा है, उसी प्रकार हमने अपने चारों ओर गुरुजनों की लज्जा रूपी अग्नि जलाई है और कृष्ण के अभाव से उनके न देखने से मिलने वाली वेदना के सूर्य की ओर देखा है। व्यंजना यह है कि जिस प्रकार योगी योग साधना के दौरान सूर्य की टकटकी लगाकर देखता है उसी प्रकार हम भी कृष्ण की ओर देखती रहती हैं। योगी-धूम्रपान करता है और हम भी निरन्तर उपवास रूपी धुएं को पीती हैं। योगी जैसे एक-दूसरे के द्वारा पुकारे गये अलग-अलख शब्द को सुनता है, वैसे ही हम भी दूसरों के द्वारा की गयी निन्दा के शब्दों को सुनती हैं। हमने अपने शरीर से इस सहज समाधि की साधना की है। अब हम इसे छोड़ना नहीं चाहती है हमारे पलक भी अब नहीं झपकते हैं। हम नित्य प्रति कृष्ण को देखती हुई रात भर जागती रहती हैं। योगी त्रिकुटी में अपना ध्यान लगाता है। उसी तरह हमारी भौंहें चलाना भी त्रिकुटी में ध्यान लगाने जैसा है। नेत्रों से नेत्रों का मिलना योगी की किसी त्राटक मुद्रा से कम नहीं है। जिस प्रकार कुण्डलिनी इड़ा और पिंगला जैसी नाड़ियों को वश में करके सुषुम्ना नाड़ी में होकर छः चक्रों को बेधती हुई रन्ध्र में पहुँचती हैं और वहाँ पूर्ण प्रकाश के दर्शन करती हैं ठीक उसी तरह से गोपियाँ कहती हैं कि हमने भी विविध विपत्तियों को सहते हुए कृष्ण की मुस्कान से युक्त मुख के प्रकाश को प्राप्त किया है। जिस तरह योगी को समाधि अवस्था के प्राप्त होने पर सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश का आभास होता है उसी तरह योगी को समाधि अवस्था के दौरान अनहद नाद सुनता है और कृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनती है जो किसी अनहद ध्वनि से कम नहीं है।

गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव ! हम तुम्हें और क्या कहें। तुम यह भी जान लो कि जिस प्रकार योगी जिह्वा को उलट कर ब्रह्म रन्ध्र से बरसते हुए आनन्द का रस लेता है उसी प्रकार हमने भी कृष्ण के साथ विविध क्रीड़ाओं का रस लिया है। इस प्रकार उनका सुख और हमारा आनन्द एक जैसा है। योगियों को योग साधना की सफलता के लिए कोई गुरु मन्त्र प्रदान करता है। ठीक उसी प्रकार हमें भी हमारी प्रेम साधना की सफलता के लिए कामदेव रूपी गुरु ने हमें काम का मन्त्र दिया है। उसी मन्त्र के अनुसार हम कृष्ण का ध्यान करती हैं। सूरदासजी कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि भ्रमर तुम्हीं बताओ कि हम ऐसी स्थिति में किसी और को अपना गुरु कैसे बना सकती हैं और अपनी-अपनी साधना के होते हुए तुम्हारी ज्ञान साधना की नीरस चर्चा को कैसे सुन

सकती हैं अर्थात् नहीं सुन सकती हैं। हमें हमारी प्रेम साधना मुबारक और तुम्हें तुम्हारी योग साधना मुबारक हो।

विशेष- इस पद में साँगरुपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। गोपियों के प्रेम का योग की क्रियाओं से रूपक बाँधा गया है। यह वह पद है जो अपनी आकार दीर्घता के बावजूद पाठकों को आनन्दित करता है। गोपियों की तर्कशक्ति की और प्रेमनिष्ठा का प्रमाण और वह भी इतना स्पष्ट और सुलझा कि किसी अन्य पद में नहीं मिलेगा। थोड़े से शब्दों का सहारा लेकर सूरदास ने गोपियों के माध्यम से यौगिक क्रियाओं की पूरी श्रृंखला ही हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर दी है।

(10) **मोहन मांग्यों अपनो रूप।**

या ब्रज बसत ऊंचे तुम बैठी, ता बिनु तहाँ निरूप॥
मेरो मन, मेरा अलि ! लोचन लै जो गए धुप धुप।
हमसों बतलो लेन उठि धाए मनो धारि कर सूप॥
अपनो काज संवारि सूर, सुरु हमहिं बतावत कूप।
लेवा देइ बराबर में हैं, कौह रंक को भूप॥

प्रसंग सहित व्याख्या- उद्धव के मुख से निर्गुण उपासना के उपदेश को सुनकर जब एक गोपी से नहीं रहा गया तो वह राधा के प्रेम की प्रकारांतर से प्रशंसा करती है तथा उस पर व्यंग्य भी करती है। वह कहती है कि राधा कृष्ण ने अपना रूप माँगा है। कारण यह है कि जिस समय कृष्ण बृज में निवास करते थे, उस समय तुमने उनके रूप का पान कर लिया था। उनका वह रूप तो यहीं तुम्हारे हृदय में स्थापित ही होकर रह गया है। भाव यह है कि कृष्ण मथुरा जाते समय निरूप अर्थात् निराकार थे तथा आज भी वे इसी स्थिति में हैं। उन्होंने इसी आधार पर यहाँ निराकार संदेश दिया है। (यहाँ उद्धव के इस कथन पर व्यंग्य है कि कृष्ण ही निराकार ब्रह्म है) गोपी की इस बात को सुनकर राधा ने उत्तर दिया कि हे सखी कृष्ण ने मेरे मन को भी चुरा लिया तथा वे उसे चुराकर अपने साथ ले गये हैं। अब मेरा शुद्ध मन तो उन्हीं के पास है। लेकिन इतने पर भी हे उद्धवजी मानो हाथ में सूप लेकर हमसे बदला लेने आये हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि अच्छी तरह से जाँच पड़ताल करके उद्धव अपने लाभ की चीज वापस लेना चाहते हैं। इस तरह निश्चय ही मुझे तो ऐसा लगता है कि उद्धवजी अपना स्वार्थ तो सिद्ध करना ही चाहते हैं तथा हमें अंधकार युक्त गहरे कुएं में डालना चाहते हैं। अंत में राधा ने कहा कि लेन-देन में सब बराबर होते हैं। चाहे कोई राजा हो चाहे कोई भिखारी हो। कृष्ण राजा होकर यह अन्याय कैसे कर रहे हैं कि अपनी छवि तो माँग रहे हैं तथा उसके बदले में जो हमारा चित्त चुरा कर ले गये हैं उसे वापस नहीं करना चाहते हैं। कहने का भाव यही है कि अगर कृष्ण अपना सौंदर्य माँग रहे हैं, अपनी छवि माँग रहे हैं तो पहले वह हमारा मन भी तो वापस करें जो कि उन्होंने ले लिया है। व्यंजना यह है कि कृष्ण राजा हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अपनी महानता के नाम पर हमसे पहले अपनी दी हुई चीज वापस ले लें तथा हम छोटे हैं अत: अपने मन को उनसे वापस न माँगें।

(11) **हरि सों भलो सो पति सीता को।**

बन बन खोजत फिरे बंधु-संग किया सिंधु बीता को॥
राबन मार्‌यो, लंका जारी, मुख देख्यो भीता को।
दूत हाथ उन्हैं लिखि न पठायो निगम-ज्ञान गीता को॥
अब धौं कहा परेखो कीजै कुबजा के माता को।
जैसे चढ़त सबै सुधि भूली, ज्यों पीता चीता को?
कीन्हीं कृपा जोग लिखि पठ्‌यो, निरख पत्र री ! ताको।

सूरदास प्रेम कह जानै लोभी नवनीता को ।। 83 ।।

प्रसंग सहित व्याख्या- प्रस्तुत पद भ्रमरगीत का प्रसिद्ध पद है । इसमें गोपियाँ अपने विरह को व्यक्त कर रही हैं । वे यह भी बतला रही हैं कि हमारे प्रिय कृष्ण की तुलना में सीता का पति राम कहीं अधिक श्रेष्ठ था । कम से कम सीता जब राम से रिक्त हो गई तब उन्होंने उसकी खोज खबर की और उसे प्राप्त करने के लिए अनेक कार्य किए । इसी प्रसंग में गोपियाँ कह रही हैं । हे सखी हमारे कृष्ण से तो सीता के पति राम अच्छे थे । राम की अच्छाई इससे ही प्रमाणित हो जाती है कि उन्होंने सीता से बिछुड़ कर अपने भाई के साथ उसे वन-वन में खोजा है । इतना ही नहीं, सीता को प्राप्त करने के लिए उन्होंने समुद्र पर पुल बाँधा और उसे अत्यन्त लघु रूप दिया । सीता के लिए उन्होंने रावण को मारा, लंका को जलाया, और तब आखिरकार सीता का मुख देख ही लिया । यह ठीक है कि राम ने भी सीता के पास हनुमान को अपना सन्देह कहकर दूत के रूप में भेजा था किन्तु उनकी अच्छाई इस बात में है कि उन्होंने अपने नाम से अंकित मुद्रिका हनुमान को दी थी । हमारे कृष्ण की तरह उन्होंने कठोर साधना करने वाला और ज्ञान से गरिष्ठ सन्देश तो नहीं भेजा था । गोपियाँ कहती हैं खैर जो हुआ सो हुआ अब हम कृष्ण के इस व्यवहार का क्या करें और इस पर पश्चात्ताप भी क्यों करें, कारण यह है कि मथुरा जाकर वे कुब्जा के मित्र हो गये हैं । जैसा मित्र वैसे ही श्रीकृष्ण । कुब्जा टेढ़ी है उसके स्वभाव में वक्रता है, अत: कृष्ण ने उसी के सम्पर्क से प्रभावित होकर हमारे साथ ऐसा वक्र प्रभाव किया है । कृष्ण को कुब्जा के साथ रहने से वासना का नशा चढ़ गया है अत: उन्हें हमारा पवित्र प्रेम अब याद नहीं है । ठीक भी है कि वासना का शिकार होकर वे अब उस शराबी की तरह हो गये हैं जिसे अब एक बार नशा चढ़ जाता है तो वह सचेत कहाँ रहता है । अन्त में गोपियाँ कृष्ण के लिए व्यंग्य करते हुए कहती हैं कि कृष्ण ने जो कृपा की है, उसे देखो तो सही उन्होंने योग लिखकर दिया है । सूर ने कहा कि गोपियाँ इस प्रकार कृष्ण पर अनेक व्यंग्य करने लगीं और कहने लगीं कि जो व्यक्ति मक्खन का लोभी है, वह प्रेम जैसे पवित्र और उच्च वस्तु का महत्त्व और मूल्य कैसे समझ सकता है ।

विशेष- इस पद में गोपियों ने न केवल कुब्जा पर अपितु कृष्ण पर भी व्यंग्य किया है । उन्होंने कृष्ण को नवनीत का लोभी कहकर प्रेम मार्ग में कच्चा माना है । इसके साथ ही उन्होंने राम और कृष्ण की तुलना भी की है । इस तुलना में उन्हें कृष्ण से राम अधिक श्रेष्ठ प्रतीत हुए हैं । सरल भाषा में लिखा गया यह पद अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है ।

(12) **बिन गोपाल बैरनि भईं कुंजैं ।**
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं ।।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं ।
पवन पानि घनसार संजीवनि दधिसुत किरन भानु भईं भुंजै ।।
ए, ऊधो, कहियो माधव सों बिरह कदन करि मारत लुंजै ।
सूरदास प्रभु को मग जोवत आंखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं ।। 85 ।।

सप्रसंग व्याख्या- प्रस्तुत पद सूर कृत 'भ्रमरगीत' से उद्धृत किया गया है । इस पद में गोपियों की विरह-व्यथा का वर्णन किया है । कृष्ण के संयोगकाल में जो वस्तुएं गोपियों को आनन्ददायिनी थी, अब कृष्ण के वियोग काल में वे ही दुखदायिनी बन गई हैं । सच है-मन चंगा तो कटोरी में गंगा अन्यथा मन के चंगा नहीं होने पर गंगा दृष्टिगोचर नहीं होती । गुप्तजी ने भी इसी भाव को प्रकट किया है-

'मन: प्रसाद चाहिए-केवल क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद' ।

महाकवि सूर ने भी गोपियों के विरह में संयोग की सुखद वस्तुओं को वियोग में दु:खद चित्रित की हैं ।

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! गोपाल के वियोग में ये कुंज भी हमारे साथ शत्रुओं का व्यवहार करने लग गए हैं, जब कृष्ण हमारे पास थे, तब तो ये लताएं भी अत्यन्त शीतल, सुखदायक प्रतीत होती थीं पर अब कृष्ण के दूर चले जाने पर ये भयंकर अग्नि की लपटों का समूह बन गई हैं। कृष्ण के संयोग काल की सभी आनन्ददायक वस्तुएं हमें दुःखदायक बन गई हैं। उनका होना हमारे लिए तो अब सर्वथा निरर्थक एवं व्यर्थ है। यमुना का बहना व्यर्थ है, पक्षियों का कलरव करना व्यर्थ है, कमलों का खिलना तथा उन पर भौंरों का गुंजार करना भी नितान्त निरर्थक एवं व्यर्थ ही है। कृष्ण के वियोग काल में शीतल पवन, कपूर और संजीवनी चन्द्र किरणें भी हमें सूर्य के समान दाहक बनकर हमें भून रही हैं। हे उद्धव ! तुम कृष्ण से जाकर कहना कि विरह रूपी छुरी हमें काट-काट कर हमारा अंग-भंग कर रही है। हमारी आंखें भी कृष्ण की प्रतीक्षा करते-करते धुंधुचियों के समान लाल-लाल हो गई हैं।

विशेष- (1) अतिशयोक्ति एवं उपमा अलंकार, अनुप्रास भी

(2) इसी में पदमाकर की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"ऊधो यह सूधो संदेशों काह दीजो भले,
हरि सो हमारे ह्यां फूले वन कुंज है।
किंसुक गुलाब, कचनार औ अनारन की,
डारन पै डोलत अंगारन के कुंज है।

(3) प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण।

(13)

उर में माखनचोर गड़े।
अब कैसहु निकसत नहिं, ऊधो ! तिरछे ह्वै जो अड़े॥
जदपि अहीर जसोदानंद तदपि न जात छैड़े।
वहां बन जदुबंस महाकुल हमहिं न लागत बड़ें॥
कां वसुदेव देवकी है को, न जानैं और बझैं।
सूर स्यामसुंदर बिनु देखे और न कोऊ सूझैं।

प्रसंग- गोपियों का सबसे आकर्षण कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा थी। वे उस पर पूरी तरह आसक्त थीं। अतः उनके लिए यह असंभव था कि वे कृष्ण को छोड़ कर निर्गुण ब्रह्म की आराधना करने के लिए तत्पर हो जातीं। इसी प्रसंग में वे उद्धव से कह रही हैं-

व्याख्या- उद्धव जी ! हमारे हृदय में माखन चोर कृष्ण की मधुरमूर्ति गढ़ी हुई है। हम कितना ही प्रयत्न करें किन्तु वह निकलती ही नहीं है। कारण यह है कि कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा तिरछी होकर हृदय में अड़ गई है। अतः कई प्रयत्न करने पर भी नहीं निकलती है। भाव यह है कि यदि वह सीधी होती तो निकल भी आती किन्तु तिरछी होने के कारण उसका निकलना कठिन हो गया है। गोपियां घुमा-फिरा कर यही कहना चाहती हैं कि निर्गुण ब्रह्म की उपासना करना हमारे लिए संभव नहीं है। यद्यपि यह ठीक है कि वे जाति के अहीर हैं किन्तु फिर भी वे हमसे छोड़ते नहीं बनते। कारण प्रेम जाति-बंधन को नहीं स्वीकार करता है। यद्यपि कृष्ण जो अहीर हैं और हमारे साथ कई प्रकार के खेल खेलकर गये हैं वे वहां मथुरा जाकर यदुवंशी या बड़े बन गये हैं, किन्तु न मालूम वे हमें बड़े क्यों नहीं लगते हैं। गोपियों को बड़े न लगने का कारण है कि वे कृष्ण से प्रेम करती थीं और प्रेम मार्ग में कोई छोटा बड़ा नहीं होता है। हम नहीं जानती हैं कि कौन वसुदेव हैं और कौन देवकी है। भाव यह है कि ये कृष्ण से किस प्रकार संबंधित है-हम न तो समझती हैं और न समझने के लिए तुमसे पूछना ही चाहती हैं। भाव यह है कि गोपियां कृष्ण के अन्य किसी भी रूप को पसंद नहीं करती हैं। उन्हें तो बस त्रिभंगी मुद्रा से ही प्रेम है। सूरदास कहते हैं कि

गोपियों ने उद्धव से कहा कि हमें तो श्यामसुंदर कृष्ण को बिना देखे भी अच्छा नहीं लगता। अत: उनके दर्शन हो जाना स्वाभाविक है। यदि वे नहीं होते हैं तो हमारे प्राणों का जीवित रहना कठिन है।

विशेष- इस पद में कृष्ण के प्रति गोपियों की अनन्य प्रेम-भक्ति का पूर्ण निष्ठा के साथ परिचय दिया गया है।

(14) **उपमा एक न नैन गही।**
कविजन कहत-कहत चलि आए सुधि, करि-करि कहू न कही॥
कहे चकोर, मुख-बिधू बिनु जीवन, भंवर न, तहँ उडि जात।
हरिमुख कमलकोस बिछरे ते टाले क्यों ठहरात?
खंजन मनरंजन जन जौ पै, कबहुँ नाहिं स्तरात।
पंख पसारि न उड़त, नद हे समर-समीप विकात॥
आए वचन व्याध है उधो, जौ मृग, क्यों न पलाये?
देखत भागि बसै घन बन में जहँ कोउ संग न धाये॥
ब्रजलोचन बिनु लोचन कैसे? प्रति छिन अति दुख बाढ़त।
सूरदास मीनता कछु इक, जल भरि संग छाँड़त॥

सप्रसंग व्याख्या- प्रस्तुत पद महाकवि सूर कृत 'भ्रमरगीत' से उद्धृत है। इसमें गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उनके नेत्रों की कवियों द्वारा प्रदत्त उपमाएं कृष्ण के अभाव में अब मिथ्या सिद्ध होती जा रही हैं। अत: नेत्रों की विभिन्न उपमानों से समानता प्रकट करना सर्वथा अनुपयुक्त एवं असंगत हो गया है। कृष्ण के वियोग की असह्य स्थिति ने गोपियों को और भी ज्यादा सौदर्य से वंचित कर दिया है। गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हमारे नेत्र अनुपमेय हो गये हैं।

हे उद्धव! हमारे नेत्रों की अब ऐसी दुर्दशा हो गई है कि वे एक भी उपमा ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं। हालांकि कविजन हमेशा से ही नेत्रों हेतु विविध उपमान पेश कर रहे हैं लेकिन उन्होंने हमारी वियोगावस्था का ध्यान नहीं रखा। वियोगकालीन विरह-संतप्त नेत्रों के योग्य कोई उचित उपमान उन्होंने पेश नहीं किया। नेत्रों को कविगण चकोर के समान कहते आये हैं लेकिन जब हमें हमारे नेत्रों के लिए चकोर को उपमान स्वरूप चुनती हैं तो ठीक नहीं लगता क्योंकि कृष्ण के मुख रूपी चंद्र के बगैर भी ये जी रहे हैं। अगर चकोर होते ही तो चंद्रमा के अभाव में कैसे जीवित रहते? अत: यह उपमा भी ठीक नहीं लगती। इन नेत्रों हेतु भ्रमर की उपमा भी संगत नहीं कही जा सकती क्योंकि अगर ये भ्रमर होते तो कृष्ण के मुख रूपी कमल कोष के बिछुड़ जाने पर इस तरह एकाकी निठल्ले यहाँ नहीं ठहरे रहते, वरन् उड़कर कृष्ण के मुख-कमल के पास ही चले जाते। इनको मन प्रसन्न करने वाले खंजन की उपमा भी उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। अगर वे खंजन होते तो सरलता के साथ इस तरह पकड़ में नहीं आ जाते। वे तो इधर-उधर भागने का प्रयत्न करते, लेकिन ये तो कहीं उड़ने का प्रयत्न भी नहीं करते एवं कामदेव से तत्काल वशीभूत हो जाते हैं इसलिए खंजन भी इनके उपमान नहीं कहे जा सकते। मृग को भी उनका उपमान कहना सर्वथा अनुपयुक्त है। अगर ये मृग होते तो उद्धव रूपी शिकारी के आ जाने पर इस तरह यहाँ नहीं रहते। किसी ऐसे सघन वन में जाकर छिपते जहाँ कोई भी इनका शिकार करने हेतु नहीं पहुँच सकता था। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि ब्रह्मलोचन कृष्ण के अभाव में ये नेत्र नहीं रहे, फिर इनके उपमान की बात तो करना ही व्यर्थ है यही विचार करते हुए हमारा दु:ख क्षण-प्रति क्षण बढ़ता ही जा रहा है, किसी भी तरह घटता नहीं है। हाँ, एक उपमान अवश्य कुछ अंशों में इन नेत्रों के लिए उपयुक्त हो सकता है। वह है-मछली। जिस तरह मछली पानी का निवास नहीं त्यागती उसी तरह हमारे नेत्र

अश्रुजल से परिपूर्ण रहते हैं, कभी आँसुओं का साथ नहीं छोड़ते। अत: कुछ अंशों में इनको मीन की उपज दी जानी उचित हो सकती है।

(15) **हरिमुख निरखि निमेख बिसारे।**
ता दिन तें मनो भए दिगंबर इन नैनन के तारे॥
घूँघट-पट छांड़े बीथिन महँ अहनिसि अटत उधारे॥
सहज समाधि रूपरुचि इकटक टरत न टक तें टारे॥
सूर, सुमुति समुझति, जिय जानति, ऊधो! बचन तिहारे।
करैं कहा ये कह्यो न मानत लोचन हठी हमारे॥ 98॥

प्रसंग सहित व्याख्या- प्रस्तुत पद में सूरदास प्रतिपादित कर रहे हैं कि गोपियों के आराध्य श्रीकृष्ण हैं जिनकी मनमोहक छवि उनके हृदय में बसी हुई है। गोपियों ने कृष्ण को देखा है अत: उनके नेत्र किसी अन्य की छवि को देखना नहीं चाहते हैं। हे उद्धव, वे निर्गुण निराकार के विश्वासी हैं अत: उनके ब्रह्म का भी कोई रूप ही नहीं है। इसी प्रसंग में गोपियाँ कह रही हैं कि कृष्ण के मुख का दर्शन करने के बाद हमारी आँखों ने और सब कुछ देखना बन्द कर दिया है। नेत्रों ने पलक झपकाना भी विस्मृत कर दिया है। तात्पर्य यह है कि गोपियाँ निमिष मात्र के लिए भी कृष्ण के अलावा किसी अन्य को अपनी आँखों में बसाने में असमर्थ हैं। वे कृष्ण की रूपराशि पर अपनी सुध खो बैठी हैं। आज कृष्ण नहीं हैं, तब भी गोपियों की आंखें टकटकी लगाकर उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रही हैं। पलकों ने कृष्ण की छवि को अपने अन्दर बन्द कर लिया है। सूरदासजी कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि पलक न मारने के कारण नेत्रों की पुतलियाँ आवरणहीन हो गयी हैं। गोपियों ने लोक लज्जा को छोड़ दिया है और कृष्ण के प्रेम में दीवानी होकर वे गली-गली कृष्ण को ढूँढ़ती फिर रही हैं। परिणामस्वरूप उन्होंने घूँघट करना भी छोड़ दिया है। वे रात दिन मुँह खोले गलियों में इधर से उधर भटका करती हैं।

कृष्ण के मुख सौन्दर्य के दर्शन में तल्लीन गोपियाँ अपनी सहज स्वाभाविक समाधि में निरत रहती हैं और क्षण भर के लिए भी विचलित नहीं हो पाती हैं। अन्त में सूरदासजी कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि हे उद्धव! जब हम विचारपूर्वक तुम्हारी कही हुई बातों को समझना चाहती हैं तब हम यह तो स्वीकार करती है कि तुम्हारी बातें हमारे हित के लिए हैं, किन्तु हम क्या करें? ये आंखें तो हमारा कहना ही नहीं मानती हैं। भाव यह है कि हमारे नेत्र कृष्ण दर्शन का व्रत लिए बैठे हैं। जब उन्होंने ऐसा व्रत ले लिया है तो ये निर्गुण की उपासना कैसे कर सकती हैं। ऐसी दशा में तुम्हारा निर्गुणोपदेश देना व्यर्थ है।

विशेष- कृष्ण के विरह में गोपियों के नेत्रों की दशा का वर्णन सहज स्वाभाविक शैली मे किया गया है। उत्प्रेक्षा अलंकार के प्रयोग से यह वर्णन और भी अधिक सार्थक व आकर्षक हो गया है। टरत न टक तें टारे में अनुप्रास का सौन्दर्य समाया हुआ है। गोपियों की प्रेमानुभूति की भी व्राततीं सहज स्वाभाविक शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति पा सकी है।

(16) **दुर करहु बीना कर धरिबा।**
मोहे मृग नाहीं रथ हां क्यो, नाहिंन होते चंद को ढरिबो॥
बीती जाहि पै सोई जानै कठिन है प्रेम-पास को परिबो।
जब तें बिछुरे कमलनयन, सखि रहत न नयन नीर को गरिबो॥
सीतल चंद आगनि-सम लागत कहिए धीर कौन विधि धरिबो।
सूरदास प्रभु तुम्हारे दरस बिनु सब झूठो जतननि को करिबो॥

प्रसंग- वियोगनी राधा के संताप के निवारणार्थ अनेक यत्न किये गये और यह सोचा गया कि इस प्रकार शायद राधा के मन को शांति मिलेगी। इसी प्रकार के प्रयत्नों में एक प्रयत्न वीणावादन है जिससे मन बहल सकता है; किन्तु राधा का दुर्भाग्य देखिये कि इससे भी वेदना बढ़ी ही कम नहीं हुई-'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यो दवा की'। राधा अपनी सखी से कह रही है-

व्याख्या- हे सखी वीणा बजाना बंद कर दो। तुम्हें यह विदित नहीं कि वीणा की मोहक तानों से चंद्र के रथ में जुते हुए मृग रुक गये हैं और अब चंद्र का ढलना नहीं होता है। चंद्र के ढलने से रात भी नहीं बीतती और इस प्रकार विरह-विषाद भुलाये नहीं भूलता। वस्तुत: प्रेम की व्यथा तो वही जान सकता है जो इसको भोगता है। जबसे प्रियतम कृष्ण बिछुड़े हैं तब से सदैव निरंतर गति से नेत्रों में नीर बहता रहता है। शीतल चंद्रमा शीतल होकर भी अग्निवत् प्रतीत होता है। अत: हे सखी तुम्हें बताओ कि अब किस प्रकार धैर्य धारण किया जा सकता है। राधा कहना यह चाहती है कि कृष्ण ही हमारे एक मात्र आधार हैं-उनके बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता है और सभी कुछ फीका-फीका सा लगता है। नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाह भी इसी कारण होता रहता है। ऐसी स्थिति में धैर्य धारण करने का कोई आधार भी तो नहीं दिखाई देता है। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने राधा के संबंध में कहा कि हे भगवान तुम्हारे विरह में दर्शनाभाव के कारण जीवन साधना के लिए किए गए सभी प्रयत्न व्यर्थ हैं।

विशेष- इस पद में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है। चांदनी की शीतलता भी अग्निवत् प्रतीत होती है।

(17) **अति मलीन वृषभानु कुमारी।**
इरि-स्रमजल अंतर-तनु भोजे ता लालच न घुमावति सारी॥
अधौमुख रहति उरघनहिं चितवनि ज्यों गथ हारे थकितु जुआरी।
छूटे चिहुर वदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि संदेस सुनि सहज मृतक भई, इक विरहिनि दूजे अलि जारी।
सूर स्याम बिनु यों जीवित है ब्रजवनिता अब स्याम दुलारी॥

सप्रसंग व्याख्या- प्रस्तुत पद महाकवि सूर कृत 'भ्रमरगीत' से अवतरित है। इसमें गोपियाँ उद्धव को राधा की विरह-दशा से अवगत करा रही हैं एवं उद्धव को उसके निर्गुणोपासना के उपदेश का कुप्रभाव भी बतला रही हैं।

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! राजा वृषभाव की पुत्री राधा कृष्ण के वियोग में बहुत दु:खी हो रही है। संयोगावस्था में रतिक्रीड़ाओं में वह साड़ी कृष्ण के आलिंगन की स्थिति में स्वेदसिक्त हो चुकी है। अत: उस स्मृति चिन्ह के मिट जाने के भय से राधा अपनी साड़ी नहीं धुलवाती। वह इतनी व्यथित है कि हमेशा अपना मुँह नीचा किये रहती है। वह कभी भी ऊपर की तरफ आंखें उठाकर नहीं देखती। उसकी दशा ऐसी हो रही है, जिस तरह जुए में अपनी सारी धन संपत्ति के हार जाने पर जुआरी की दशा हो जाती है। राधा के बाल बिखरे हुए रहते हैं एवं मुख कमल हमेशा मुरझाया हुआ रहता है। मुख पीला-सा प्रतीत होता है मानो चंद्रमा की शीतल किरणों से पाले की भाँति मुरझायी हुई कमलिनी हो। हे उद्धव ! तुम्हारे मुख से कृष्ण का निर्गुणोपासना का संदेश सुनकर तो वह सहज ही मृत्यु को प्राप्त हो गई है। होती भी क्यों नहीं, एक तो पहले ही विरह की सताई हुई थी दूसरे अब उद्धव ने आकर अपने निर्गुण उपदेश देकर जले पर नमक छिड़कने का काम कर दिया है। अत: राधा और भी वियोग की ज्वाला में जल रही है। गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव ! कृष्ण के विरह में राधा ही नहीं वरन् कृष्ण से प्रेम करने वाली सभी गोपियाँ भी व्यथित हैं। अभिप्राय यह है कि राधा तथा गोपियाँ सभी कृष्ण के विरह से न सिर्फ पीड़ित तथा दुखी हैं वरन् अस्त-व्यस्त होकर जीवन बिता रही हैं। उनके जीवन में कुछ भी सरस नहीं रह गया है।

तुलसीदास

(18) **उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी।**
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥

कैकेयी कोई उत्तर नहीं देती, वह दु:सह क्रोधके मारे रूखी (बेमुरव्वत) हो रही है। ऐसे देखती है मानो भूखी बाघिन हरिनियों को देख रही हो। तब सखियोंने रोगको असाध्य समझकर उसे छोड़ दिया। सब उसको मन्दबुद्धि, अभागिनी कहती हुई चल दीं॥ 1॥

राजु करत यह दैअँ बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं। देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं॥

राज्य करते हुए इस कैकेयीको दैवने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया, वैसा कोई भी न करेगा! नगरके सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयीको करोड़ों गालियाँ दे रहे हैं॥ 2॥

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी॥

लोग विषमज्वर (भयानक दु:खकी आग) से जल रहे हैं। लंबी साँसे लेते हुए वे कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके बिना जीनेकी कौन आशा है। महान् वियोग [की आशंका] से प्रजा ऐसी व्याकुल हो गयी है मानो पानी सूखने के समय जलचर जीवोंका समुदाय व्याकुल हो!॥ 3॥

अति बिषाद बस लोग लोगाईं। गए मातु पहिं रामु गोसाईं॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ॥

सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यन्त विषादके वश हो रहे हैं। स्वामी श्रीरामचन्द्रजी माता कौसल्याके पास गये। उनका मुख प्रसन्न है और चित्त में चौगुना चाव (उत्साह) है। यह सोच मिट गया है कि राजा कहीं रख न लें। [श्रीरामजी को राजतिलककी बात सुनकर विषाद हुआ था कि सब भाइयों को छोड़कर बड़े भाई अथवा मुझको ही राजतिलक क्यों होता है। अब माता कैकेयीकी आज्ञा और पिताकी मौन सम्मति पाकर वह सोच मिट गया।] ॥ 4॥

नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥ 51॥

श्री रामचन्द्रजी का मन नये पकड़े हुए हाथी के समान और राजतिलक उस हाथी के बाँधने की काँटेदार लोहे की बेड़ी के समान है। 'वन जाना है' यह सुनकर, अपने को बन्धन से छूटा जानकर, उनके हृदय में आनन्द बढ़ गया है॥ 51॥

(19) **रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥**
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे॥

रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजी ने दोनों हाथ जोड़कर आनन्द के साथ माता के चरणों में सिर नवाया। माता ने आशीर्वाद दिया, अपने हृदय से लगा लिया और उन पर गहने तथा कपड़े न्यौछावर किये॥ 1॥

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयं लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥

माता बार-बार श्रीरामचन्द्रजी का मुख चूम रही हैं। नेत्रों में प्रेम का जल भर आया है और सब अङ्ग पुलकित हो गए हैं। श्रीराम को अपनी गोद में बैठाकर फिर हृदय से लगा लिया। सुन्दर स्तन प्रेमरस (दूध) बहाने लगे ॥ 2 ॥

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई ॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी ॥

उनका प्रेम और महान् आनन्द कुछ कहा नहीं जाता। मानो कंगाल ने कुबेर का पद पा लिया हो। बड़े आदर के साथ सुन्दर मुख देखकर माता मधुर वचन बोलीं ॥ 3 ॥

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी ॥
सुकृत सील सुख सीवँ सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई ॥

हे तात ! माता बलिहारी जाती है, कहो, वह आनन्द-मङ्गलकारी लग्न कब है, जो मेरे पुण्य, शील और सुखकी सुन्दर सीमा है और जन्म लेने के लाभ की पूर्णतम अवधि है ॥ 4 ॥

जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति ॥ 52 ॥

तथा जिस (लग्न) को सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त व्याकुलता से इस प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार प्यास से चातक और चातकी शरद् - ऋतु के स्वातिनक्षत्र की वर्षा को चाहते हैं ॥ 52 ॥

(20) **तात जाउं बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥**
पितु समीप तब जाएहु भैआ। भई बड़ि बार जाइ बलि मैआ ॥

हे तात ! मैं बलैया लेती हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन भावे, कुछ मिठाई खा लो। भैया ! तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गई है, माता बलिहारी जाती है ॥ 1 ॥

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला ॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भवँरु न भूला ॥

माता के अत्यन्त अनुकूल वचन सुनकर-जो मानो स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल थे, जो सुखरूपी मकरन्द (पुष्परस) से भरे थे और श्री (राजलक्ष्मी) के मूल थे-ऐसे वचनरूपी फूलों को देखकर श्रीरामचन्द्रजी का मनरूपी भौंरा उन पर नहीं भूला ॥ 2 ॥

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥

धर्मधुरीण श्रीरामचन्द्रजी ने धर्म की गति को जानकर माता से अत्यन्त कोमल वाणी से कहा-हे माता ! पिताजी ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बनने वाला है ॥ 3 ॥

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनंदु अंब अनुग्रह तोरें ॥

हे माता ! तू प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दे, जिससे मेरी वनयात्रा में आनन्द-मङ्गल हो। मेरे स्नेहवश भूलकर भी डरना नहीं। हे माता ! तेरी कृपा से आनन्द ही होगा ॥ 4 ॥

बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान ॥ 53 ॥

चौदह वर्ष वन में रहकर, पिताजी के वचन को प्रमाणित (सत्य) कर, फिर लौटकर तेरे चरणों का दर्शन करूँगा; तू मन को म्लान (दुःखी) न कर ॥ 53 ॥

(21) **बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके ॥**

सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी॥

रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीरामजी के ये बहुत ही नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में बाण के समान लगे और कसकने लगे। उस शीतल वाणी को सुनकर कौसल्या वैसे ही सहमकर सूख गयीं जैसे बरसात का पानी पड़ने से जवासा सूख जाता है॥ 1॥

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाई मीन जनु मापी॥

हृदय का विषाद कुछ कहा नहीं जाता। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गयी हो। नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर-थर काँपने लगा। मानो मछली माँजा (पहली वर्षा का फेन) खाकर बदहवास हो गयी हो॥ 2॥

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रान पिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥

धीरज धरकर, पुत्र का मुख देखकर माता गद्‌गद वचन कहने लगीं-हे तात! तुम तो पिता को प्राणों के समान प्रिय हो। तुम्हारे चरित्रों को देखकर वे नित्य प्रसन्न होते थे॥ 3॥

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥

राज्य देने के लिए उन्होंने ही शुभ दिन सोधवाया था। फिर अब किस अपराध से वन जाने को कहा? हे तात! मुझे इसका कारण सुनाओ! सूर्यवंश [रूपी वन] को जलाने के लिए अग्नि कौन हो गया?॥ 4॥

निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥ 54॥

तब श्रीरामचन्द्रजी का रुख देखकर मन्त्री के पुत्र ने सब कारण समझाकर कहा। उस प्रसंग को सुनकर वे गूँगी-जैसी (चुप) रह गयीं, उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 54॥

(22) **राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥**
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥

न रख ही सकती हैं, न यह कह सकती हैं कि वन चले जाओ। दोनों ही प्रकार से हृदय में बड़ा भारी सन्ताप हो रहा है। [मन में सोचती हैं कि देखो-] विधाता की चाल सदा सबके लिए टेढ़ी होती है। लिखने लगे चन्द्रमा और लिख गया राहु!॥ 1॥

धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भई गति साँप छुछुंदरि केरी॥
राखउं सुतहि करउं अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥

धर्म और स्नेह दोनों ने कौसल्याजी की बुद्धि को घेर लिया। उनकी दशा साँप-छछूँदर की-सी हो गयी। वे सोचने लगीं कि यदि मैं अनुरोध (हठ) करके पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयों में विरोध होता है॥ 2॥

कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भई रानी॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥

और यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि होती है। इस प्रकार के धर्म-संकट में पड़कर रानी विशेष रूप से सोच के वश हो गयीं। फिर बुद्धिमती कौसल्याजी स्त्री-धर्म (पतिव्रत-धर्म) को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर-॥ 3॥

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥

तात जाउं बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका॥

सरल स्वभाववाली श्रीरामचन्द्रजी की माता बड़ा धीरज धरकर वचन बोलीं-हे तात! मैं बलिहार जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है॥ 4॥

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥ 55॥

राज्य देने को कहकर वन दे दिया, उसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है। [दुःख तो इस बात का है कि] तुम्हारे बिना भरत को, महाराज को और प्रजा को बड़ा भारी क्लेश होगा॥ 55॥

(23) **जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥**
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

हे तात! यदि केवल पिताजी की ही आज्ञा हो, तो माता को [पिता से] बड़ी जानकर वन को मत जाओ। किन्तु यदि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा हो, तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है॥ 1॥

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू॥

वन के देवता तुम्हारे पिता होंगे और वनदेवियाँ माता होंगी। वहाँ के पशु-पक्षी तुम्हारे चरण-कमलों के सेवक होंगे। राजा के लिए अन्त में तो वनवास करना उचित ही है। केवल तुम्हारी [सुकुमार] अवस्था देखकर हृदय में दुःख होता है॥ 2॥

बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंसतिलक तुम्ह त्यागी॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू॥

हे रघुवंश के तिलक! वन बड़ा भाग्यवान् है और यह अवध अभागी है, जिसे तुमने त्याग दिया। हे पुत्र! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय में सन्देह होगा [कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती है]॥ 3॥

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ॥

हे पुत्र! तुम सभी के परम प्रिय हो। प्राणों के प्राण और हृदय के जीवन हो। वही (प्राणाधार) तुम कहते हो कि माता! मैं वनको जाऊँ और मैं तुम्हारे वचनों को सुनकर बैठी पछताती हूँ!॥ 4॥

यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥ 56॥

यह सोचकर झूठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती। बेटा! मैं बलैया लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुध भूल न जाना॥ 56॥

(24) **देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं॥**
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना॥

हे गोसाईं। सब देव और पितर तुम्हारी वैसे ही रक्षा करें, जैसे पलकें आंखों की रक्षा करती हैं। तुम्हारे वनवास की अवधि (चौदह वर्ष) जल है, प्रियजन और कुटुम्बी मछली हैं। तुम दया की खान और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हो॥ 1॥

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥

ऐसा विचारकर वही उपाय करना जिसमें सबके जीते-जी तुम आ मिलो। मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिवार वालों और नगर भर को अनाथ करके सुखपूर्वक वन को जाओ ॥ 2 ॥

सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल कालु बिपरीता ॥
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी ॥

आज सब के पुण्यों का फल पूरा हो गया! कठिन काल हमारे विपरीत हो गया। [इस प्रकार] बहुत विलाप करके और अपने को परम अभागिनी जानकर माता श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में लिपट गयीं ॥ 3 ॥

दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई ॥

हृदय में भयानक दुःसह संताप छा गया। उस समय के बहुविध विलाप का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीरामचन्द्रजी ने माता को उठाकर हृदय से लगा लिया और फिर कोमल वचन कहकर उन्हें समझाया ॥ 4 ॥

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ ॥ 57 ॥

उसी समय यह समाचार सुनकर सीताजी अकुला उठीं और सास के पास जाकर उनके दोनों चरण कमलों की वन्दना कर सिर नीचा करके बैठ गयीं ॥ 57 ॥

(25) **दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥**
बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता ॥

सास ने कोमल वाणी से आशीर्वाद दिया। वे सीताजी को अत्यन्त सुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठीं। रूप की राशि और पति के साथ पवित्र प्रेम करने वाली सीताजी नीचा मुख किये बैठी सोच रही हैं ॥ 1 ॥

चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना ॥

जीवननाथ (प्राणनाथ) वन को चलना चाहते हैं। देखें किस पुण्यवान से उनका साथ होगा-शरीर और प्राण दोनों साथ जायेंगे या केवल प्राण ही से इनका साथ होगा? विधाता की करनी कुछ जानी नहीं जाती ॥ 2 ॥

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी ॥
सनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं ॥

सीताजी अपने सुन्दर चरणों के नखों से धरती कुरेद रही हैं। ऐसा करते समय नूपुरों का जो मधुर शब्द हो रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेम के वश होकर नूपुर विनती कर रहे हैं कि सीताजी के चरण कभी हमारा त्याग न करें ॥ 3 ॥

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी ॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी ॥

सीताजी सुन्दर नेत्रों से जल बहा रही हैं। उनकी यह दशा देखकर श्रीरामजी की माता कौसल्याजी बोलीं-हे तात! सुनो, सीता अत्यन्त ही सुकुमारी हैं तथा सास, ससुर और कुटुम्बी सभी को प्यारी हैं ॥ 4 ॥

पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु ॥ 58 ॥

इनके पिता जनकजी राजाओं के शिरोमणि हैं; ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्यकुलरूपी कुमुदवन को खिलाने वाले चन्द्रमा और गुण और रूप के भण्डार हैं। 58 ॥

(26) **मैं पुनि पुत्रबधु प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई ॥**
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥

फिर मैंने रूप की राशि, सुन्दर गुण और शीलवाली प्यारी पुत्रवधू पायी है। मैंने इन (जानकी) को आंखों की पुतली बनाकर इनसे प्रेम बढ़ाया है और अपने प्राण इनमें लगा रखे हैं ॥ 1 ॥

कलपबेलि जिमि बहुविधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा ॥

इन्हें कल्पलता के समान मैंने बहुत तरह से बड़े लाड़-चाव के साथ स्नेहरूपी जल से सींचकर पाला है। अब इस लता के फूलने-फलने के समय विधाता वाम हो गये। कुछ जाना नहीं जाता कि इसका क्या परिणाम होगा ॥ 2 ॥

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥

सीता ने पर्यङ्कपृष्ठ (पलंग के ऊपर), गोद और हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर कभी पैर नहीं रखा। मैं सदा सञ्जीवनी जड़ी के समान [सावधानी से] इनकी रखवाली करती रही हूँ! कभी दीपक की बत्ती हटाने को भी नहीं कहती ॥ 3 ॥

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी ॥

वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है। हे रघुनाथ! उसे क्या आज्ञा होती है? चन्द्रमा की किरणों का रस (अमृत) चाहने वाली चकोरी सूर्य की ओर आंख किस तरह मिला सकती है ॥ 4 ॥

करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि ॥ 59 ॥

हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव-जन्तु वन में विचरते रहते हैं। हे पुत्र! क्या विष की वाटिका में सुन्दर सञ्जीवनी बूटी शोभा पा सकती है? ॥ 59 ॥

(27) **बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी ॥**
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥

वन के लिए तो ब्रह्माजी ने विषय सुख को न जानने वाली कोल और भीलों की लड़कियों को रचा है, जिनका पत्थर के कीड़े-जैसा कठोर स्वभाव है। उन्हें वन में कभी क्लेश नहीं होता ॥ 1 ॥

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती ॥

अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के लिए सब भोग तज दिये हैं। हे पुत्र! जो तसवीर के बन्दर को देखकर डर जाती हैं वे सीता वन में किस तरह रह सकेंगी? ॥ 2 ॥

सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी ॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥

देवसरोवर के कमलवन में विचरण करने वाली हंसिनी क्या गड़ैयों (तलैयों) में रहने के योग्य है ? ऐसा विचारकर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो, मैं जानकी को वैसी ही शिक्षा दूँ ॥ 3 ॥

जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधाँ जनु सानी ॥

माता कहती हैं-यदि सीता घर में रहें तो मुझको बहुत सहारा हो जाये। श्रीरामचन्द्रजी ने माता की प्रिय वाणी सुनकर, जो मानो शील और स्नेहरूपी अमृत से सनी हुई थी ॥ 4 ॥

कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥ 60 ॥

विवेकमय प्रिय वचन कहकर माता को सन्तुष्ट किया। फिर वन के गुण-दोष प्रकट करके वे जानकीजी को समझाने लगे ॥ 60 ॥

(28) **मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं ॥**
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू ॥

माता के सामने सीताजी से कुछ कहने में सकुचाते हैं। पर मन में यह समझकर कि यह समय ऐसा ही है, वे बोले-हे राजकुमारी ! मेरी सिखावन सुनो। मन में कुछ दूसरी तरह न समझ लेना ॥ 1 ॥

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू ॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥

जो अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरा वचन मानकर घर रहो। हे भामिनी ! मेरी आज्ञा का पालन होगा, सास की सेवा बन पड़ेगी। घर रहने में सभी प्रकार से भलाई है ॥ 2 ॥

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥

आदरपूर्वक सास-ससुर के चरणों की पूजा (सेवा) करने से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जब-जब माता मुझे याद करेंगी और प्रेम से व्याकुल होने के कारण उनकी बुद्धि भोली हो जायेगी (वे अपने-आपको भूल जायेंगी) ॥ 3 ॥

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी ॥
कहऊँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥

हे सुन्दरी ! तब-तब तुम कोमल वाणी से पुरानी कथाएं कह-कहकर इन्हें समझाना। हे सुमुखि ! मुझे सैकड़ों सौगन्ध हैं, मैं यह स्वभाव से ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल माता के लिए ही घर पर रखता हूँ ॥ 4 ॥

गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥ 61 ॥

[मेरी आज्ञा मानकर घर पर रहने से] गुरु और वेद के द्वारा सम्मत धर्म [के आचरण] का फल तुम्हें बिना ही क्लेश के मिल जाता है। किन्तु हठ के वश होकर गालव मुनि और राजा नहुष आदि सबने संकट ही सहे ॥ 61 ॥

(29) **मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥**
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥

हे सुमुखि ! हे सयानी ! सुनो, मैं भी पिता के वचन को सत्य करके शीघ्र ही लौटूँगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। हे सुन्दरी ! हमारी यह सीख सुनो ! ॥ 1 ॥

जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥

हे वामा ! यदि प्रेमवश हठ करोगी, तो तुम परिणाम में दुःख पाओगी। वन बड़ा कठिन (क्लेशदायक) और भयानक है। वहाँ की धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बड़े भयानक हैं॥ 2॥

कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥

रास्ते में कुश, काँटे और बहुत-से कंकड़ हैं। उन पर बिना जूते के पैदल ही चलना होगा। तुम्हारे चरण-कमल कोमल और सुन्दर हैं और रास्ते में बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं॥ 3॥

कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥

पर्वतों की गुफाएं, खोह (दर्रे), नदियाँ, नद और नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि उनकी ओर देखा तक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे [भयानक] शब्द करते हैं कि उन्हें सुनकर धीरज भाग जाता है॥ 4॥

भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥ 62॥

जमीन पर सोना, पेड़ों की छाल के वस्त्र पहनना और कन्द, मूल, फल का भोजन करना होगा। और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे? सब कुछ अपने-अपने समय के अनुकूल ही मिल सकेगा॥ 62॥

(30) **नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥**
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥

मनुष्यों को खाने वाले निशाचर (राक्षस) फिरते रहते हैं। वे करोड़ों प्रकार के कपटरूप धारण कर लेते हैं। पहाड़ का पानी बहुत ही लगता है। वन की विपत्ति बखानी नहीं जा सकती॥ 1॥

ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥

वन में भीषण सर्प, भयानक पक्षी और स्त्री-पुरुषों को चुराने वाले राक्षसों के झुंड के झुंड रहते हैं। वन की [भयंकरता] याद आने मात्र से धीर पुरुष भी डर जाते हैं। फिर हे मृगलोचनि ! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो !॥ 2॥

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥

हे हंसगमनी ! तुम वन के योग्य नहीं हो। तुम्हारे वन जाने की बात सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे (बुरा कहेंगे)। मानसरोवर के अमृत के समान जल से पाली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्र में जी सकती है?॥ 3॥

नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदयं बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी॥

नवीन आम के वन में विहार करने वाली कोयल क्या करील के जंगल में शोभा पाती है? हे चन्द्रमुखी ! हृदय में ऐसा विचार कर तुम घर ही पर रहो। वन में बड़ा कष्ट है॥ 4॥

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥ 63॥

स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है॥ 63॥

(31) **सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥**
सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चंद निसि जैसें॥

प्रियतम के कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीताजी के सुन्दर नेत्र जल से भर गये। श्रीरामजी की यह शीतल सीख उनको कैसी जलाने वाली हुई, जैसे चकवी को शरद ऋतु की चाँदनी रात होती है॥ 1॥

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी॥

जानकीजी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। नेत्रों के जल (आंसुओं) को जबर्दस्ती रोककर वे पृथ्वी की कन्या सीताजी हृदय में धीरज भरकर॥ 2॥

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥

सास के पैर लगकर, हाथ जोड़कर कहने लगीं-हे देवि! मेरी इस बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा कीजिए। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी है जिससे मेरा परम हित हो॥ 3॥

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥

परन्तु मैंने मन में समझकर देख लिया कि पति के वियोग के समान जगत में कोई दुःख नहीं है॥ 4॥

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥ 64॥

हे प्राणनाथ! हे दया के धाम! हे सुन्दर! हे सुखों के देने वाले! हे सुजान! हे रघुकुलरूपी कुमुद के खिलाने वाले चन्द्रमा! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान है॥ 64॥

(32) **मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥**
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥

माता, पिता, बहन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन (बन्धु-बान्धव), सहायक और सुन्दर, सुशील और सुख देने वाला पुत्र-॥ 1॥

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥

हे नाथ! जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को सभी सूर्य से भी बढ़कर तपाने वाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, पति के बिना स्त्री के लिए यह सब शोक का समाज है॥ 2॥

भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥

भोग रोग के समान हैं, गहने भाररूप हैं और संसार यम-यातना (नरक की पीड़ा) के समान है। हे प्राणनाथ ! आपके बिना जगत् में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है ॥ 3 ॥

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥

जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी, वैसे ही हे नाथ ! बिना पुरुष के स्त्री है। हे नाथ ! आपके साथ रहकर आपका शरद् -[पूर्णिमा] के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे ॥ 4 ॥

खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल॥ 65 ॥

हे नाथ ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर और वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की बनी झोंपड़ी) ही स्वर्ग के समान सुखों की मूल होगी ॥ 65 ॥

(33) **बनदेबीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥**
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥

उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-ससुर के समान मेरी सार-सँभार करेंगे, और कुशा और पत्तों की सुन्दर साथरी (बिछौना) ही प्रभु के साथ कामदेव की मनोहर तोशक के समान होगी ॥ 1 ॥

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥

कन्द, मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और [वन के] पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे। क्षण-क्षण में प्रभु के चरणकमलों को देख-देखकर मैं ऐसी आनन्दित रहूँगी जैसी दिन में चकवी रहती है ॥ 2 ॥

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

हे नाथ ! आपने वन के बहुत-से दुःख और बहुत-से भय, विषाद और सन्ताप कहे। परन्तु हे कृपानिधान ! वे सब मिलकर भी प्रभु (आप) के वियोग [से होने वाले दुःख] के लवलेश के समान भी नहीं हो सकते ॥ 3 ॥

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥

ऐसा जी में जानकर, हे सुजानशिरोमणि ! आप मुझे साथ ले लीजिए, यहाँ न छोड़िये। हे स्वामी ! मैं अधिक क्या विनती करूँ ? आप करुणामय हैं और सबके हृदय के अन्दर की जानने वाले हैं ॥ 4 ॥

राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥ 66 ॥

हे दीनबन्धु ! हे सुन्दर ! हे सुख देने वाले ! हे शील और प्रेम के भण्डार ! यदि अवधि (चौदह वर्ष) तक मुझे अयोध्या में रखते हैं तो जान लीजिए कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे ॥ 66 ॥

(34) **मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥**
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥

'क्षण-क्षण में आपके चरण कमलों को देखते रहने से मुझे मार्ग चलने में थकावट न होगी। हे प्रियतम ! मैं सभी प्रकार से आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलने से होनें वाली सारी थकावट को दूर कर दूँगी ॥ 1 ॥

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥

आपके पैर धोकर, पेड़ों की छाया में बैठकर, मन में प्रसन्न होकर हवा करूँगी (पंखा झलूँगी)। पसीने की बूँदों सहित श्याम शरीर को देखकर-प्राणपति के दर्शन करते हुए दुःख के लिए मुझे अवकाश ही कहाँ रहेगा ॥ 2 ॥

सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही॥

समतल भूमि पर घास और पेड़ों के पत्ते बिछाकर यह दासी रात भर आपके चरण दबावेगी। बार-बार आपकी कोमल मूर्ति को देखकर मुझको गरम हवा भी न लगेगी ॥ 3 ॥

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥

प्रभु के साथ [रहते] मेरी ओर [आँख उठाकर] देखने वाला कौन है (अर्थात् कोई नहीं देख सकता) ! जैसे सिंह की स्त्री (सिंहनी) को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वन के योग्य हैं ? आपको तो तपस्या उचित है और मुझको विषय-भोग ? ॥ 4 ॥

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥ 67 ॥

ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जब मेरा हृदय न फटा तो, हे प्रभु ! [मालूम होता है] ये पामर प्राण आपके वियोग का भीषण दुःख सहेंगे ॥ 67 ॥

(35) **अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी॥**
देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना॥

ऐसा कहकर सीताजी बहुत ही व्याकुल हो गयीं। वे वचन के वियोग को भी न संभाल सकीं। (अर्थात् शरीर से वियोग की बात तो अलग रही, वचन से भी वियोग की बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गयीं) उनकी यह दशा देखकर श्रीरघुनाथजी ने अपने जी में जान लिया कि हठपूर्वक इन्हें यहाँ रखने से ये प्राणों को न रखेंगी ॥ 1 ॥

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥

तब कृपालु, सूर्य कुल के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि सोच छोड़कर मेरे साथ वन को चलो। आज विषाद करने का अवसर नहीं है। तुरंत वनगमन की तैयारी करो ॥ 2 ॥

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥

श्रीरामचन्द्रजी ने प्रिय वचन कहकर प्रियतमा सीताजी को समझाया। फिर माता के पैरों लगकर आशीर्वाद प्राप्त किया। [माता ने कहा-] बेटा ! जल्दी लौटकर प्रजा के दुःख को मिटाना और यह निठुर माता तुम्हें भूल न जाये ! ॥ 3 ॥

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि॥

हे विधाता ! क्या मेरी दशा भी फिर पलटेगी ? क्या अपने नेत्रों से मैं इस मनोहर जोड़ी को फिर देख पाऊँगी ? हे पुत्र ! वह सुन्दर दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब तुम्हारी जननी जीते-जी तुम्हारा चाँद-सा मुखड़ा फिर देखेगी ! ॥ 4 ॥

बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउं गात॥ 68 ॥

हे तात ! 'वत्स' कहकर, 'लाल' कहकर, 'रघुपति' कहकर, 'रघुवर' कहकर, मैं फिर कब तुम्हें बुलाकर हृदय से लगाउँगी और हर्षित होकर तुम्हारे अङ्गों को देखूँगी ! ॥ 68 ॥

(36) **लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी॥**
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥

यह देखकर कि माता स्नेह के मारे अधीर हो गयी हैं और इतनी अधिक व्याकुल हैं कि मुँह से वचन नहीं निकलता, श्रीरामचन्द्रजी ने अनेक प्रकार से उन्हें समझाया। वह समय और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ 1 ॥

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥

तब जानकीजी सास के पाँव लगीं और बोलीं-हे माता ! सुनिये, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ। आपकी सेवा करने के समय दैव ने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ सफल न किया ॥ 2 ॥

तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥

आप क्षोभ का त्याग कर दें, परंतु कृपा न छोड़ियेगा। कर्म की गति कठिन है, मुझे भी कुछ दोष नहीं है। सीताजी के वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयीं। उनकी दशा को मैं किस प्रकार बखानकर कहूँ ! ॥ 3 ॥

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा॥

उन्होंने सीताजी को बार-बार हृदय से लगाया और धीरज धरकर शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गङ्गाजी और यमुनाजी में जल की धारा बहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे ॥ 4 ॥

सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार॥ 69 ॥

सीताजी को सास ने अनेकों प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षाएँ दीं और वे (सीताजी) बड़े ही प्रेम से बार-बार चरण कमलों में सिर नवाकर चलीं ॥ 69 ॥

(37) **समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥**
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥

जब लक्ष्मणजी ने ये समाचार पाये, तब वे व्याकुल होकर उदास-मुँह उठ दौड़े। शरीर काँप रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, नेत्र आंसुओं से भरे हैं। प्रेम से अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्रीरामजी के चरण पकड़ लिए ॥ 1 ॥

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े॥
सोचु हृदयं बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा॥

वे कुछ कह नहीं सकते, खड़े-खड़े देख रहे हैं। [ऐसे दीन हो रहे हैं] मानो जल से निकाले जाने पर मछली दीन हो रही हो। हृदय में यह सोच है कि हे विधाता! क्या होने वाला है? क्या हमारा सब सुख और पुण्य पूरा हो गया? ॥ 2 ॥

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें॥

मुझको श्रीरघुनाथजी क्या कहेंगे? घर पर रखेंगे या साथ ले चलेंगे? श्रीरामचन्द्रजी ने भाई लक्ष्मण को हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सभी से नाता तोड़े हुए खड़े देखा ॥ 3 ॥

बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझे हृदयं परिनाम उछाहू॥

तब नीति में निपुण और शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र श्रीरामचन्द्रजी वचन बोले-हे तात! परिणाम में होने वाले आनन्द को हृदय में समझकर तुम प्रेमवश अधीर मत होओ ॥ 4 ॥

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥ 70 ॥

जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है; नहीं तो जगत् में जन्म व्यर्थ ही है ॥ 70 ॥

(38) **अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥**
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं॥

हे भाई! हृदय में ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। भरत और शत्रुन घर पर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मन में मेरा दुःख है ॥ 1 ॥

मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू॥

इस अवस्था मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊं तो अयोध्या सभी प्रकार से अनाथ हो जाएगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभी पर दुःख का दुःसह भार आ पड़ेगा ॥ 2 ॥

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥

अतः तुम यहीं रहो और सबका सन्तोष करते रहो। नहीं तो हे तात! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है ॥ 3 ॥

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी॥
सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें॥

हे तात! ऐसी नीति विचारकर तुम घर रह जाओ। यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत ही व्याकुल हो गए। इन शीतल वचनों से वे कैसे सूख गये, जैसे पाले के स्पर्श से कमल सूख जाता है! ॥ 4 ॥

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥ 71 ॥

प्रेमवश लक्ष्मणजी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता। उन्होंने व्याकुल होकर श्रीरामजी के चरण पकड़ लिए और कहा-हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं; अत: आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है? ॥ 71 ॥

(39) **दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराई॥**
नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी॥

हे स्वामी! आपने मुझे सीख तो बड़ी अच्छी दी है, पर मुझे अपनी कायरता से वह मेरे लिए अगम (पहुँच के बाहर) लगी। शास्त्र और नीति के तो वे ही श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी हैं जो धीर हैं और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हैं॥ 1 ॥

मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥

मैं तो प्रभु (आप) के स्नेह में पला हुआ छोटा बच्चा हूँ! कहीं हंस भी मन्दराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सकते हैं! हे नाथ! स्वभाव से ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता, किसी को भी नहीं जानता॥ 2 ॥

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥

जगत् में जहाँ तक स्नेह का सम्बन्ध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है-हे स्वामी! हे दीनबन्धु! हे सबके हृदय के अंदर की जानने वाले! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं॥ 3 ॥

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

धर्म और नीति का उपदेश तो उसको करना चाहिए जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो। किन्तु जो मन, वचन और कर्म से चरणों में ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिन्धु! क्या वह भी त्यागने योग्य है? ॥ 4 ॥

करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत॥ 72 ॥

दया के समुद्र श्रीरामचन्द्रजी ने भले भाई के कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेह के कारण डरे हुए जानकर, हृदय से लगाकर समझाया॥ 72 ॥

(40) **मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥**
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥

[और कहा-] हे भाई! जाकर माता से विदा माँग आओ और जल्दी वन को चलो! रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीरामजी की वाणी सुनकर लक्ष्मणजी आनन्दित हो गए। बड़ी हानि दूर हो गयी और बड़ा लाभ हुआ!॥ 1 ॥

हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥

वे हर्षित हृदय से माता सुमित्राजी के पास आये, मानो अंधा फिर से नेत्र पा गया हो। उन्होंने जाकर माता के चरणों में मस्तक नवाया। किन्तु उनका मन रघुकुल को आनन्द देने वाले श्रीरामजी और जानकीजी के साथ था॥ 2 ॥

पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी॥

गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा॥

माता ने उदास मन देखकर उनसे [कारण] पूछा। लक्ष्मणजी ने सब कथा विस्तार से कह सुनायी। सुमित्राजी कठोर वचनों को सुनकर ऐसी सहम गयीं जैसे हिरनी चारों ओर वन में आग लगी देखकर सहम जाती है॥ 3॥

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू॥
मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥

लक्ष्मण ने देखा कि आज (अब) अनर्थ हुआ। ये स्नेहवश काम बिगाड़ देंगी! इसलिए वे विदा माँगते हुए डर के मारे सकुचाते हैं [और मन-ही-मन सोचते हैं] कि हे विधाता! माता साथ जाने को कहेंगी या नहीं॥ 4॥

समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥ 73॥

सुमित्राजी ने श्रीरामजी और श्रीसीताजी के रूप, सुन्दर शील और स्वभाव को समझकर और उन पर राजा का प्रेम देखकर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकेयी ने बुरी तरह घात लगाया॥ 73॥

(41) **धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥**
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥

परन्तु कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहने वाली सुमित्राजी कोमल वाणी से बोलीं-हे तात! जानकी जी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं!॥ 1॥

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइं दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

जहाँ श्रीरामजी का निवास हो वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वन को जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है॥ 2॥

गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। फिर श्रीरामचन्द्रजी तो प्राणों के भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थरहित सखा हैं॥ 3॥

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

जगत् में जहाँ तक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजी के नाते से ही [पूजनीय और परम प्रिय] मानने योग्य हैं। हृदय में ऐसा जानकर, हे तात! उनके साथ वन जाओ और जगत् में जीने का लाभ उठाओ!॥ 4॥

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥ 74॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, [हे पुत्र!] मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्त ने छल छोड़कर श्रीरामजी के चरणों में स्थान प्राप्त किया है॥ 74॥

(42) **पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥**

नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरघुनाथजी का भक्त हो। नहीं तो जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है॥ 1॥

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥

तुम्हारे ही भाग्य से श्रीरामजी वन को जा रहे हैं। हे तात! दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीसीतारामजी के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो॥ 2॥

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह-इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से श्रीसीतारामजी की सेवा करना॥ 3॥

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

तुमको वन में सब प्रकार से आराम है, जिसके साथ श्रीरामजी और सीताजी रूप पिता-माता हैं। हे पुत्र! तुम वही करना जिससे श्रीरामचन्द्रजी वन में क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है॥ 4॥

छ.-

उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी प्रभुहि सिख देई आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

हे तात! मेरा यही उपदेश है (अर्थात् तुम वही करना) जिससे वन में तुम्हारे कारण श्रीरामजी और सीताजी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगर के सुखों की याद भूल जायें। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजी ने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्रीलक्ष्मणजी) को शिक्षा देकर [वन जाने की] आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्रीसीताजी और श्रीरघुवीरजी के चरणों में तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो!

सो.-

मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस॥ 75॥

माता के चरणों में सिर नवाकर हृदय में डरते हुए [कि अब भी कोई विघ्न न आ जाये] लक्ष्मणजी तुरंत इस तरह चल दिये जैसे सौभाग्यवश कोई हिरन कठिन फंदे को तुड़ाकर भाग निकला हो॥ 75॥

(43) **गए लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥**
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृपमंदिर आए॥

लक्ष्मणजी वहाँ गए जहाँ श्रीजानकीनाथजी थे और प्रिय का साथ पाकर मन में बड़े ही प्रसन्न हुए। श्रीरामजी और सीताजी के सुन्दर चरणों की वन्दना करके वे उनके साथ चले और राजभवन में आये॥ 1॥

कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥

तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने॥

नगर के स्त्री-पुरुष आपस में कह रहे हैं कि विधाता ने खूब बनाकर बात बिगाड़ी ! उनके शरीर दुबले, मन दु:खी और मुख उदास हो रहे हैं। वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे शहद छीन लिये जाने पर शहद की मक्खियाँ व्याकुल हों॥ 2॥

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा॥

सब हाथ मल रहे हैं और सिर धुनकर (पीटकर) पछता रहे हैं। मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हैं। राजद्वार पर बड़ी भीड़ हो रही है। अपार विषाद का वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 3॥

सचिवँ उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥

'श्रीरामचन्द्रजी पधारे हैं', ये प्रिय वचन कहकर मन्त्री ने राजा को उठाकर बैठाया। सीतासहित दोनों पुत्रों को [वन के लिए तैयार] देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए॥ 4॥

दो.-

सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ॥ 76॥

सीतासहित दोनों सुन्दर पुत्रों को देख-देखकर राजा अकुलाते हैं और स्नेहवश बारंबार उन्हें हृदय से लगा लेते हैं॥ 76॥

(44) **सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू॥**
नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब मागा॥

राजा व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते। हृदय में शोक से उत्पन्न हुआ भयानक सन्ताप है। तब रघुकुल के वीर श्रीरामचन्द्रजी ने अत्यन्त प्रेम से चरणों में सिर नवाकर उठकर विदा माँगी-॥ 1॥

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै॥
तात किएं प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाइ होइ अपबादू॥

हे पिताजी ! मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिए। हर्ष के समय आप शोक क्यों कर रहे हैं? हे तात ! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद (कर्तव्य कर्म में त्रुटि) करने से जगत् में यश जाता रहेगा और निन्दा होगी॥ 2॥

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं॥

यह सुनकर स्नेहवश राजा ने उठकर श्रीरघुनाथजी की बाँह पकड़कर उन्हें बैठा लिया और कहा-हे तात ! सुनो, तुम्हारे लिए मुनिलोग कहते हैं कि श्रीराम चराचर के स्वामी हैं॥ 3॥

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥
करइ जो करम पाव फल सोइ। निगम नीति असि कह सबु कोई॥

शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर हृदय में विचारकर फल देता है। जो कर्म करता है वही फल पाता है। ऐसी वेद की नीति है, यह सब कोई कहते हैं॥ 4॥

दो.-

औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।

अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु ॥ 77 ॥

[किन्तु इस अवसर पर तो इसके विपरीत हो रहा है,] अपराध तो कोई और ही करे और उसके फल का भोग कोई और ही पावे। भगवान की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जानने योग्य जगत् में कौन है ? ॥ 77 ॥

(45) **रायँ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी ॥**
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने ॥

राजा ने इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी को रखने के लिए छल छोड़कर बहुत से उपाय किये। पर जब उन्होंने धर्मधुरन्धर, धीर और बुद्धिमान श्रीरामजी का रुख देख लिया और वे रहते हुए न जान पड़े ॥ 1 ॥

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही ॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए ॥

तब राजा ने सीताजी को हृदय से लगा लिया और बड़े प्रेम से बहुत प्रकार की शिक्षा दी। वन के दुःसह दुःख कहकर सुनाये। फिर सास, ससुर तथा पिता के [पास रहने के] सुखों को समझाया ॥ 2 ॥

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा ॥
औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई ॥

परन्तु सीताजी का मन श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में अनुरक्त था। इसलिए उन्हें घर अच्छा नहीं लगा और न वन भयानक लगा। फिर और सब लोगों ने भी वन में विपत्तियों की अधिकता बता-बताकर सीताजी को समझाया ॥ 3 ॥

सचिव नारि गुर नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ॥
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू ॥

मन्त्री सुमन्त्रजी की पत्नी और गुरु वसिष्ठजी की स्त्री अरुन्धतीजी तथा और भी चतुर स्त्रियाँ स्नेह के साथ कोमल वाणी से कहती हैं कि तुमको तो [राजा ने] वनवास दिया नहीं है। इसलिए जो ससुर, गुरु और सास कहें, तुम तो वही करो ॥ 4 ॥

दो.-

सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि ॥ 78 ॥

यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुनने पर सीताजी को अच्छी नहीं लगी। [वे इस प्रकार व्याकुल हों गयीं] मानो शरद् ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी लगते ही चकई व्याकुल हो उठी हो ॥ 78 ॥

(46) **सीय सकुच बस उतरु न देई सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥**
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी ॥

सीताजी संकोचवश उत्तर नहीं देतीं। इन बातों को सुनकर कैकेयी तमककर उठी। उसने मुनियों के वस्त्र, आभूषण (माला, मेखला आदि) और बर्तन (कमण्डलु आदि) लाकर श्रीरामचन्द्रजी के आगे रख दिये और कोमल वाणी से कहा- ॥ 1 ॥

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा ॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ ॥

हे रघुवीर ! राजा को तुम प्राणों के समान प्रिय हो। भीरु (प्रेमवश दुर्बल हृदय के) राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे ! पुण्य, सुन्दर, यश और परलोक के चाहे नष्ट हो जाय, पर तुम्हें वन जाने को वे कभी न कहेंगे ॥ 2 ॥

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा॥
भूपहि बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥

ऐसा विचारकर जो तुम्हें अच्छा लगे वही करो। माता की सीख सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने [बड़ा] सुख पाया। परन्तु राजा को ये वचन बाण के समान लगे। [वे सोचने लगे] अब भी अभागे प्राण [क्यों] नहीं निकलते ! ॥ 3 ॥

लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू॥
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई॥

राजा मूर्च्छित हो गए, लोग व्याकुल हैं। किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें। श्रीरामचन्द्रजी तुरंत मुनि का वेष बनाकर और माता-पिता को सिर नवाकर चल दिये ॥ 4 ॥

दो.-

सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥ 79 ॥

वन का सब साज-सामान सजकर (वन के लिए आवश्यक वस्तुओं को साथ लेकर) श्रीरामचन्द्रजी स्त्री (श्रीसीताजी) और भाई (लक्ष्मणजी) सहित, ब्राह्मण और गुरु के चरणों की वन्दना करके सबको अचेत करके चले ॥ 79 ॥

(47) **निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े॥**
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए॥

राजमहल से निकलकर श्रीरामचन्द्रजी वसिष्ठजी के दरवाजे पर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरह की अग्नि में जल रहे हैं। उन्होंने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया। फिर श्रीरामचन्द्रजी ने ब्राह्मणों की मण्डली को बुलाया ॥ 1 ॥

गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥

गुरुजी से कहकर उन सबको वर्षाशन (वर्ष भर का भोजन) दिये और आदर, दान तथा विनय से उन्हें वश में कर लिया। फिर याचकों को दान और मान देकर सन्तुष्ट किया तथा मित्रों को पवित्र प्रेम से प्रसन्न किया ॥ 2 ॥

दासीं दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौंपि बोले कर जोरी॥
सब कै सार संभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं॥

फिर दास-दासियों को बुलाकर उन्हें गुरुजी को सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले-हे गुसाईं ! इन सबकी माता-पिता के समान सार-संभार (देख-रेख) करते रहियेगा ॥ 3 ॥

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी॥
सोई सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी॥

श्रीरामचन्द्रजी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रकार से हितकारी मित्र वही होगा जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें ॥ 4 ॥

दो.-

मातु सकल मोरे बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन।

सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन ॥ 80 ॥

हे परम चतुर पुरवासी सज्जनो ! आपलोग सब वही उपाय करियेगा जिससे मेरी सब माताएं मेरे विरह के दुःख से दुःखी न हों ॥ 80 ॥

(48) **एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा ॥**
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई ॥

इस प्रकार श्रीरामजी ने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरुजी के चरणकमलों में सिर नवाया। फिर गणेशजी, पार्वतीजी और कैलासपति महादेवजी को मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर श्रीरघुनाथजी चले ॥ 1 ॥

राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू ॥

श्रीरामजी के चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया। नगर का आर्तनाद (हाहाकार) सुना नहीं जाता। लङ्का में बुरे शकुन होने लगे, अयोध्या में अत्यन्त शोक छा गया और देवलोक में सब हर्ष और विषाद दोनों के वश में हो गये। [हर्ष इस बात का था कि अब राक्षसों का नाश होगा और विषाद अयोध्यावासियों के शोक के कारण था।] ॥ 2 ॥

गइ मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥

मूर्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमन्त्र को बुलाकर ऐसा कहने लगे-श्रीराम वन को चले गये, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। न जाने ये किस सुख के लिए शरीर में टिक रहे हैं ॥ 3 ॥

एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू ॥

इससे अधिक बलवती और कौनसी व्यथा होगी जिस दुःख को पाकर प्राण शरीर को छोड़ेंगे। फिर धीरज धरकर राजा ने कहा-हे सखा ! तुम रथ लेकर श्रीराम के साथ जाओ ॥ 4 ॥

दो.-

सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि ॥ 81 ॥

अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारों को और सुकुमारी जानकी को रथ में चढ़ाकर, वन दिखलाकर चार दिन के बाद लौट आना ॥ 81 ॥

(49) **जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई ॥**
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी ॥

यदि धैर्यवान् दोनों भाई न लौटें-क्योंकि श्रीरघुनाथजी प्रण के सच्चे और दृढ़ता से नियम का पालन करने वाले हैं-तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभो ! जनककुमारी सीताजी को तो लौटा दीजिए ॥ 1 ॥

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई ॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू ॥

जब सीता वन को देखकर डरें, तब मौका पाकर मेरी यह सीख उनसे कहना कि तुम्हारे सास और ससुर ने ऐसा सन्देश कहा है कि हे पुत्री ! तुम लौट चलो, वन में बहुत क्लेश हैं ॥ 2 ॥

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ॥

एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥

कही पिता के घर, कभी ससुराल, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं रहना। इस प्रकार तुम बहुत-से उपाय करना। यदि सीताजी लौट आयीं तो मेरे प्राणों को सहारा हो जायेगा॥ 3॥

नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भएं बिधि बामा॥

अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। रामु लखनु सिय आनि देखाऊ॥

नहीं तो अन्त में मेरा मरण ही होगा। विधाता के विपरीत होने पर कुछ वश नहीं चलता। हा! राम, लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखाओ। ऐसा कहकर राजा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥ 4॥

दो.-

पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ।

गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥ 82॥

सुमन्त्रजी राजा की आज्ञा पाकर, सिर नवाकर और बहुत जल्दी रथ जुड़वाकर वहाँ गये जहाँ नगर के बाहर सीताजी सहित दोनों भाई थे॥ 82॥

(50) **तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥**

चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥

तब (वहाँ पहुँचकर) सुमन्त्र ने राजा के वचन श्रीरामचन्द्रजी को सुनाये और विनती करके उनको रथ पर चढ़ाया। सीताजी सहित दोनों भाई रथ पर चढ़कर हृदय में अयोध्या को सिर पर नवाकर चले॥ 1॥

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥

कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं॥

श्रीरामचन्द्रजी को जाते हुए और अयोध्या को अनाथ [होते हुए] देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिए। कृपा के समुद्र श्रीरामजी उन्हें बहुत तरह से समझाते हैं, तो वे [अयोध्या की ओर] लौट जाते हैं; परन्तु प्रेमवश फिर लौट आते हैं॥ 2॥

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी॥

घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥

अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है। मानो अन्धकारमयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर-नारी भयानक जन्तुओं के समान एक-दूसरे को देखकर डर रहे हैं॥ 3॥

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

घर श्मशान, कुटुम्बी भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानो यमराज के दूत हैं। बगीचों में वृक्ष और बेलें कुम्हरा रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता॥ 4॥

दो.-

हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।

पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥ 83॥

करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के लिए पाले हुए हिरन, नगर के [गाय, बैल, बकरी आदि] पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर-॥ 83॥

(51) **राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥**
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी॥

श्रीरामजी के वियोग में सभी व्याकुल हुए जहाँ-तहाँ [ऐसे चुपचाप स्थिर होकर] खड़े हैं, मानो तसवीरों में लिखकर बनाये हुए हैं। नगर मानो फलों से परिपूर्ण बड़ा भारी सघन वन था। नगरनिवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत-से पशु-पक्षी थे। (अर्थात् अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलों को देने वाली नगरी थी और सब स्त्री-पुरुष सुख से उन फलों को प्राप्त करते थे।) ॥ 1 ॥

बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥

विधाता ने कैकेयी को भीलनी बनाया, जिसने दसों दिशाओं में दुःसह दावाग्नि (भयानक आग) लगा दी। श्रीरामचन्द्रजी के विरह की इस अग्नि को लोग सह न सके। सब लोग व्याकुल होकर भाग चले ॥ 2 ॥

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुवीर अवध नहिं काजू॥

सबने मन में विचार कर लिया कि श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के बिना सुख नहीं है। जहाँ श्रीरामजी रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा। श्रीरामचन्द्रजी के बिना अयोध्या में हम लोगों का कुछ काम नहीं है ॥ 3 ॥

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥

ऐसा विचार दृढ़ करके देवताओं को भी दुर्लभ सुखों से पूर्ण घरों को छोड़कर सब श्रीरामचन्द्रजी के साथ चल पड़े। जिनको श्रीरामजी के चरणकमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषयभोग वश में कर सकते हैं ॥ 4 ॥

दो.-

बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥ 84 ॥

बच्चों और बूढ़ों को घरों में छोड़कर सब लोग साथ हो लिए। पहले दिन श्रीरघुनाथजी ने तमसा नदी के तीर पर निवास किया ॥ 84 ॥

(52) **रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी॥**
करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहिं पीर पराई॥

प्रजा को प्रेमवश देखकर श्रीरघुनाथजी के दयालु हृदय में बड़ा दुःख हुआ। प्रभु श्रीरघुनाथजी करुणामय हैं। परायी पीड़ा को वे तुरंत पा जाते हैं (अर्थात् दूसरे का दुःख देखकर वे तुरंत स्वयं दुःखित हो जाते है) ॥ 1 ॥

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए॥
किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे॥

प्रेमयुक्त कोमल और सुन्दर वचन कहकर श्रीरामजी ने बहुत प्रकार से लोगों को समझाया और बहुतेरे धर्मसम्बन्धी उपदेश दिये, परन्तु प्रेमवश लोग लौटाये लौटते नहीं ॥ 2 ॥

सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमायाँ मति मोई॥

शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता। श्रीरघुनाथजी असमञ्जस के अधीन हो गये (दुविधा में पड़ गये)। शोक और परिश्रम (थकावट) के मारे लोग सो गये और कुछ देवताओं की माया से भी उनकी बुद्धि मोहित हो गयी ॥ 3 ॥

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोज मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपायँ बनिहि नहिं बाता ॥

जब दो पहर रात बीत गयी, तब श्रीरामचन्द्रजी ने प्रेमपूर्वक मन्त्री सुमन्त्र से कहा-हे तात! रथ के खोज मारकर (अर्थात् पहियों के चिन्हों से दिशा का पता न चले इस प्रकार) रथ को हाँकिये और किसी उपाय से बात नहीं बनेगी ॥ 4 ॥

दो.-

राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ ॥ 85 ॥

शंकरजी के चरणों में सिर नवाकर श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी रथ पर सवार हुए। मन्त्री ने तुरंत ही रथ को, इधर-उधर खोज छिपाकर चला दिया ॥ 85 ॥

(53) **जागे सकल लोग भएँ भोरू। गे रघुनाथ भयउ अति सोरू ॥**
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं ॥

सबेरा होते ही सब लोग जागे, तो बड़ा शोर मचा कि श्रीरघुनाथजी चले गये। कहीं रथ को खोज नहीं पाते, सब 'हा राम! हा राम!' पुकारते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं ॥ 1 ॥

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू ॥
एकहि एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू ॥

मानो समुद्र में जहाज डूब गया हो, जिससे व्यापारियों का समुदाय बहुत ही व्याकुल हो उठा हो, वे एक-दूसरे को उपदेश देते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी ने, हम लोगों को क्लेश होगा, यह जानकर छोड़ दिया है ॥ 2 ॥

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना ॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरहु न मागें दीन्हा ॥

वे लोग अपनी निन्दा करते हैं और मछलियों की सराहना करते हैं। [कहते हैं-] श्रीरामचन्द्रजी के बिना हमारे जीने को धिक्कार है। विधाता ने यदि प्यारे का वियोग ही रचा, तो फिर उसने माँगने पर मृत्यु क्यों नहीं दी! ॥ 3 ॥

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना ॥

इस प्रकार बहुत-से प्रलाप करते हुए वे सन्ताप से भरे हुए अयोध्याजी में आये। उन लोगों के विषम वियोग की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। [चौदह सालकी] अवधि की आशा से ही वे प्राणों को रख रहे हैं ॥ 4 ॥

दो.-

राम दरस हित नम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि ॥ 86 ॥

[सब] स्त्री-पुरुष श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन के लिए नियम और व्रत करने लगे और ऐसे दुःखी हो गये जैसे चकवा, चकवी और कमल सूर्य के बिना दीन हो जाते हैं ॥ 86 ॥

(54) **सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥**
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥

सीताजी और मन्त्रीसहित दोनों भाई श्रृंगवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ गङ्गाजी को देखकर श्रीरामजी रथ से उतर पड़े और बड़े हर्ष के साथ उन्होंने दण्डवत् की॥ 1॥

लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा॥
गंगा सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥

लक्ष्मणजी, सुमन्त्र और सीताजी ने भी प्रणाम किया। सबके साथ श्रीरामचन्द्रजी ने सुख पाया। गङ्गाजी समस्त आनन्द-मङ्गलों की मूल हैं। वे सब सुखों की करने वाली और सब पीड़ाओं को हरने वाली हैं॥ 2॥

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥

अनेक कथा-प्रसङ्ग कहते हुए श्रीरामजी गङ्गाजी की तरङ्गों को देख रहे हैं। उन्होंने मन्त्री को, छोटे भाई लक्ष्मणजी को और प्रिया सीताजी को देवनदी गङ्गाजी की बड़ी महिमा सुनाई॥ 3॥

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू॥

इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्ग का सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिनके स्मरण मात्र से [बार-बार जन्मने और मरने का] महान् श्रम मिट जाता है, उनको 'श्रम' होना-यह केवल लौकिक व्यवहार (नरलीला) है॥ 4॥

दो.-

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥ 87॥

शुद्ध (प्रकृतिजन्य त्रिगुणों से रहित, मायातीत दिव्य मङ्गलविग्रह) सच्चिदानन्दकन्दस्वरूप सूर्यकुल के ध्वजारूप सूर्यकुल के ध्वजारूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मनुष्यों के सदृश ऐसे चरित्र करते हैं जो संसाररूपी समुद्र के पार उतरने के लिए पुल के समान हैं॥ 87॥

(55) **यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई॥**
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा॥

जब निषादराज गुह ने यह खबर पायी, तब आनन्दित होकर उसने अपने प्रियजनों और भाई-बन्धुओं को बुला लिया और भेंट के लिए फल, मूल (कन्द) लेकर और उन्हें भारों (बहँगियों) में भरकर मिलने के लिए चला। उसके हृदय में हर्ष का पार नहीं था॥ 1॥

करि दंडवत भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई॥

दण्डवत् करके भेंट सामने रखकर वह अत्यन्त प्रेम से प्रभु को देखने लगा। श्रीरघुनाथजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश होकर उसे अपने पास बैठाकर कुशल पूछी॥ 2॥

नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउं भागभाजन जन लेखें॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥

निषादराज ने उत्तर दिया-हे नाथ ! आपके चरणकमल के दर्शन से ही कुशल है [आपके चरणारविन्दों के दर्शनकर] आज मैं भाग्यवान् पुरुषों की गिनती में आ गया। हे देव ! यह पृथ्वी, धन और घन सब आपका है। मैं तो परिवारसहित आपका नीच सेवक हूँ ॥ 3 ॥

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥

अब कृपा करके पुर (श्रंगवेरपुर) में पधारिये और इस दास की प्रतिष्ठा बढ़ाइये, जिससे सब लोग मेरे भाग्य की बड़ाई करें। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-हे सुजान सखा ! तुमने जो कुछ कहा सब सत्य है। परन्तु पिताजी ने मुझको और ही आज्ञा दी है ॥ 4 ॥

दो.-

बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥ 88 ॥

[उनके आज्ञानुसार] मुझे चौदह वर्ष तक मुनियों का व्रत और वेष धारण कर और मुनियों के योग्य आहार करते हुए वन में ही बसना है, गाँव के भीतर निवास करना उचित नहीं है। यह सुनकर गुह को बड़ा दुःख हुआ ॥ 88 ॥

(56) **राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥**
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के रूप को देखकर गाँव के स्त्री-पुरुष प्रेम के साथ चर्चा करते हैं। [कोई कहती है-] हे सखी ! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे [सुन्दर सुकुमार] बालकों को वन में भेज दिया है ! ॥ 1 ॥

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहि बिधि दीन्हा॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिसुपा मनोहर जाना॥

कोई एक कहते हैं-राजा ने अच्छा ही किया, इसी बहाने हमें भी ब्रह्मा ने नेत्रों का लाभ दिया। तब निषादराज ने हृदय में अनुमान किया, तो अशोक के पेड़ को [उनके ठहरने के लिए] मनोहर समझा ॥ 2 ॥

लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥
पुरजन करि जोहारु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए॥

उसने श्रीरघुनाथजी को ले जाकर वह स्थान दिखाया। श्रीरामचन्द्रजी ने [देखकर] कहा कि यह सब प्रकार से सुन्दर है। पुरवासी लोग जोहार (वन्दना) करके अपने-अपने घर लौटे और श्रीरामचन्द्रजी सन्ध्या करने पधारे ॥ 3 ॥

गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥

गहने [इसी बीच] कुश और कोमल पत्तों की कोमल और सुन्दर साथरी सजाकर बिछा दी; और पवित्र, मीठे और कोमल देख-देखकर दोनों में भर-भरकर फल-मूल और पानी रख दिया [अथवा अपने हाथ से फल-मूल दोनों में भर-भरकर रख दिये] ॥ 4 ॥

दो.-

सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ॥ 89 ॥

सीताजी, सुमन्त्रजी और भाई लक्ष्मणसहित कन्द-मूल-फल खाकर रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी लेट गये। भाई लक्ष्मणजी उनके पैर दबाने लगे ॥ 89 ॥

(57) **उठे लखनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥**
कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन ॥

फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी को सोते जानकर लक्ष्मणजी उठे और कोमल वाणी से मन्त्री सुमन्त्रजी को सोने के लिए कहकर वहाँ से कुछ दूर पर धनुष-बाण से सजकर, वीरासन से बैठकर जागने (पहरा देने) लगे ॥ 1 ॥

गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती ॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ॥

गुहने विश्वासपात्र पहरेदारों को बुलाकर अत्यन्त प्रेम से जगह-जगह नियुक्त कर दिया। और आप कमर में तरकस बाँधकर तथा धनुष पर बाण चढ़ाकर लक्ष्मणजी के पास जा बैठा ॥ 2 ॥

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदयँ बिषादू ॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥

प्रभु को जमीन पर सोते देखकर प्रेमवश निषादराज के हृदय में विषाद हो आया। उसका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों से [प्रेमाश्रुओं का] जल बहने लगा। वह प्रेमसहित लक्ष्मणजी से वचन कहने लगा- ॥ 3 ॥

भूपति भवन सुभायँ सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा ॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे ॥

महाराज दशरथजी का महल तो स्वभाव से ही सुन्दर है, इन्द्रभवन भी जिसकी समानता नहीं पा सकता। उसमें सुन्दर मणियों के रचे चौबारे (छत के ऊपर बँगले) हैं, जिन्हें मानो रति के पति कामदेव ने अपने ही हाथों सजाकर बनाया है ॥ 4 ॥

दो.-

सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास ॥ 90 ॥

जो पवित्र, बड़े ही विलक्षण, सुन्दर भोगपदार्थों से पूर्ण और फूलों की सुगन्ध से सुवासित हैं; जहाँ सुन्दर पलँग और मणियों के दीपक हैं तथा सब प्रकार का पूरा आराम है।। 90 ॥

(58) **बिबिध बसन उपधान तुराई। छीर फेन मृदु बिसद सुहाई ॥**
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मृदु हरहीं ॥

जहाँ [ओढ़ने-बिछाने के] अनेकों वस्त्र, तकिये और गद्दे हैं, जो दूध के फेन के समान कोमल, निर्मल (उज्ज्वल) और सुन्दर हैं; वहाँ (उन चौबारों में) श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी रात को सोया करते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे ॥ 1 ॥

ते सिय रामु साथरीं सोए। श्रमित बसन बिनु जाहिं न जाए ॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी ॥

वही श्रीसीता और श्रीरामजी आज घास-फूस की साथरी पर थके हुए बिना वस्त्र के ही सोये हैं। ऐसी दशा में वे देखे नहीं जाते। माता, पिता, कुटुम्बी, पुरवासी (प्रजा), मित्र, अच्छे शील-स्वभाव के दास और दासियाँ- ॥ 2 ॥

जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥

सब जिनकी अपने प्राणों की तरह सार-सँभार करते थे, वही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी आज पृथ्वी पर सो रहे हैं। जिनके पिता जनकजी हैं, जिनका प्रभाव जगत् में प्रसिद्ध है; जिनके ससुर इन्द्र के मित्र रघुराज दशरथजी हैं॥ 3॥

रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू॥

और पति श्रीरामचन्द्रजी हैं, वही जानकीजी आज जमीन पर सो रही हैं। विधाता किसको प्रतिकूल नहीं होता! सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी क्या वन के योग्य हैं? लोग सच कहते हैं कि कर्म (भाग्य) ही प्रधान है॥ 4॥

दो.-

कैकयनंदनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह॥ 91॥

कैकयराज की लड़की नीचबुद्धि कैकेयी ने बड़ी ही कुटिलता की, जिसने रघुनन्दन श्रीरामजी को और जानकीजी को सुख के समय दुःख दिया॥ 91॥

(59) **भई दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी॥**
भयउ बिषादु निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी॥

वह सूर्यकुलरूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी हो गयी। उस कुबुद्धि ने सम्पूर्ण विश्व को दुःखी कर दिया। श्रीराम-सीता को जमीन पर सोते हुए देखकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ॥ 1॥

बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले-हे भाई! कोई किसी को सुख-दुःख का देने वाला नहीं है। सब अपने ही किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं॥ 2॥

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति, बिपति करमु अरु कालू॥

संयोग (मिलना), वियोग (बिछुड़ना), भले-बुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन-ये सभी भ्रम के फे हैं। जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, कर्म और काल-जहाँ तक जगत् के जंजाल हैं॥ 3॥

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥

धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँ तक व्यवहार हैं जो देखने, सुनने और मन के अंदर विचारने में आते हैं, इन सबका मूल मोह (अज्ञान) ही है। परमार्थतः ये नहीं हैं॥ 4॥

दो.-

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ॥
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥ 92॥

जैसे स्वप्न में राजा भिखारी हो जाये या कंगाल स्वर्ग का स्वामी इन्द्र हो जाये, तो जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है; वैसे ही इस दृश्य-प्रपञ्च को हृदय से देखना चाहिए ॥ 92 ॥

(60) **अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥**
मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

ऐसा विचारकर क्रोध नहीं करना चाहिए और न किसी को व्यर्थ दोष ही देना चाहिए। सब लोग मोहरूपी रात्रि में सोने वाले हैं और सोते हुए उन्हें अनेकों प्रकार के स्वप्न दिखाई देते हैं ॥ 1 ॥

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

इस जगत्‌रूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपञ्च (मायिक जगत्‌) से छूटे हुए हैं। जगत्‌ में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब सम्पूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाये ॥ 2 ॥

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥

विवेक होने पर मोहरूपी भ्रम भाग जाता है, तब (अज्ञान का नाश होने पर) श्रीरघुनाथजी के चरणों में प्रेम होता है। हे सखा ! मन, वचन और कर्म से श्रीरामजी के चरणों में प्रेम होना, यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ (पुरुषार्थ) है ॥ 3 ॥

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलग अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

श्रीरामजी परमार्थस्वरूप (परमवस्तु) परब्रह्म हैं। वे अविगत (जानने में न आने वाले), अलख (स्थूल दृष्टि से देखने में न आने वाले), अनादि (आदिरहित), अनुपम (उपमारहित), सब विकारों से रहित और भेदशून्य हैं, वेद जिनका नित्य 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं।। 4 ॥

दो.-

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥ 93 ॥

वही कृपालु श्रीरामचन्द्रजी भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीलाएं करते हैं, जिनके सुनने से जगत्‌ के जंजाल मिट जाते हैं ॥ 93 ॥

(61) **सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥**
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल सुखदारा॥

हे सखा ! ऐसा समझ, मोह को त्यागकर श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रेम करो। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के गुण कहते-कहते सबेरा हो गया ! तब जगत्‌ का मङ्गल करने वाले और उसे सुख देने वाले श्रीरामजी जागे ॥ 1 ॥

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥

शौच के सब कार्य करके [नित्य] पवित्र और सुजान श्रीरामचन्द्रजी ने स्नान किया। फिर बड़का दूध मँगाया और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित उस दूध से सिर पर जटाएं बनायीं। यह देखकर सुमन्त्रजी के नेत्रों में जल छा गया ॥ 2 ॥

हृदय दाहि अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम कें साथा॥

उनका हृदय अत्यन्त जलने लगा, मुँह मलिन (उदास) हो गया। वे हाथ जोड़कर अत्यन्त दीन वचन बोले-हे नाथ! मुझे कोसलनाथ दशरथजी ने ऐसी आज्ञा दी थी कि तुम रथ लेकर श्रीरामजी के साथ जाओ॥ 3॥

बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि फेरि बेगि दोउ भाई॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी॥

वन दिखाकर, गङ्गास्नान कराकर दोनों भाइयों को तुरंत लौटा लाना। सब संशय और संकोच को दूर करके लक्ष्मण, राम, सीता को फिरा लाना॥ 4॥

दो.-

नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ॥ 94॥

महाराज ने ऐसा कहा था, अब प्रभु जैसा कहें, मैं वही करूँ; मैं आपकी बलिहारी हूँ। इस प्रकार विनती करके वे श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में गिर पड़े और उन्होंने बालक की तरह रो दिया॥ 94॥

(62) **तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें। अवध अनाथ न होई॥**
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा॥

[और कहा-] हे तात! कृपा करके वही कीजिए जिससे अयोध्या अनाथ न हो। श्रीरामजी ने मन्त्री को उठाकर धैर्य बँधाते हुए समझाया कि हे तात! आपने तो धर्म के सभी सिद्धान्तों को छान डाला है॥ 1॥

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥

शिबि, दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों (अनेकों) कष्ट सहे थे। बुद्धिमान् राजा रन्तिदेव और बलि बहुत-से संकट सहकर भी धर्म को पकड़े रहे (उन्होंने धर्म का परित्याग नहीं किया)॥ 2॥

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥
मैं सोइ धरमु करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा॥

वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उस धर्म को सहज ही पा लिया है। इस [सत्यरूपी धर्म] का त्याग करने से तीनों लोकों में अपयश छा जायेगा॥ 3॥

संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिएं उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥

प्रतिष्ठित पुरुष के लिए अपयश की प्राप्ति करोड़ों मृत्यु के समान भीषण सन्ताप देने वाली है। हे तात! मैं आपसे अधिक क्या कहूँ लौटकर उत्तर देने में भी पाप का भागी होता हूँ॥ 4॥

दो.-

पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि॥ 95॥

आप जाकर पिताजी के चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कार के साथ ही हाथ जोड़कर विनती करियेगा कि हे तात ! आप मेरी किसी बात की चिन्ता न करें ॥ 95 ॥

(63) **तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करउँ तात कर जोरें॥**
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें॥

आप भी पिता के समान ही मेरे बड़े हितैषी हैं। हे तात ! मैं हाथ जोड़कर आपसे विनती करता हूँ कि आपका भी सब प्रकार से वही कर्तव्य जिसमें पिताजी हम लोगों के सोच में दुःख न पावें ॥ 1 ॥

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥

श्रीरघुनाथजी और सुमन्त्रका यह संवाद सुनकर निषादराज कुटुम्बियों सहित व्याकुल हो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़वी बात कही। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने उसे बहुत ही अनुचित जानकर उनको मना किया ॥ 2 ॥

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥

श्रीरामचन्द्रजी ने सकुचाकर, अपनी सौगंध दिलाकर सुमन्त्रजी से कहा कि आप जाकर लक्ष्मण का यह सन्देश न कहियेगा। सुमन्त्र ने फिर राजा का सन्देश कहा कि सीता वन के क्लेश न सह सकेंगी ॥ 3 ॥

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥

अतएव जिस तरह सीता अयोध्या को लौट आवें, तुमको और श्रीरामचन्द्रजी को वही उपाय करना चाहिए। नहीं तो मैं बिल्कुल ही बिना सहारे का होकर वैसे ही नहीं जीऊंगा जैसे बिना जल के मछली नहीं जीती ॥ 4 ॥

दो.-

मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान॥ 96 ॥

सीता के मायके (पिता के घर) और ससुराल में सब सुख हैं। जब तक यह विपत्ति दूर नहीं होती, तब तक ने जब जहाँ जी चाहे, वहीं सुख से रहेंगी ॥ 96 ॥

(64) **बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥**
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥

राजा ने जिस तरह (जिस दीनता और प्रेम से) विनती की है, वह दीनता और प्रेम कहा नहीं जा सकता। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी ने पिता का सन्देश सुनकर सीताजी को करोड़ों (अनेकों) प्रकार से सीख दी ॥ 1 ॥

सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खभारू॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥

[उन्होंने कहा-] जो तुम घर लौट जाओ, तो सास, ससुर, गुरु, प्रियजन एवं कुटुम्बी सबकी चिन्ता मिट जाए। पति के वचन सुनकर जानकी जी कहती हैं-हे प्राणपति ! हे परम स्नेही ! सुनिये ॥ 2 ॥

प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥

प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥

हे प्रभो ! आप करुणामय और परम ज्ञानी हैं। [कृपा करके विचार तो कीजिए] शरीर को छोड़कर छाया अलग कैसे रोकी रह सकती है? सूर्य की प्रभा सूर्य को छोड़कर कहाँ जा सकती है? और चाँदनी चन्द्रमा को त्यागकर कहाँ जा सकती है? ॥ 3 ॥

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु ससुर हितकारी। उतरु देउं फिरि अनुचित भारी॥

इस प्रकार पति को प्रेममयी विनती सुनाकर सीताजी मन्त्री से सुहावनी वाणी कहने लगीं-आप मेरे पिताजी और ससुरजी के समान मेरा हित करने वाले हैं। आपको मैं बदले में उत्तर देती हूँ, यह बहुत ही अनुचित है ॥ 4 ॥

दो.-

आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात॥ 97 ॥

किन्तु हे तात ! मैं आर्त्त होकर ही आपके सम्मुख हुई हूँ, आप पुरा न मानियेगा। आर्यपुत्र (स्वामी) के चरणकमलों के बिना जगत् में जहाँ तक नाते हैं सभी मेरे लिए व्यर्थ हैं ॥ 97 ॥

(65) **पितु बैभव बिलास मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा॥**
सुखनिधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें॥

मैंने पिताजी के ऐश्वर्य की छटा देखी है, जिनके चरण रखने की चौकी से सर्वशिरोमणि राजाओं के मुकुट मिलते हैं (अर्थात् बड़े-बड़े राजा जिनके चरणों में प्रणाम करते है)। ऐसे पिता का घर भी, जो सब प्रकार के सुखों का भण्डार है, पति के बिना मेरे मन को भूलकर भी नहीं भाता ॥ 1 ॥

ससुर चक्कवई कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसनु देई॥

मेरे ससुर कोसलराज चक्रवर्ती सम्राट हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है; इन्द्र भी आगे होकर जिनका स्वागत करता है और अपने आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देता है, ॥ 2 ॥

ससुर एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥

ऐसे [ऐश्वर्य और प्रभावशाली] ससुर; [उनकी राजधानी] अयोध्या का निवास; प्रिय कुटुम्बी और माता के समान सासुएं-ये कोई भी श्रीरघुनाथजी के चरणकमलों की रज के बिना मुझे स्वप्न में भी सुखदायक नहीं लगते ॥ 3 ॥

अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥

दुर्गम रास्ते, जंगली धरती, पहाड़ हाथी, सिंह, अथाह तालाब एवं नदियाँ; कोल, भील, हिरन और पक्षी-प्राणपति (रघुनाथजी) के साथ रहते ये सभी मुझे सुख देने वाले होंगे ॥ 4 ॥

दो.-

सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ।

मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ ॥ 98 ॥

अतः सास और ससुर के पाँव पड़कर, मेरी ओर से विनती कीजियेगा कि वे मेरा कुछ भी सोच न करें; मैं वन में स्वभाव से सुखी हूँ ॥ 98 ॥

(66) **प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरें धनु भाथा ॥**
नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें ॥

वीरों में अग्रगण्य तथा धनुष और [बाणों से भरे] तरकश धारण किये मेरे प्राणनाथ और प्यारे देवर साथ हैं। इससे मुझे न रास्ते की थकावट है, न भ्रम है, और न मेरे मन में कोई दुःख ही है। आप मेरे लिए भूलकर भी सोच न करें ॥ 1 ॥

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी ॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना ॥

सुमन्त्र सीताजी की शीतल वांणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गये, जैसे साँप मणि खो जाने पर। नेत्रों से कुछ सूझता नहीं, कानों से सुनाई नहीं देता। वे बहुत व्याकुल हो गये, कुछ कह नहीं सकते ॥ 2 ॥

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती ॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनंदन दीन्हे ॥

श्रीरामचन्द्रजी ने उनका बहुत प्रकार से समाधान किया। तो भी उनकी छाती ठंडी न हुई। साथ चलने के लिए मन्त्री ने अनेकों यत्न किये (युक्तियाँ पेश कीं), पर रघुनन्दन श्रीरामजी [उन सब युक्तियों का] यथोचित उत्तर देते गये ॥ 3 ॥

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई ॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई ॥

श्रीरामजी की आज्ञा मेटी नहीं जा सकती। कर्म की गति कठिन है, उस पर कुछ भी वश नहीं चलता। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी के चरणों में सिर नवाकर सुमन्त्र इस तरह लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन (पूँजी) गँवाकर लौटे ॥ 4 ॥

दो.-

रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं ॥ 99 ॥

सुमन्त्र ने रथ को हाँका, घोड़े श्रीरामचन्द्रजी की ओर देख-देखकर हिनहिनाते हैं। यह देखकर निषादलोग विषाद के वश होकर सिर धुन-धुनकर (पीट-पीटकर) पछताते हैं ॥ 99 ॥

(67) **जासु बियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें ॥**
बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए ॥

जिनके वियोग में पशु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके वियोग में प्रजा, माता और पिता कैसे जीते रहेंगे? श्रीरामचन्द्रजी ने जबर्दस्ती सुमन्त्र को लौटाया। तब आप गङ्गाजी के तीर पर आये ॥ 1 ॥

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥

श्रीराम ने केवट से नाव माँगी, पर वह लाता नहीं। वह कहने लगा- मैंने तुम्हारा मर्म (भेद) जान लिया। तुम्हारे चरणकमलों की धूल के लिए सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है ॥ 2 ॥

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥

जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुन्दरी स्त्री हो गयी [मेरी नाव तो काठ की है]। काठ पत्थर से कठोर तो होता नहीं। मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जायेगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जायेगी, मैं लुट जाउँगा [अथवा रास्ता रुक जायेगा जिससे आप पार न हो सकेंगे और मेरी रोजी मारी जायेगी] (मेरी कमाने-खाने की राह ही मारी जायेगी) ॥ 3 ॥

एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउं कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

मैं तो इसी नाव से सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ। दूसरा कोई धंधा नहीं जानता। हे प्रभु! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरण-कमल पखारने (धो लेने) के लिए कह दो ॥ 4 ॥

छं.-

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

हे नाथ! मैं चरणकमल धोकर आप लोगों को नाव पर चढ़ा लूँगा; मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता। हे राम! मुझे आपकी दुहाई और दशरथजी की सौगंध है, मैं सब सच-सच कहता हूँ। लक्ष्मण भले ही मुझे तीर मारें, पर जब तक मैं पैरों को पखार न लूँगा, तब तक हे तुलसीदास के नाथ! हे कृपालु! मैं पार नहीं उतारूँगा।

सो.-

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥ 100 ॥

केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणाधाम श्रीरामचन्द्रजी जानकीजी और लक्ष्मणजी की ओर देखकर हँसे ॥ 100 ॥

बिहारी

(68) **मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोई।**
जा तन की छाई परे, स्यामु हरित दुति होई।

संदर्भ- प्रस्तुत दोहा कवि बिहारी द्वारा राधाजी की स्तुति में रचा गया है।

व्याख्या- कवि प्रार्थना करते हैं कि चतुर सुंदरी सुजान राधा उनके सांसारिक कष्टों को दूर करे, जिनके सुंदर गोरे शरीर की छाया पड़ते ही श्रीकृष्ण आनंदित तथा पुलकित हो जाते हैं।

(69) **अपने अंग के जानि कै जोवन-नृपति प्रबीन।**
स्तन, मन, नैन, नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन॥ 2 ॥

प्रसंग- नवयौवना नायिका के शरीर और मन में होने वाले परिवर्तनों (वृद्धि) को देखकर नायक यह प्रशंसात्मक टिप्पणी करता है-

व्याख्या- राजा जब बड़ा प्रवीण होता है। वह जानता है कि अपने पक्ष के सहायकों को, विश्वस्त सामन्तों को समय-समय पर वेतन-वृद्धि करके उनका विश्वास जीता जा सकता है। उन सहायकों की पद वृद्धि करके, सामन्तों की जागीर आदि में वृद्धि करके प्रवीण राजा यह चातुर्य करता है कि अपने विश्वस्त नौकरों को (हर समय नया आकर्षण बना रहे इसलिए) सम्मानित करता है। किसी युद्ध में विजय प्राप्त करने पर ऐसे शौर्य-पराक्रम प्रदर्शित करने वाले सामन्तों को विविध पुरस्कारादि देने के लिए विजय-समारोह भी प्रवीण राजा लोग किया करते थे। बिहारी ने इसी प्रकार के प्रवीण नृपति को अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण करके यौवन पर आरोपित कर दिया है और उसके इस कौशल की प्रशंसा की है कि उसने (यौवन ने) एक प्रवीण राजा की भाँति अपने पक्ष के सहायकों— स्तन, मन, नयन और नितम्बों में वृद्धि कर दी है। यहाँ स्तन और नितम्बों के यौवनागम पर स्थूलतर होते जाने की प्रक्रिया की ओर संकेत है कि वयःसन्धि आने पर नायिका के उरोज और नितम्ब माँसल होने लगते हैं। मन और नयन की वृद्धि करने का अभिधार्थ कुछ नहीं है क्योंकि मन तो नितान्त सूक्ष्म होता है, उसकी वृद्धि क्या हो सकती है। यौवन के आगमन पर मन में यही वृद्धि होती है कि नायिका विदग्ध हो जाती है। वह नायक से मिलने की सभी युक्तियाँ जान जाती है और ऐसी चातुर्यपूर्ण क्रियाएं, हाव-भाव दिखाती है, मन में काम-भाव की अनुभूति प्रबल होने लगती है। यही सब मन वृद्धि मानी जायेगी। नेत्रों में वृद्धि का भी स्थूल वृद्धि या आकार में वृद्धि से बिहारी का तात्पर्य प्रतीत नहीं होता। वे यौवनागम के बाद नायिका में होने वाले इस परिवर्तन को रेखांकित करना चाहते हैं कि नायिका के नेत्र चंचल होने लगते हैं, उनमें तिरछी चितवन से नायकों को आहत करने की सामर्थ्य बढ़ जाती हैं, वे अनुराग रंजित होकर लाल-डोरों से सम्पन्न हो जाते हैं। बिहारी मन और नयनों की वृद्धि का गहरा अर्थ लेना चाहते हैं, जिससे वयःसन्धि पर नायिका के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन को सूक्ष्म दृष्टि से देखा जा सके। इस यौवन रूपी राजा ने इस नायिका के शरीर में (विविध अंगों में), मन में किस प्रकार पदोन्नति कर दी है कि इस यौवनारूढ़ा नायिका की विशिष्ट पहचान कायम हो सकी है।

विशेष- (1) वयःसन्धि पर नायिका के शारीरिक अंगों, मन के स्तरों में क्या परिवर्तन आ जाता है, इसकी मीमांसा करना कवि का अभिप्रेत प्रतीत होता है। (2) अप्रस्तुत रूपक अलंकार की छटा दृष्टव्य है। (3) श्रृंगार रस का सुन्दर निरूपण है।

(70) **अर तैं टरत न बर-परे, दई मरक मनु मैन।**
होड़ा होड़ी बढ़ि चले चितु चतुराई, नैन॥ 3॥

प्रसंग- नायक नवयौवना नायिका की शोभा पर मुग्ध है, उसी की प्रशंसात्मक टिप्पणी करता है।

व्याख्या- अरे ! इस नवयौवना बाला के शरीर का सौन्दर्य नवयौवना के आगमन के कारण उमंग से युक्त, उत्साह युक्त मेरे चित्त और मन का चातुर्य और मेरे नयन अपने-अपने हठ पर अड़े हुए हैं और होड़ाहोड़ी, परस्पर लाग डाँट करते हैं और आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। ऐसा इसलिए हो रहा है कि स्वयं साक्षात् मदन देवता ने इन्हें बढ़ावा दे रखा है। उसी की शह से ये सब अड़े हुए हैं।

विशेष- (1) चितु, चतुराई, नैन का मानवीकरण करके कवि ने इन पर 'टरत', 'बर-परे' आदि मानवीय क्रिया व्यापारों का आरोप किया गया है।

(2) 'मनु मैन'-उत्प्रेक्षा अलंकार का चमत्कार उत्पन्न हुआ है। 'मरक मनु मैन' में वृत्यानुप्रास और 'चितु चतुराई' में छेकानुप्रास अलंकार की योजना की गई है।

(71) **औरे-ओप कनीनिकतु गनी घनी-सिर ताज।**

मनीं धनी के नेह की, बनीं छनीं पट लाज ॥ 4 ॥

प्रसंग- नवयौवना नायिका के नेत्रों की चमक एवं लज्जा के सौन्दर्य की प्रशंसा करती हुई उसकी अन्तरंग सखी कहती हैं-

व्याख्या- तेरी आंखों में और भी विचित्र प्रकार की, अनूठी चमक उत्पन्न हो गयी है। आंख की पुतलियों में जो विशिष्ट आभा, दीप्ति व्याप्त हो गयी है, उसके कारण तेरी अनेकों सपत्नियों में शिरोमणि के रूप में गणना की गयी है। अपने स्वामी के स्नेह की पात्र बनकर तू मणि (बहुमूल्य रत्न) जैसी हो गयी है, क्योंकि जिस प्रकार मणि किसी वस्त्र में आच्छादित होकर अधिक प्रभाव वाली हो जाती है, उसी प्रकार अवगुंठन के पट में से झाँकती हुई पुतलियाँ लज्जा मिश्रित भाव के कारण रक्तिम-सौन्दर्य से मण्डित हो गयी हैं। ऐसे अनुराग रंजित नयनों का सौन्दर्य ही नायिका के सौन्दर्य में वृद्धि करता है, उसी का चित्रण किया गया है।

विशेष- (1) छेकानुप्रास, रूपक अलंकार दृष्टव्य है।

(72) **सनि कज्जल चख-झख-लगन, उपज्यौ मुदिन सनेहु।**
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै, लहि सुदेगु सबु देह ॥ 5 ॥

प्रसंग- नायक से नायिका की अन्तरंग सखी (दूती) नायिका के कज्जल रंजित नयनों का सौन्दर्य वर्णन करके नायक को प्रोत्साहन करना चाहती है-

व्याख्या- नायिका के मीन रूपी नयनों में शनैश्वर (ग्रह विशेष) रूपी काजल लगा हुआ है। उसके ऐसे सुन्दर नेत्रों से नायक को जिस दिन देखा था, उस पर शुभ दिन से नायक के मन में उसके प्रति स्नेह तो उत्पन्न हो गया था, किन्तु वह उस पर पूरा अधिकार समझकर उसकी सर्वांग सुन्दर देह का भोग क्यों नहीं करता। जब किसी की लग्न में मीन राशि पर शनि ग्रह पड़ा हो तो उसे राजा होना चाहिए। इसी ज्योतिष के सिद्धान्त से प्रेरणा ग्रहण करके दूती नायक से कहती है कि जिस प्रकार राजा होकर देश की सम्पत्ति की वह सम्यक प्रकार भोग करता है, उसके संसाधनों का दोहन करता है, वैसे ही तू उसकी यौवन से भरी हुई सुन्दर, पुष्ट देह का सर्वांग भोग क्यों नहीं करता।

विशेष- (1) नायिका (आलम्बन विभाव) के नयनों (नख-शिख वर्णन के अन्तर्गत) के सौन्दर्य का (विशेषतया श्रृंगार प्रसादित नयनों का) चित्र प्रस्तुत करके नायक को प्रेरित करने की दूती परम्परा (शास्त्रीय परम्परा) का पालन बिहारी ने प्रस्तुत दोहे में किया है।

(2) भाषा की सामासिकता की सामर्थ्य द्वारा बिहारी की मुक्तक कला के उत्कर्ष का परिचय भी प्रस्तुत दोहे से मिल जाता है कि वे 'कसावट' का कैसे सफल निर्वाह करते हैं।

(73) **सालति है नटसाल सी, क्यों हूँ निकसति नाँहि।**
मनमथ-नेजा-नोक सी खुभी खुभी जिय माँहि ॥ 6 ॥

प्रसंग- नायिका ने अपने कानों में खुभी (बुन्दे) पहनकर जो बढ़ी आभा का प्रदर्शन किया, तो नायक आहत होकर नायिका की सखी से अथवा दूती से यह प्रशंसात्मक टिप्पणी करता है।

व्याख्या- जब से मैंने उसे (नायिका को) खुभी नामक आभूषण पहने देखा है, तभी से वह खुभी क्या है, कामदेव के भाले की नोक के समान मेरे अन्तःकरण में चुभी रह गयी है और ऐसे ही कष्ट दे रही है कि जैसे बर्छी, भाले आदि की नोक चुभ कर शरीर के भीतर घाव में टूटकर भीतर रह जाती है और चुभन पैदा करती रहती है और प्रयत्न करने पर भी निकलती नहीं। उसी प्रकार नायिका की वह धज नायक के हृदय में गहरी बैठ गयी है और उसे मिलनोत्कण्ठा के रूप में चैन से नहीं बैठने दे रही।

विशेष- (1) नायक का आहत मन जिस नायिका (आलम्बन विभाव) की खुभी के सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ है (संचारी भाव) उसी नायक (आश्रय) के हृदय में मिलनोत्कण्ठा जाग्रत करके विप्रलम्भ श्रृंगार रस की सुन्दर योजना की गयी है। 'खुभी सुभी' में यमक अलंकार का चमत्कार दृष्टव्य है। (2) मनमथन-नेजा-नोक में सामासिक पदावली का प्रयोग किया गया है।

(74) **जुवति जोन्ह में मिलि गई, नेकु न परति लखाय।**
सोंधे के डोरन लगी, अली चली संग जाय॥

संदर्भ- नायिका चांदनी रात में अभिसार के लिए जा रही है। उसका वर्णन करते हुए कवि कह रहा है-

व्याख्या- वह तरुणी नायिका चांदनी रात में अभिसार के लिए जाती हुई चांदनी में इस प्रकार मिल गई कि जरा भी दिखाई न पड़ती थी। उसके साथ चलने वाली सखी भी उसे आंखों से नहीं देख पाती थी, परंतु उसके शरीर से निकलने वाली कमल की गंध के सहारे ही वह भी भ्रमर की भांति उसके साथ-साथ चली जा रही है।

नायिका का रंग चांदनी के तुल्य होने के कारण वह दिखाई नहीं पड़ती थी। गंध से अनुमान होता था वह कहा है?

विशेष- 1. नायिका शुक्लभिसारिका है जो चांदनी रात में सजकर संदेह में नायक से मिलने जाय। 2. नायिका-निरूपण शास्त्र के अनुसार यहां नायिका पद्मिनी श्यामा है, क्योंकि उसके शरीर से सुगंध निकल रही है।

(75) **हौं रीझी लखि रीझि हौ छविहिं छबीले लाल।**
सोनचुही-सी होत दुति-मिलत मालती माल॥ 8॥

प्रसंग- नायिका ने मालती के पुष्पों की माला धारण की है जिस पर नायिका के तन की स्वर्ण-वर्णी आभा की झलक पड़कर जो सौन्दर्य उभरा है, उसको देखने के प्रति नायक के मन में उत्कण्ठा जाग्रत करने के लिए नायिका की अन्तरंग सखी नायक से कहती है-

व्याख्या- उस नायिका के सौन्दर्य को (तनद्युति) देखकर मैं तो मुग्ध हो गयी और हे लाल! (नायक) तुम भी उस छवि वाली की छवि पर अवश्य ही रीझ जाओगे। देखो! उसके गले में पड़ी मालती पुष्पों की (श्वेत) माला पर जब उसके स्वर्ण वर्णी तन की आभा प्रतिबिम्बित होती है, तो उसका वर्ण पीताभ हो जाने से वह मालती के पुष्पों की (श्वेत) माला सोनजुही के फूलों की माला (पीली) के समान हो जाती है।

विशेष- (1) नायिका (आलम्बन विभाव) के गले में पड़ी मालती पुष्पों की माला (उद्दीपन) के ऊपर प्रतिबिम्बित तनद्युति का सूक्ष्म चित्र अंकित किया गया है। (2) 'सोनजुही-सी' तद्गुण अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है। (3) 'मुग्धता' (भाव) की उपस्थिति से रति स्थाई भाव की सुन्दर व्यंजना की गयी है।

(76) **बहकै सब जिय की कहत, ठौरु कुठौरु लखैं न।**
छिन औरे, छिन और से, ए छवि छाके नैन॥ 9॥

प्रसंग- नायिका के बहकने वाले रूप को देखकर उसकी सखी के प्रबोधने पर कि वह ऐसा हृदय का भाव उन्मत्त होकर व्यक्त न करे, नायिका अपनी सखी को उत्तर देती है-

व्याख्या- नायिका क्या करे यह तो नयनों का दोष है कि वे क्षण में कुछ और क्षण में कुछ और नए होते चले जाते हैं, ये (मेरे) नयन छवि रूपी मदिरा पीते-पीते मानो छक गये हैं, इसलिए

बहकना इनका स्वभाव बन गया है। यह मतवालापन, यह बहकने का स्वभाव, यह क्षण-प्रतिक्षण अनूठा रूप धारण करने वाला रूप उसके वश में नहीं है, क्योंकि ये जब बहकते हैं तो हृदय में पनपते रतिभाव को अभिव्यक्त कर ही देते हैं। मैं छिपाना चाहूँ भी तो कैसे छिपा सकती हूँ, ये नयन मेरे वश में नहीं हैं। (ठीक उसी प्रकार जैसे मदिरा पीकर आदमी बहकता ही है, वह बेकाबू हो जाता है)।

विशेष- (1) पूर्वानुरागी नायिका (आश्रय) द्वारा नायक के (आलम्बन) अनुराग में पूर्णरूपेण छककर रूप-सुधा पी लेने के कारण उसके नयनों में जो परिवर्तन आया है। उसका सूक्ष्म चित्रण किया गया है। (2) 'पूर्वानुराग' के अन्तर्गत 'प्रलाप' नामक विरह की कामदशा का चित्रण किया गया है।

(77) **फिरि-फिरि चितु उत हीं रहतु, टुटी लाज की लाव।**
अंग-अंग छवि-झौंर मैं, भयौ भौंर की नाव॥ 10 ॥

प्रसंग- पूर्वानुरागिनी नायिका अपनी मन की दशा का वर्णन अपनी अन्तरंग सखी से करती है-

व्याख्या- जिधर नायक आ जाता है या नायक को जहाँ देखा था, उधर ही मेरा मन रमा रहता है। लौट-फिरकर बारम्बार उसी ओर आकर्षित होता रहता है, जिधर नायक होता है। यह आकर्षण इतना प्रबल हो गया कि नायिका अब लज्जा के भय से भी नहीं रुक पाती है, मानो लज्जा रूपी रस्सी छूट गयी हो और वह निराधार नाव की तरह प्रेमावेग रूपी नदी में बहने लगी हो। इतना ही नहीं नायक के प्रेम-प्रत्यंगों का गोलाकार वृत्त मण्डल ऐसा घुमा रहा है (उसके मन को) कि वह झूमर नृत्य की तरह घूमता ही रहता है और ऐसा हो गया है; जैसे-भँवर में नाव फँस गयी हो, जो वहीं की वहीं (भँवर में ही) घूमती रहती है, उसमें से निकल नहीं पाती। ठीक उसी प्रकार नायिका का मन है कि नायक के अंग-प्रत्यंगों के आकर्षक वृत्त-मण्डल में फँस जाता है। उसके आकर्षण से मुक्त नहीं हो पाता।

विशेष- (1) पूर्वानुरागी नायिका (आश्रय) का नायक के अंगों (आलम्बन) की ओर आकर्षित होना विचित्र है। उत्कण्ठा संचारी द्वारा श्रृंगार रस की सुन्दर व्यंजना की गयी है।

(2) 'लाज की लाव' और 'झौंर की नाव' दोनों स्थानों पर रूपक अलंकार का अत्यन्त सफल निर्वाह किया गया है।

(78) **नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।**
तज्यौ मनौ तारन-विरदु बारक बारनु तारि॥ 11 ॥

प्रसंग- भक्त का उलाहना भगवान से-

व्याख्या- हे नाथ ! आपने तो अच्छी आनाकानी दी, (हमारी) पुकार फीकी पड़ गई; मानो हाथी को तार कर (आपने) एक बार ही (अपना) तार-विरदु (तारने वाले कहलाना) छोड़ दिया। भाव यह है कि हे प्रभो ! तुमने तो मेरी प्रार्थना पर ध्यान ही नहीं दिया और मेरा आर्तनाद फीका लगा। ऐसा लगता है कि गजेन्द्र को तारकर दूसरों को तारने का तुमने अपना विरद ही छोड़ दिया है।

विशेष- (1) पूर्वार्द्ध में काव्यलिंग अलंकार। 'नीकी' में विपरीत लक्षणा है।

(2) उत्तरार्द्ध में सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा है। 'नीकी' में विपरीत लक्षणा है।

(79) **चितई ललचौहैं चखनि डटि घूंघट पट मांह।**
छल सो चलों छुवायकै छिनक छबीली छांह॥ 12 ॥

सन्दर्भ एवं प्रसंग - प्रस्तुत दोहा बिहारी द्वारा रचित है। नायक, नायिका की प्रेमलीला की कथा दूती अथवा अपने मित्र से कह रहा है। नायक-नायिका कहीं रास्ते में मिल गए हैं। कुछ कहते-सुनते नहीं बना। अत: नायिका ने यह चतुराई चली।

भावार्थ- पहले तो नायिका ने लाज में से निर्द्वन्द्व होकर इच्छुक नेत्रों से मेरी ओर देखा फिर वह छबीली क्षण भर को किसी बहाने से परछाई से परछाई छुआकर चली।

अलंकार- छल-छुवाय-छिनक-छबीली-छांह में **अनुप्रास;** द्वितीय पंक्ति में **पर्यायोक्ति।**

विशेष- (1) अनुभाव-विधान द्रष्टव्य है। (2) नायिका क्रियाविदग्धा है।

(80) **जोगु जुगुति सिखिये सबै, मनो महा मुनि मैन।**
चाहत पिय अद्वैतता कानन सेवत नैन॥ 13॥

प्रसंग- यहां सखियां आपस में नायिका के दीर्घ नेत्रों की प्रशंसा कर रही है।

व्याख्या- मानो महा मुनीश्वर कामदेव ने उस नायिका के नेत्रों को संयोग की सारी युक्ति बता दी है, तभी तो वे प्रियतम में एकाकार होने के लिए कानों तक लंबायमान हो रहे हैं। ब्रह्म के जिज्ञासु को जब कोई महर्षि ब्रह्म की प्राप्ति और साधना की युक्ति बता देता है तब वह ब्रह्म से अद्वैतता प्राप्त करने के लिए वन में जाकर तपस्या करने लगता है। यहां कामदेव ने गुरु बनाकर नायिका के नेत्रों को प्रियतम के पाने की सारी युक्ति बता दी है, अर्थात् नैन-सैन संचालन से प्रिय को वश करने की युक्ति में प्रवीण कर दिया है। तभी तो प्रियतम से एकाकार होने के लिए कानों तक लंबायमान हो रहे हैं।

विशेष- 1. नायिका अनुरागरती मुग्धा है। उसमें यौवन और प्रेम विकसित हो रहा है।

2. **रस-संयोग श्रृंगार-** यहां नायिका आलंबन और उसके नेत्र उद्दीपन हैं।

3. अंतरंग सखी का कथन नायिका के प्रति भी हो सकता है। वह उसकी काम पीड़ा को समझ गई है और छेड़छाड़ कर रही है।

4. श्रृंगार रस में 'शांत रस' की सुंदर योजना की गई है।

(81) **खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।**
आक-कली न रली करै अली, अली जिय जानि॥ 14॥

प्रसंग- नायक के पर स्त्रीरमण का समाचार सुनकर नायिका चट से रूठ गयी है, तो उसकी सखी उसे समझाती है कि इतनी जल्दी औरों की बात का विश्वास कर लेना ठीक नहीं।

व्याख्या- यह तेरी आदत बहुत ही विनाशकारी आदत है कि तू पतले कानों की (पूरी तरह कच्चे कान वाली होकर) होने से जो भी सुन लेती है, उस पर विश्वास कर लेती है। यह आदत तुझे किसी दिन ले बैठेगी। हे सखी ! देख भौंरा कभी आक की कली के संग रमण नहीं करता है इसे अच्छी तरह समझ ले। सखी का संकेत है कि तेरा पति (नायक) ऐसी-वैसी किसी नायिका के साथ रति-क्रीड़ाएं नहीं करेगा, तू जिस परस्त्री का शक किये बैठी है वह तेरे आगे कुछ भी नहीं है। अत: तू मान छोड़ दे।

विशेष- (1) मानिनी नायिका का समझाने का कार्य बिहारी ने उसकी अन्तरंग सखी से कराया है। अली कली, रली आदि शब्दों में वर्णमैत्री का सौन्दर्य दृष्टव्य है।

(2) 'पातरी कान की' में मुहावरा (कच्चे कानों वाली होना) का सुन्दर प्रयोग किया गया है। अली, अली में यमक अलंकार का चमत्कार उत्पन्न किया गया है।

(82) **पिय-बिछुरन कौ दुसहु दुखु, हरषु जात प्यौसार।**

दुरजोधन लौं देखियति तजत प्रान इहि बार ॥15 ॥

अवतरण- पहले तो नायिका मुग्धा थी, अत: उसे नैहर जाते समय नायक-वियोग का दु:ख नहीं होता था, लेकिन अब वह मध्यावस्था को प्राप्त हो रही है, अतएव इस बार उसको नैहर जाने के हर्ष के साथ ही नायक के विछोह का दु:ख भी व्याप्त हो रहा है। अर्थात् उसको हर्ष एवं दु:ख एक साथ ही हुए हैं, जिससे उसके प्राण बड़े संकट में पड़े हुए हैं। उसकी इसी दशा का वर्णन सखी सखी से करती हैं-

व्याख्या- नैहर जाते (समय एक तो इसको नैहर वालों की दर्शन-संभावना का) हर्ष है, (तथा दूसरे) प्रियतम से बिछुड़ने का दु:सह दु:ख है। (अत:) इस बार (की जवाई में यह) दुर्योधन की भाँति प्राण तजते समय की दशा में देखी जाती है ॥

(83) **झीनैं पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार।**
सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार ॥ 16 ॥

प्रसंग- झीने पट में से फूटकर निकलती हुई नायिका के शरीर की झलक पर रीझकर नायक स्वागत कहता है-

व्याख्या- (अहा ! इसकी) झुलमुली (झुलमुलाती हुई) अपार ओप झीने पट में से (ऐसी) झलकती है, मानो कल्पवृक्ष की पल्लव-सहित डार समुद्र में विलास कर रही है। 'सपल्लव डार' इसलिए कहा है कि हाथों, पावों, ओठों तथा कानों की उपमा पल्लवों से दी जाती है। भाव यह है कि झीने पट में से होकर उसकी झुलमुली का अपार तेज झलक रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो समुद्र में कल्पवृक्ष की शाखा पत्तों सहित शोभा दे रही है।

विशेष- (1) झुलमुली के अर्थ के सम्बन्ध में मत वैविध्य है। अधिकांश टीकाकारों ने इसका अर्थ कर्ण का एक आभूषण लिया है। झीने, झुलमुली, झलकत में वर्ण-विन्यास वक्रता है। (2) कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

(84) **डारे ठोड़ी-गाड़ गहि, नैन-बटोही मारि।**
चिलक-चौंध में रूप-ठग, हाँसी-फाँसी डारि ॥ 17 ॥

प्रसंग- नायक के नयनों का आकर्षण है-नायिका की ठोड़ी का गड्ढा, जो हँसते समय पड़ जाया करता है, बिहारी उसी का चित्र अंकित करते हैं-

व्याख्या- नायक जब-जब नायिका को देखता है तो उसकी दृष्टि नायिका की ठोड़ी में पड़ जाने वाले गड्ढे को देखती की देखती रह जाती है। इसी स्थिति को बिहारी ठगों द्वारा किसी बटोही को लूटने और लूटकर मार देने के रूपक से स्पष्ट करते हैं कि नायक के नेत्र रूपी बटोही हैं, जिन्हें नायिका के रूप-सौन्दर्य रूपी ठग से नायिका की हँसी (स्मिति, मुस्कान) रूपी गले में फन्दा (फाँसी) डालकर मारा और नायिका की मुखकान्ति रूपी चकाचौंध में ही पकड़कर इस ठोड़ी के गड्ढे में डाल दिया है। यहाँ नायक की उस दशा का चित्रण है, जो नायिका की मुखकान्ति से, रूप सौन्दर्य से और उसकी स्मिति में आकर्षित होता है और अन्नत: उसके नेत्र नायिका की ठोड़ी मे पड़ने वाले (हँसते स..य) गड्ढे को देखता रह जाता है।

विशेष- (1) 'नैन रूपी बटोही', 'रूप-ठग', 'हाँसी रूपी फाँसी' में रूपक अलंकार का सांगोपांग आरोप होने के कारण सांगरूपक अलंकार का सफल निर्वाह बिहारी ने कर दिया है।

(2) 'चिलक-चौंध' में अनुप्रास का, 'हाँसी-फाँसी' में पदमैत्री का शब्दालंकारगत चमत्कार दृष्टव्य है।

(85) **कीनै हूँ कोरिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु।**

भो मन मोहन-रूप मिलि पानी में कौ लौनु ॥ 18 ॥

प्रसंग- नायिका की अन्तरंग सखी द्वारा लोक-लाज आदि के कारण मोहन के साथ प्रेम न करने की सलाह देने पर नायिका उसे अपनी अवशता विषयक उत्तर देती है-

व्याख्या- मैंने तो करोड़ों उपाय कर लिये, अब तू ही बता उसे (श्रीकृष्ण के रूप को, जो नायिका के मन में पूरी तरह हिल-मिल गया है) कौन बाहर खींचकर निकाल सकता है, क्योंकि वह तो मेरे मन रूपी मानसरोवर में ऐसे मिल गया है; जैसे-पानी में नमक घुलकर तदाकार हो जाता है और उसे निकाल पाना या पृथक कर पाना सम्भव नहीं रह जाता। ठीक उसी प्रकार मोहन का रूप भी इस नायिका के हृदय में ऐसा समा गया है कि अब उसको बाहर कर देना सम्भव ही नहीं है।

विशेष- (1) नायिका (आश्रम) अपनी अन्तरंग सखी से इस विवशता (सौन्दर्यकर्षण में आयी हुई स्थिति में) उल्लेख करके उल्टे प्रश्न करती है कि 'तू ही बता अब कौन निकाले' अर्थात् कोई नहीं दूर कर सकता, पृथक् कर सकता, ऐसा दृढ़ विश्वास भी ध्वनित है। (2) 'मन' (मानस अर्थ करने पर) श्लेष से पुष्ट रूपक अलंकार (मन रूपी मानसरोवर अर्थ करने पर) का चमत्कार भी देखा जा सकता है। (3) 'पानी में कौ लौनु' में दृष्टान्त अलंकार द्वारा प्रस्तुत विषय की सुन्दर व्यंजना की गयी है।

(86) **लग्यो सुमनु ह्वै है सफलु, आतप-रोसु निवारि।**
बारी, बारी आपनी, सींचि सुहृदयता-बारि ॥ 19 ॥

प्रसंग- नायिका की अन्तरंग सखी नायिका को नायक के प्रति आक्रोश त्यागने की सम्मति देती है-

व्याख्या- नायक का सुन्दर मन तेरी ओर आकर्षित हुआ है और उसी कारण वह तेरी पारी पर तेरे महलों में आया है। अब तू उसके प्रति 'मान' (गुस्सा) मत करें, क्योंकि इस आक्रोश से तू स्वयं कुम्हला जायेगी और हो सकता है कि वह भी (नायक) रूप जाये और बात बनते-बनते बिगड़ जाये। इसलिए ऐ बाला ! अपनी पारी का लाभ उठाते हुए तू उसे अपने हृदय के स्नेह से सींच, जिससे कि अब तो उसका मन तेरी ओर हुआ है, वह पूरी तरह से रंग लाये और तेरा प्रेम सम्बन्ध सफल हो जाये। यह बात अन्य रानियों (सपत्नियों) के समक्ष कहती थी। इसलिए बिहारी ने श्लेष बल से इस बात को कहलवाया है, जिससे वे यही समझें कि-

ऐ बाग के माली ! तू पानी से अपनी वाटिका को सींचो, देख आज इन वनस्पतियों पर फूल लगे हैं तो कल फल भी आयेंगे, इसलिए इन वनस्पतियों को सूर्य के आतप से बचा, जिससे ये कुम्हला न जाएं।

विशेष- (1) आगत पतिका (नायिका भेद) के उत्कण्ठा और मान (आक्रोश) का चित्रण किया गया है। (2) 'वारी', शब्द में श्लेष अलंकार का और 'बारी, बारी' में यमक अलंकार का शब्दगत चमत्कार दिखाया गया है। 'सुहृदयता-वारी' में रूपक अलंकार की योजना भी की गयी है।

(87) **अजौ तर्‌यौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक रंग।**
नाक-बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतनु के संग ॥ 20 ॥

प्रसंग- नायिका द्वारा नाक में पहनी गयी 'बेसरी' (नथ) का वर्णन किया गया है, किन्तु साथ ही 'तर्‌यौना' पर रखकर 'कोरे ग्रन्थ ज्ञान' वाले व्यक्ति पर व्यंग्य भी किया गया है-

व्याख्या- इस दोहे में श्लेष से दो अर्थ हो जाते हैं। अतः दोनों पृथक-पृथक (सुविधार्थ) दिये जाते हैं।

बेसरपरक अर्थ- अरे तर्‌यौना (कान का आभूषण) ! तू तो अकेले सोने से बने होने के कारण कानों में ही पड़ा रह गया। देख 'बेसरी' को कि उसने नाक जैसे महत्त्वपूर्ण अंग में इसलिए स्थान पाया कि उसमें (अकेला सोना नहीं अपितु) मोती भी लगा हुआ है।

सत्संग महिमापरक अर्थ- ओ, अकेले वेदों का अध्ययन करने वाले ज्ञानी महाशय ! देख तू तो अधोवर्ती (तर्‌यौना, तरा नहीं, उद्धार नहीं हो सका) ही रहा और देख जिन्होंने सिद्ध-पुरुषों की सत्संगति की, वे स्वर्ग प्राप्त कर गये।

विशेष- (1) तर्‌यौना, श्रुति, इकरंग, नाक, बेसरि, मुकुतनु में श्लेष अलंकार का चमत्कार योजित है। (2) कबीर ने भी पुस्तकीय ज्ञान मात्र का तिरस्कार करके सत्संग की महिमा का अनेक साखियों में वर्णन किया है-

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोइ।

(88) **जम-करि-मुँह-तरहरि पर्‌यौ, इहिं धरहरि चित लाउ।**
विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ॥ 21॥

अवतरण- कवि की उक्ति अपने मन से-

व्याख्या- तू यम-रूपी हाथी के मुँह के नीचे पड़ा हुआ है, इस निश्चय पर चित्त लगा, (तथा) अब भी विषय-तृष्णा छोड़कर नरहरि के गुणों का गान कर।

(89) **पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावरु भाल।**
आजु मिले, सुभली करी, भले बने हौ लाल॥ 22॥

प्रसंग- परस्त्री गमन करके लौटे नायक पर सुखान्त चिह्न देखकर प्रौढ़ाधीर खण्डिता नायिका व्यंग्य वचन कहती है-

व्याख्या- आज आपकी छवि का क्या कहना, आज तो बहुत अच्छे लग रहे हो। हे श्रीमान् जी, (छैलाजी) आपने अपने पलकों पर जो पान की पीक की शोभा धारण कर रखी है, आपके ओष्ठों पर जो अन्जन की कालिमा शोभा पा रही है और मस्तक पर महावार लगा हुआ है। ये सभी चिन्ह यह स्पष्ट बता रहे हैं कि नायक पर-स्त्री से रमण करके लौटा है, जिसके कारण उसके अंगों पर नायिका की पान की पीक, काजल और महावर के निशान अभी तक बने हैं, जो सुख-क्रिया सम्पन्न करते समय लग गये होंगे। नायिका व्यंग्य करती है कि हे श्रीमान् जी ! आप अच्छे लग रहे हैं, आपने बहुत अच्छा किया है।

विशेष- (1) 'पलनु पीक, अंजनु अधर' में छेकानुप्रास का सौन्दर्य विद्यमान है। 'भले बने हो' में काकु वक्रोक्ति द्वारा तीखा व्यंग्य किया गया है।

(2) खण्डिता नायिका (आश्रय) की खीझ, मनोव्यथा की अभिव्यक्ति हुई है।

(90) **लाज-गरब-आलस-उमग-भरे नैन मुसकात।**
राति, रमी रति देति कहि औरै प्रभा प्रभात॥ 23॥

प्रसंग- प्रभात होने पर नायिका के नेत्रों में जो भाव देखे हैं, उससे उसकी अन्तरंग सखी यह अनुमान लगा कर कि नायिका ने विगत रात्रि में तो विपरीत रति का आनन्द लूटा है, नायिका इसी ओर संकेत करती है-

व्याख्या- तेरी आंखें बता रही हैं कि प्रभात होने पर जो अद्‌भुत दीप्ति इन नयनों में चमक रही है वह अकारण ही नहीं है अपितु रात्रि में जो विशेष प्रकार की रति (विपरीत रति) की क्रिया सम्पन्न की है उसी का उल्लास इन नयनों से प्रतिभासित हो रहा है, नायिका के नेत्रों से गर्व और

उमंग का जो भाव व्यक्त हो रहा है, उससे तो उसकी अन्तरंग सखी ने यह अनुमान लगाया है कि अवश्य ही नायिका ने विपरीत रति का आनन्द लूटा है और नायिका के नयनों से लज्जा और आलस्य का जो भाव व्यंजित हो रहा है, उससे अन्तरंग सखी ने यह अनुमान पुष्ट कर लिया है कि सुरत क्रिया गत रात्रि को अवश्य ही हुई है क्योंकि आलस्य 'सुरतान्त' का एक प्रमुख लक्षण है, जो रात्रि जागरण और सुरत क्रिया में किये गये श्रम के कारण होता है।

विशेष- (1) 'औरे प्रभा' में भेदकातिशयोक्ति अलंकार है।

(2) 'नैनमुसकात' में विवक्षित वाच्य ध्वनि का सौन्दर्य विद्यमान है।

(91) **पति रति की बतियाँ कहीं, सखी लखी मुसकाई।**
कै कै सबै टलाटली, अलीं चलीं सुखु पाइ॥ 24 ॥

प्रसंग- नायक और नायिका रंगमहल में बैठे विनोद कर रहे थे। वहाँ सखियाँ भी उपस्थित थीं। उसी समय नायक ने बातों ही बातों में रति की इच्छा प्रकट की। नायिका ने यह सुनकर अपनी मुस्कराहट से प्रसन्नता लक्षित कराते हुए अंतरंगिनी सखी की ओर इस भाव से देखा कि अब उक्त कार्य का अवसर होना चाहिए। यह लक्षित करके सब सखियाँ वहाँ से एक-एक करके, किसी न किसी मिस से, टलने लगीं। सखी का वचन सखी से-

व्याख्या- पति ने रति की बातें कहीं (बातों में रति की इच्छा प्रकट की), (जिसको सुनकर नायिका ने) मुस्करा कर (अपनी मुख्य) सखी को देखा। (यह देख) सब सखियाँ सुख पाकर टलाटली (अनेक प्रकार के ब्याज) कर करके, (वहाँ से) चलीं (हटने लगीं)। भाव यह है कि जब पति ने बातों ही बातों में नायिका से संयोग की इच्छा प्रकट की तो उसने हँस करके सखी की ओर देखा। यह दृश्य देखकर सभी सखियाँ प्रमुदित होकर बहाना करके वहाँ से चलने लगीं। अर्थात् घर को सूना करके चली गयीं जिससे वे अपने इष्ट साध सके।

विशेष- (1) सखी और अली (आलि) शब्द यद्यपि भाषा में प्राय: एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, पर बिहारी ने इस दोहे में 'सखी' शब्द में 'अली' की अपेक्षा कुछ मुख्यता रखी है। (2) **अलंकार-** (i) 'कै कै' में पुनरुक्तिप्रकाश, (ii) सम्पूर्ण दोहे में पर्यायोक्ति, (iii) अज्ञात भी दृष्टव्य है।

(92) **तोपर वारों उरबसी, सुनि राधिके सुजान।**
तू मोहन के उर बसी है, उरबसी-समान॥ 25 ॥

प्रसंग- सखी नायक से कह रही है-

व्याख्या- हे सुजान अर्थात् चतुर राधिका तुझ पर मैं उर्वशी जैसी सुंदर अप्सरा को भी निछावर कर दूं क्योंकि तू छाती पर पहनने के आभूषण उरवसी के समान मोहन अर्थात् कृष्ण के मन में बसी हुई है।

विशेष- अलंकार-यमक।

(93) **कुचगिरि चढ़ि अति थकित है, चली डीठि मुख चाढ़।**
फिरि न टखे परियै रही, परी चिबुक की गाड़॥ 26 ॥

प्रसंग- नायिका की ठोड़ी के गड्ढे की शोभा को देखकर नायक कह रहा है-

व्याख्या- मेरी दृष्टि नायिका के उरोज रूपी पर्वतों पर चढ़कर बहुत थक गई है। पर फिर भी मुख की सुंदरता की चाह में वह आगे बढ़ती गई। परंतु आगे चल कर वह ठोड़ी के गड्ढे में गिर पड़ी और फिर वहीं पड़ी रह गई। वहां से हिल ही न सकी।

(94) **बेधक अनियारे नयन, बेधत करि न निषधु।**

बरबट बेधतु मो हियो, तो नासा कौ बेधु ॥ 27 ॥

प्रसंग- नायिका की नाक के छिद्र में पहने गये आभूषण पर मुग्ध होकर नायक कहता है-

व्याख्या- हे प्रिये ! तेरे वेधन करने वाले नुकीले नयन यदि मेरे हृदय को वेधते हैं तो कोई अनुचित कार्य नहीं करते। कारण कि जो नुकीली चीज होगी, वह तो छिदेगी ही। नायक को तो आश्चर्य इस बात पर है कि नासिका का पुट जो स्वयं छिदा हुआ (बिंधा हुआ है) वह भी बलात् मेरे हृदय को वेधन कर रहा है। तब फिर अन्य अंगों की तो बात ही क्या की जाए। क्योंकि जो स्वयं बिधा हुआ हो, वह क्या बेधेगा? किन्तु नायिका की नाक में छिदी नथ आदि का आभूषण युक्त होना नायक के हृदय को आहत कर गया है, इसी कारण उसने नायिका से सर्वांग सौन्दर्य की प्रशंसा की है और नायिका के छिद्र में पहली बेसरि के सौन्दर्य पर रीझ व्यक्त की है।

विशेष- (1) नायिका (आलम्बन विभाव) के आंख, नाक आदि अंगों की (नखशिख वर्णन के अन्तर्गत) शोभा को मारक शक्ति बताती ही है। इससे यह भी व्यंजना निकलती है कि वह सर्वांग सुन्दरी है।

(2) यहाँ विभावना (पहली) अलंकार का चमत्कार भी व्यंजित है।

(95) **लौने मुहुँ दीठि न लगै, यौं कहि दीती ईठि।**
दूनी ह्वै लागन लगी, दियें दिठौना, दीठि ॥ 28 ॥

प्रसंग- नायक का कथन नायिका के प्रति, (परिहास-विनोद की मुद्रा में नायिका को लगाये गये काले टीके के विषय में कहता है)-

व्याख्या- नायिका की इष्ट मित्र (सखी) ने यह सोचकर कि बहुत सुन्दर लग रही है, कहीं नजर न लग जाये, काला टीका (नजर से बचाने के लिए दिया गया दिठौना) लगा दिया। नायिका गौरवर्णी है। इस कारण उसके दीप्त मुखमण्डल में काला टीका (विरोधी रंग-काला रंग होने से) लगने से उसका सौन्दर्य और द्विगुणित हो गया है, जिसके कारण पहले से भी अधिक दृष्टि को आकर्षित करने लगी है। (नजर अधिक जमने लगी है)। इसी विषमता का उल्लेख नायक के द्वारा किया गया है।

विशेष- (1) नायिका के गौरवर्ण मुख पर लगा काला टीका (आलम्बन विभाव) का वर्णन करके श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक हो गया है।

(2) विषम अलंकार (जहाँ भलौ उद्यम कियें, होत बुरौ फल आय) का चमत्कार दिखाने के लिए ही बिहारी ने प्रस्तुत दोहे की रचना की है।

(96) **चितवनि रूखे दृगनु की, हाँसी-बिनु मुसकानि।**
मानु जनायौ मानिनी, जानि लियौ पिय, जानि ॥ 29 ॥

अवतरण- मानिनी नायिका की चेष्टा से उसके मान को समझकर खिसियाए हुए नायक की व्यथा सखी सखी से कहती है-

व्याख्या- (नायिका की) रूखे दृगों की चितवन, (और नायक की) बिना किसी हँसी की बात ही मुस्कुराहट (अर्थात् खिसियानपने की मुस्कुराहट) से (तू) समझ ले कि मानिनी ने (तो) मान जनाया, (और) प्रियतम ने (उसका यह मान जनाना) जान लिया (समझ लिया)॥

(97) **सब ही त्यौं समुहाति छिनु, चलति सबनु दै पीठि।**
वाही त्यौं ठहराति यह, 'कबिलनवी' लौं, दीठि ॥ 30 ॥

प्रसंग- परकीया नायिका द्वारा बार-बार उपपत्ति पर दृष्टि जमाने पर उसकी अन्तरंग सखी इसे लक्षित करके कहती है-

व्याख्या- अन्य सबकी ओर जाकर एक क्षण रुककर ही फिर उपेक्षा से दृष्टि फेर लेती है, परन्तु उस (नायक) की ओर तो यह दृष्टि ऐसे ठहर जाती है; जैसे-कुतुबनुमा की सुइयाँ उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों पर आकर टिक जाती हैं। रत्नाकर ने यह अर्थ उचित माना है कि नायिका की दृष्टि उस मन्त्र की कटोरी की तरह नायक पर आकर ठहर जाती हैं, जो कटोरी तान्त्रिक द्वारा चोर को पकड़ने के लिए मन्त्रबल से चलायी जाती है।

विशेष- (1) पूर्णोपमा अलंकार का चमत्कार दिखाने के लिए ही प्रस्तुत दोहे को बिहारी ने रचा है।

(2) 'किब्लानुमा' का प्रयोग भूगोलवेत्ताओं द्वारा आविष्कारकों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार यह भी सम्भव हैं कि बिहारी ने भूगोलवेत्ता बनने की (पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए) पेशकश की हो।

(98) **कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिवी, मुरारि।**
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहि तारि॥ 31॥

प्रसंग- कवि अथवा किसी भक्त का वचन भगवान से-

व्याख्या- हे मुरारि ! अब देखना है (कि आपका तारन) बिरद किस प्रकार रहेगा; (क्योंकि आप एक सामान्य पापी) सिद्ध (सम्पाती) को तारकर परचे हुए मुझ (महा पापी) से आ उलझे हैं। भाव यह है कि देखता हूँ कि अब कैसे तुम्हारा विरद रहता है ! एक गीध (जटायु) को तारकर तुम्हें लगता है कि तुम प्रसिद्ध हो गये तारने की कला में ! पर मुझे तार देना बड़ा ही कठिन है। यहाँ आकर तुम फँस गए हो।

विशेष- (1) यह सख्य भाव की भक्ति का उदाहरण है।

(2) ब्याज स्तुति और परिकरांकुर अलंकार है।

(99) **कहत नटत रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात।**
भरै भौन में करत है, नै ननु ही सब बात

संदर्भ- नायक नायिका के प्रेम प्रसंग का चित्रण।

व्याख्या- अपने भरे-पूरे परिवार में नायक अपनी नायिका से नेत्रों के संकेत से ही अपने मन की बात कह रहा है। वह नायिका को नेत्र के संकेत से एकांत में चलने को कहता है, पर नायिका नेत्रों के संकेत से ही मना कर देती है। नायिका के इंकार के इस ढंग से नायक की आंखों में रीझ की प्रसन्नता तथा प्यार की चमक आ जाती है, पर नायक को अपनी ओर टकटकी लगाकर देखने से नायिका खीज उठती है। उनकी आँखें मिलते ही वे प्रसन्न हो उठते हैं। फिर नायिका शर्मा जाती है। इस तरह वे नेत्रों की भाषा में ही अपने मन के भावों को प्रगट करते रहते हैं।

(100) **वाही की चित चटपटी, धरत अट-पटे पाइ।**
लपट बुझावत विरह की, कपट-भरेऊ आई॥ 33॥

प्रसंग- परस्त्री गमन के उपरान्त लौटने पर उसकी चाल से नायिका यह समझ गयी है कि वह सपत्नी के यहाँ से लौटा है किन्तु फिर भी उससे दर्शन देने के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है।

व्याख्या- क्या जिसके यहाँ रात भर रहे हो, उसी सौत के यहाँ पुन: जाने की आतुरता है? तुम्हारे चित्त में जो उत्कण्ठा व्यंजित हो रही है, वह तुम्हारी अटपटी चाल से प्रकट होती है क्योंकि तुम असमंजस में हो, तभी तो तुम्हारे ऐसे अस्त-व्यस्त पैर पड़ रहे हैं। नायिका बड़ी चतुर है, इसलिए नायक से व्यंग्यात्मक वाणी में कहती है कि चलो तुमने दर्शन तो दिये, जिससे मेरी विरहाग्नि तो शान्त हुई। यद्यपि तुम कपटाचरण कर रहे हो। (मुझसे रात्रिभर सौत के साथ रमण करने की बात

छिपा रहे हो) तो भी तुम्हारा आगमन, तुम्हारे दर्शनों से मुझे जो सुख प्राप्त हुआ है उसके लिए कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, धन्यवाद देती हूँ। कपट लिए ही आए, कम से कम आये तो सही, ऐसी व्यंग्य वाणी से नायक का स्वागत करती है।

विशेष- (1) उत्तमा खण्डिता नायिका के आचरण का सजीव चित्र अंकित किया गया है। (2) चटपटी, अटपटी, लपट, कपट आदि शब्दों में साम्य होने से वर्णमैत्री और तज्जनित नादात्म सौन्दर्य (समान ध्वनियों वाले शब्दों की योजना करने से) दृष्टय है।

(101) **लखि गुरुजन-बिच कमल सौं, सीसु छुवायौ स्याम।**
हरि-सनमुख करि आरसी, हियैं लगाई बाम॥ 34॥

प्रसंग- नायक और नायिका की ऐसे समय की क्रियाओं और चेष्टाओं का वर्णन है, जब नायक के आगमन के समय नायिका गुरुजनों से घिरी बैठी थी। इन क्रिया-विदग्ध नायक-नायिका की चेष्टाओं के विषय में दो सखियाँ परस्पर कहती हैं-

व्याख्या- नायिका गुरुजनों के बीच बैठी हुई देखी तो दरवाजे पर आये श्रीकृष्ण ने यह विदग्धता की कि संकेत-शैली में नायिका को अपना रति-भाव ज्ञापित करने के लिए हाथ में लगे लीला-पद्म को अपनी पगड़ी से छुवा लिया। यह क्रिया नायिका ने समझ ली, क्योंकि वह भी विदग्ध है कि नायक नायिका के कमल जैसे चरणों को सिर आंखों पर चढ़ाता है, उसके चरणों में रति करता है। प्रत्युत्तर स्वरूप वह विदग्धा नायिका भी एक क्रिया ऐसी करती है कि अपने हाथ की आरसी को हरि (सूर्य तथा श्रीकृष्ण दोनों अर्थ श्लेष से होते है) जिनमें से श्रीकृष्ण अर्थ करने से तो श्रीकृष्ण का बिम्ब उस आरसी के दर्पण में प्रतिबिम्बित होने पर हृदय से लगाने से श्रीकृष्ण को हृदय में बसाने का भाव व्यक्त कर दिया और सूर्य अर्थ करने से गहरी क्रिया-विदग्धता का पता चलता है कि दोनों उरोज रूपी पर्वतों के बीच सूर्य जाने पर अर्थात् सूर्यास्त होने पर आपसे मिलूँगी। यह संकेत स्थल पर मिलने का समय (संकेत अधिक व्यंजक है) के सम्मुख करके अपने हृदय से लगा लिया।

विशेष- (1) क्रिया-विदग्धता नायिका का चातुर्य वर्णन करना ही कवि का अभीष्ट है। (2) चेष्टाओं से व्यंजना का उभार होने से विवक्षितान्यरवाच्य 'ध्वनि' का सौन्दर्य प्रस्तुत है।

(3) सूक्ष्म अलंकार का सौन्दर्य भी उत्पन्न कर दिया गया है।

(102) **पाइ महावरु दैंन कौं, नाइनि बैठी जाइ।**
फिरि-फिरि जानि महावरी, एड़ी मीड़ित जाइ॥ 35॥

प्रसंग- नायिका की एड़ी की लालिमा की प्रशंसा करती हैं (दो सखियाँ आपस में वार्तालाप के मध्य)।

व्याख्या- नायिका की ऐड़ियों पर महावर लगाने के लिए नाइन आयी है। वह महावर लगाने के पहले धूल-गन्दगी को साफ करने के इरादे से तथा पुरानी फीकी पड़ गयी महावर को धोकर साफ करने के लिए पहले पानी से नायिका की ऐड़ियों को धोती है, मीड़ती जाती है। इस सलने, लगड़ने की क्रिया को वह बार-बार करती है क्योंकि उसे एड़ी की लालिमा में यही भ्रम हो जाता है कि अभी पुरानी महावर का रंग बाकी है, उसे पहले साफ कर लिया जाये। तब नई महावर लगाई जायेगी। इसी इरादे से नाइन बहुत देर तक एड़ी रगड़ती जा रही है।

विशेष- (1) बिहारी का यह दोहा नख-शिख वर्णन के अन्तर्गत (एड़ी की लालिमा) आता है, जिसमें नायिका (आलम्बन विभाव) के सौन्दर्य की चर्चा करके श्रृंगार रस का परिपाक किया गया है। (2) कान्तिमान अलंकार का चमत्कार भी उत्पन्न किया गया है। 'फिरि-फिरि' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार का सौन्दर्य भी आ गया है।

(103) **तोहीं, निरमोही, लग्यो मो ही इहै सुभाउ।**
अनआएं आरै नहीं, आएँ आवतु आउ॥ 36॥

प्रसंग- नायिका यहाँ अपने उपपत्ति (नायक) को यह उपालम्भ पूर्ण उक्ति में अपनी व्यथा का संकेत करती है और बुलाने के लिए पत्र में लिखती है।

व्याख्या- हे निर्मोही, निष्ठुर प्रिय ! मेरा हृदय तुझसे इस प्रकार लग गया है और इतनी सीमा तक जुड़ गया है कि जब तू नहीं आता तो मेरा हृदय भी मेरे पास आकर ढाँढस नहीं बँधाता अर्थात् वह बेहोश हो जाती है या उसका चित्त ठिकाने नहीं रहता, वह खोई-खोई सी रही आती है और जब नायक आ जाता है तो उसके घनिष्ठ रूप से जुड़ा होने वाला मेरा हृदय भी उसके साथ ही साथ लौट आता है यानी उसका चित्त ठिकाने आ जाता है, (होश-हवाश लौट आता है और हँसी खुशी रहने लगती है)। इसी आधार पर नायिका प्रार्थना करती है कि हे प्रिय ! तू आ अवश्य आ। जिससे तेरे साथ-साथ लगा मेरा हृदय मुझे वापस तो मिल जाए अर्थात् मेरा जीवन तो बच जाये।

विशेष- (1) विरहिणी नायिका (आश्रय) को अपने प्रिय (आलम्बन) का वियोग सह्य नहीं है। उपालम्भ का सुन्दर नियोजन किया गया है।

(2) भाव-साम्य के लिए सूर का यह पद देखिए-

'एक हुतो जो गयो स्याम सँग'

(104) **नेहु न, नैनुन, कौं कछू, उपजी बड़ी बलाइ।**
नीर-भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ॥ 37॥

प्रसंग- पूर्वानुराग उत्पन्न हो जाने पर नायिका अपनी दशा का वर्णन अपनी अन्तरंग सखी से करती है-

व्याख्या- हे सखी ! अपने हृदय में प्रेम क्या उत्पन्न हुआ, एक अच्छी-खासी मुसीबत खड़ी हो गयी है कि नेत्रों में प्रेमरूपी तेल होता तो उनमें स्निग्धता बनी रहती। अब तो उसकी (नायक की) याद में व्याकुल रहने के कारण, उसे देखने की उत्कण्ठा के कारण, व्यग्रतावश इन नयनों में अश्रु-जल भरा रहता है, परन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि जब हर समय जल विद्यमान रहता है, तब ये प्यासे-से (नायक के दर्शनों के प्यासे) क्यों रहते हैं। क्या इनकी पिपासा इतने अश्रु-जल भरे रहने से भी शान्त नहीं होती।

विशेष- (1) नेह का निषेध और 'बलाइ' का आरोप होने से 'प्रथम और द्वितीय' चरण में अपह्न अलंकार का चमत्कार दिखाया गया है।

(2) अश्रु-जल भरे रहने पर भी (कारण विद्यमान रहने पर भी प्यास नहीं बुझ रही, कार्य सम्पन्न नहीं होने से) इससे तृतीय और चतुर्थ चरण में विशेषोक्ति अलंकार का सौन्दर्य भी उत्पन्न किया गया है।

(105) **नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।**
अली, कली ही सौं, बँध्यौ, आगैं कौन हवाल॥ 38॥

प्रसंग- इस दोहे में भ्रमर के ब्याज से, कोई किसी मुग्धासक्त को शिक्षा देता है-

व्याख्या- न (तो इसमें) अभी पराग (पुष्प-रज अर्थात् जबानी की रंगत), न मधुर मधु (मीठा मकरन्द अर्थात् सरसता), (और) न विकास (खिलावट अर्थात् यौवन के कारण अंगों में प्रफुल्लता)(ही) है। हे भ्रमर, (तू ऐसी कंज की) कली ही से बँधा है (अपने सब कर्त्तव्य छोड़कर उसी में लवलीन हो रहा है), (तो) आगे (चलकर जब उसमें पराग, मकरन्द तथा विकास का आगमन होगा तो फिर तेरी) क्या दशा होगी। भाव यह है कि ऐ कामासक्त नरेश जिस नवोढ़ा रानी पर आसक्त हो तू उसके

रस-पान में बँधा है, वह अभी जवान नहीं हुई है, उसमें अभी यौवन की मादकता और सौन्दर्य कहाँ है ? दूसरे, जब तू अभी से इसके रसपान में अपनी शक्ति को क्षीण कर देगा तो आगे चलकर तेरी क्या हालत होगी ?

विशेष- (1) यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा के द्वारा प्रथमावतीर्ण यौवना स्वकीया मुग्धा का चित्रण तथा राजा का उद्बोधन किया गया है। (2) सम्पूर्ण दोहे में प्रथम विभावना है।

(106) **लाल तुम्हारे विरह की अगनि अनूप, अपार।**
सरसै बरसैं नीर हूँ, झर हूँ मिटै न झार॥ 39॥

प्रसंग- विरहिणी नायिका की विचित्र विरह-दशा का नायिका की अन्तरंग सखी अथवा दूती नायक के सामने वर्णन करती है-

व्याख्या- हे लाल ! तुम्हारे दर्शनों के लिए तड़पने वाली उस नायिका को तुम्हारा वियोग इतना अग्नि सदृश जला रहा है कि उसकी विरहाग्नि को अनुपमेय कहा जा सकता है और यह वियोग की अग्नि अपार मात्रा वाली कही जायेगी, क्योंकि अन्य विरहणियों की विरहाग्नि से उसकी (नायिका की) विरहाग्नि इतनी विशेष है कि उसकी झार (जलन) नायिका के नयनों से निरन्तर बरसने वाली अश्रुधारा (जल) गिरने से और बढ़ती है (जबकि नियमत: पानी पड़ने से अग्नि शान्त होती है) इतना ही नहीं एक विलक्षणता यह है कि उसकी तपन (जलन) झर (ग्रीष्म की तपन) से भी नहीं मिटती है (यह नियम है कि यदि थोड़ा-सा आंच से तच जाये तो और आग के सामने कर देने से जलन समाप्त हो जाती है)।

विशेष- (1) यहाँ विरहिणी नायिका (आश्रय) की दारुण विरहाग्नि का वैशिष्ट्य चमत्कारपूर्ण ढंग से उभारा गया है। (2) 'सरसै बरसै नीर हूँ' में कारण विद्यमान न होने पर भी कार्य (सरसना, बढ़ना) सम्भव होने के कारण विभावना अलंकार का चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

(107) **देह दुलहिया की बढ़ै ज्यौं ज्यौं जोबन-जोति।**
त्यौं-त्यौं लखि सौत्यैं सबैं बदन मलिन दुति होति॥ 40॥

प्रसंग- नवयौवना मुग्धा की सखियाँ आपस में सहर्ष कहती हैं-

व्याख्या- (इस) दुल्हन की देह में ज्यौं-ज्यौं यौवन की ज्योति बढ़ती है, त्यौं-त्यौं (इसको) देखकर (इसकी) सब ही सौतों को बेदन में द्युति मलिन होती है। भाव यह है कि इस दुल्हन के शरीर के अंग-अंग में ज्यों-ज्यों यौवनावस्था की कांति बढ़ती जाती है, शरीर यौवन-भार से आक्रांत होता जाता है, त्यों-त्यों इसकी बढ़ती हुई यौवन-ज्योति को देख अन्य सपत्नियाँ द्युतिहीन होती जाती हैं। नायिका का प्रतिक्षण वर्द्धित होता हुआ यौवन ईर्ष्यावश उनके तन को मलिन और निष्कांति बनाता जाता है।

विशेष- (1) यहाँ नायिका के गुणों से सौतों में मलिनता के दोष का समावेश हुआ है। अत: उल्लास अलंकार है। (2) यहाँ स्वत: सम्भावी वस्तु व्यंजना है। नायिका का यौवनोदय स्वत: सम्भावी है उससे कवि ने शोभा कान्ति आदि शरीर अलंकारों का उन्मेष रूप वस्तु व्यंजित की है। (3) सम्पूर्ण में काव्यलिंग अलंकार है क्योंकि कारण सहित कार्य का वर्णन किया गया है।

(108) **जगतु जनायौ जहिं सकलु, सो इरि जान्यौ नाँहिं।**
ज्यौं आंखिनु सबु देखिए, आँखि न देखी जाँहि॥ 41॥

प्रसंग- आत्मज्ञानी गुरु ने अपने शिष्य को ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा देने के उद्देश्य से यह चिन्ता व्यक्त की है-

व्याख्या- हे शिष्य ! तूने उस विष्णु (परब्रह्म) को ठीक से नहीं पहचाना, जिसकी कृपा से तू समस्त विश्व का ज्ञान कर सका है या विश्व के प्रत्येक दृश्य, पदार्थ को जान गया है। उसी कारण स्वरूप ब्रह्म को न जानकर तू बहुत बड़ी भूल कर रहा है। तब तू इस विश्व को देखता है, इसमें पर्याप्त रुचि लेता है तो इस विश्व के रचनाकार और नियन्त्रण करने वाले प्रभु को क्यों नहीं पहचान पाया। यह तो ऐसी ही स्थिति हो गयी; जैसे-आंखों द्वारा समस्त जगत को देखा जाता है, परन्तु आँखों को ही नहीं देखा जा सकता। इस दृष्टांत द्वारा बिहारी उस परमात्म तत्त्व के हमारे ही भीतर विद्यमान होने पर ही हमारे ही द्वारा न पहचाने जाने पर खेद व्यक्त किया गया है कि हम अपने भीतर विद्यमान ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान (आत्म ज्ञान) क्यों नहीं कर पाते।

विशेष- (1) यह दोहा परब्रह्म के घट-घट वासी (अन्तर्यामी) रूप की व्यंजना करता है। अत: सर्वात्मवादी दर्शन पर प्रकाश डालता है।

(2) तृतीय, चतुर्थ चरण में उदाहरण अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(3) 'जगतु जनायौ जिहिं' में वृत्यनुप्रास अलंकार की योजना दृष्टव्य है।

(109) **मंगलु बिन्दु सुरंगु, मुख, ससि केसरि आइ गुरु।**
इक नारी लहि संगु, रसमय किये लोचन-जगत॥ 42॥

प्रसंग- नायिका के मुँह पर लगी लाल बिन्दी और आड़ी केसरि की रेखाएं (श्रृंगार प्रसाधन) देखकर नायक पर जो प्रभाव पड़ा है, वह उसी का उल्लेख नायिका का अन्तरंग सखी से कहता है-

व्याख्या- मंगल (ग्रह) रूपी बिन्दी नायिका ने अपने चन्द्रमा (ग्रह) रूपी मुख पर लगा रखी है और (केसरि) की आड़ी रेखाएं ही बृहस्पति (ग्रह) है। इस प्रकार ये तीनों ग्रह नायिका के पास सत्संग करने के लिए एकत्र हैं, एक ही स्थान पर आ गये हैं तो निश्चय है कि भारी वर्षा इसी कारण हुई है, जिस वर्षा के जल से जगत के प्राणियों के नेत्रों को परितृप्ति मिल रही है।

यहाँ अप्रस्तुत विधान यह है कि बिहारी ज्योतिषशास्त्र के अनुसार 'वर्षायोग' की चर्चा करके यह जेठ की गर्मी की तपन को शान्त कर देने वाली धारासार वर्षा का रूपक खड़ा करके यह बताना चाहते हैं कि बहुत दूर-दूर तक दुनियाँ के लोगों के नेत्रों को नायिका की इस धज ने आनन्दित कर रखा है। यह आनन्द का वर्षा देखने वालों के नेत्रों की दुनियाँ में ही तो होती है।

विशेष- (1) ज्योतिषशास्त्र में मंगल का रंग लाल और बृहस्पति का रंग पीला माना जाता है। अत: रंगसाम्य के आधार पर ये दोनों अप्रस्तुत अत्यन्त सटीक ठहरते हैं। मुख के लिए चन्द्रमा का अप्रस्तुत परम्परित है। (2) यहाँ नायिका (आलम्बन विभाव) के श्रृंगार-प्रसाधित मुख मण्डल (नख-शिख वर्णन के अन्तर्गत आने वाला) का सौन्दर्य वर्णित होने से श्रृंगार रस का अच्छा परिपाक हो गया है।

(110) **पिय तिय सौं हँसि कै कह्यौ, लखैं दिठौना दीन।**
चन्दमुखी, मुखचंदु तैं, भलौ चंद-समु कीन॥ 43॥

प्रसंग- सखी का वचन सखी से-

व्याख्या- प्रियतम ने नायिका से, (यह) देखने पर (कि उसने) दिठौना दिया है, हँसकर कहा (कि) हे चन्द्रमुखी ! तूने (अपने) मुखचन्द्र को (इस दिठौने के द्वारा) भला (पूरा-पूरा) चन्द्र के समान कर दिया।

टिप्पणी- कई टीकाकारों ने अनेक शंका-समाधान करके इस दोहे के अर्थ को बहुत घुमाया-फिराया है, परन्तु हमारी समझ में यह अर्थ सीधा और स्पष्ट है। भाव यह है कि प्रियतम ने यह देखकर कि उसकी प्रिया ने कुदृष्टि निवारण के लिए दिठौना लगा दिया है, हँसकर कहा कि हे

चन्द्रमुखी ! तूने अपने मुख-रूपी चन्द्र को अब भली-भाँति सम्पूर्ण रूप से चन्द्रमा के समान कर दिया है। नायिका का मुखचन्द्र के सदृश सौन्दर्यपूर्ण तो पहले भी था, परन्तु उसमें वह कालिमा न थी, जो चन्द्रमा में पाई जाती है। अब दिठौने के लगा होने से उसके अभाव की भी पूर्ति हो गई और नायिका का मुखचन्द्र पूर्णत: चन्द्र के समकक्ष हो गया।

विशेष- (1) **अलंकार-** उपमा अलंकार। **छन्द-** करभ छन्द।

(2) **भाव-साम्य-**

मिही अंगौछनि पोंक लै, फैल्यौ काजर नैन।
सरद चंद ति मंद यह, चाहत समता ऐन॥

-विक्रम सतसई

(111) **कौंहर-सी एड़ीनु की, लाली देखि सुभाइ।**
पाइ महावरु देइ को, आपु भई बे-पाइ॥ 44 ॥

प्रसंग- सखी-वचन सखी से-

व्याख्या- इन्द्रायन के फल-सी एड़ियों की स्वाभाविक लाली देखकर (नाइन) स्वयं बेपाइ (बिना हाथ-पैर की अर्थात् मति पंगु) हो गई। (फिर भला) पाँव में महावर (दे, तो) कौन दे। भाव यह है कि नायिका की एड़ियों की स्वाभाविक लालिमा इन्द्रायन (माहरी, कौंहर) के फल के समान है। इसी कारण जब नाइन उसके पावों में महावर लगाने आई तो एड़ियों की लाली देख ठगी-सी रह गयी, उसकी बुद्धि जैसे ठिकाने न रही, हाथ गतिहीन से हो गये, अब महावर कौन लगाये ?

विशेष- (1) **कौंहर-सी एड़ीनु में-** यहाँ उपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। नायिका अपूर्व सुन्दरी और पूर्ण यौवना है। यहाँ वस्तु रूप व्यंग्य है। ऐड़ीन में उपादान लक्षणा है। उससे नायिका के सम्पूर्ण शरीर का उपादान किया गया है।

(2) **लाली देख सुभाई-** यहाँ क्रान्ति, दीप्ति आदि अनुराग जनित शारीरिक सात्विक अलंकारों की व्यंजना की गई है। अत: लोक सम्भवी वस्तु द्वारा यहाँ वस्तु व्यंजना है।

(112) **खेलन सिखए अलि भलैं, चतुर अहेरी मार।**
काननचारी नैन-मृग, नागर नरनु सिकार॥ 45 ॥

प्रसंग- नायिका द्वारा नायक को अपने नेत्रों की चितवन से आहत करने पर नायिका की अन्तरंग सखी नायिका को लक्षित करके उसके इस प्रभाव की चर्चा करती है-

व्याख्या- हे सखी ! शिकार करना खूब अच्छी तरह सीख लिया है। इतने कौशल का कारण शायद यही है कि साक्षात् कामदेव रूपी शिकारी से यह आहत करने की विद्या (अचूक शर-संधान) तुमने सीखी है। तभी तो इस शिकार करने की कला में यह वैचित्र्य भी आ गया है, कानों की ओर बार-बार जाने वाले नयनों से (तिरछी चितवन से, कनखियों से देखने से) कि वैसे तो मनुष्य लोग मृगों का शिकार करते हैं, परन्तु यहाँ तुम्हारे नेत्र रूपी मृग नागर (काम-कला विशारद, विदग्ध) मनुष्यों (नायकों) का शिकार कर रहे हैं।

विशेष- (1) श्लेष से पुष्ट साँगरूपक अलंकार का अत्यन्त कौशलपूर्वक निर्वाह किया गया है। (2) नायिका (आलम्बन विभाव) की तिरछी चितवन (कटाक्ष आदि) के सौन्दर्य के व्यापक प्रभाव की चर्चा होने से श्रृंगार-रस का सुन्दर निरूपण हो सका है।

(113) **रस सिंगार-मंजनु किए, कंजनु-भंजनु दैन।**
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु दैन॥ 46 ॥

प्रसंग- नायिका की अन्तरंग सखी नायिका के नेत्रों की प्रशंसा करती है-

व्याख्या- नायिका के नेत्रों का दोहरा सौन्दर्य इस दोहे में बताया गया है कि वे श्रृंगार-रस में निमज्जित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि हाव-भाव, कटाक्ष आदि में पूरी तरह निष्णात हैं। नायिका और नयनों की भंगिमा ही उन्हें और अधिक कमनीय बनाती है। नायिका के नेत्र कमलों का मान-मर्दन कर रहे हैं, स्वाभाविक है कि कमल से अधिक स्वच्छ रहते हैं और कमलों के खिले रहने से देखने वालों को जो सुख मिल सकता होगा उससे अधिक सुख नायिका के नेत्रों की ओर देखने से मिलता होगा। कहना न होगा कि नायिका के नेत्र भी कमल से अधिक खिले रहते (नायिका के मुस्कराते, प्रसन्नचित रहने के कारण) होंगे, तभी तो कमलों का तिरस्कार सम्भव है। दूसरी विशेषता यह है कि इस नायिका ने काजल भी नहीं लगाया है तो भी उसके नेत्र खंजनों का मान भंग कर रहे हैं। इसमें बिना श्रृंगार प्रसाधन के नयनों का प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रशंसा का आधार बनाया गया है।

विशेष- (1) प्रस्तुत दोहे में नायिका के नेत्रों की कान्ति, कमनीयता के आगे कमल और खंजनों (परम्परित उपमानों) की हीनता व्यंजित होने से प्रतीप अलंकार का चमत्कार प्रदर्शित किया गया है। (2) 'अंजन-रंजनु हूँ बिना' में विनोक्ति अलंकार का सौन्दर्य भी उत्पन्न किया गया है।

(114) **साजे मोहन-मोह कौं, मोही करत कुचैन।**
कहा करौं, उलटे परे, टोने लोने नैन॥ 47॥

प्रसंग- पूर्वानुरागिनी नायिका का वचन अन्तरंगिनी सखी से-

व्याख्या- (मैंने तो अपने नयन) मोहन के मोहने को (उपयुक्त उपसंस्करणों, अंजन, तिलोंछ आदि से) सुसज्जित किए; (पर ये तो मोहन को मोहने के बदले) मुझी को (मोहन पर मोहित करके) विकल किये डालते हैं। (अब मैं) क्या करूँ, (मोहन के लावण्य से) लोने हुए (लोनाए जाकर) नयन उल्टे टोने (होकर मुझी पर) पड़े। भाव यह है कि नायिका सखी से कहती है कि मैंने अपने नयनों को अंजन आदि विविध सौंदर्योपकरणों में इसलिए सुसज्जित किया था, जिससे कि ये मोहन को मोहित करें, जो उसे अपलक भाव से मेरी ओर निहारने के लिए बाध्य कर दें, परन्तु ऐसा न हुआ। मोहन के मेरे प्रति व्याकुल बनाने के स्थान पर इन नयनों ने मुझे ही मोहन के प्रति व्याकुल बना दिया। ऐ सखी ! तू ही बता कि मैं क्या करूँ, ये नयन मोहन के लावण्य से लोने होकर उल्टे टोने के समान मेरे ऊपर ही आ पड़े हैं।

विशेष- (1) दोहे में लोक सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। लोक में देखा जाता है कि जब कोई किसी को कटाक्षों (नजर) का टोना मार देता है तो नमक से उसे उतार दिया जाता है। (2) 'मोहन' में परिकरांकुर अलंकार भी है। (3) नायिका ने मैं नायक के विरह में मरी जा रही हूँ यह बात 'टोने को लौटाने' के ब्याज से कही है। अतः पर्यायोक्ति अलंकार भी है।

(115) **याकैं उर औरै कछू, लगी विरह की लाइ।**
पजरै नीर गुलाब कैं, पिय की बात बुझाइ॥ 48॥

प्रसंग- विरहिनी नायिका की अवस्था सखियाँ आपस में कहती हैं-

व्याख्या- इसके हृदय में विरह की कुछ विलक्षण आग लगी है, (जो) गुलाब-जल (छिड़कने) से (तो) प्रज्वलित होती है, (और) प्रियतम की बात (चर्चारूपी वायु) से बुझती है। विलक्षणता यह है कि सामान्य अग्नि तो जल से बुझती और वायु से प्रज्वलित होती है, परन्तु यह अग्नि जल से प्रज्वलित होती एवं बात (वायु) से बुझती है। भाव यह है कि इस विरहाग्नि की ज्वाला सामान्य अग्नि की ज्वाला से भिन्न है। वह ज्वाला सामान्यतः जल छिड़कने से और प्रशमित होती है और हवा के द्वारा प्रज्वलित होती है, परन्तु विरह की ज्वाला विलक्षण है, क्योंकि वह गुलाब-जल से

प्रज्वलित होती है और प्रिय की चर्चा रूपी हवा से बुझने लगती है अर्थात् प्रिय का नाम लेने से विरहाग्नि शान्त होने लगती है।

विशेष- (1) आग पानी से बुझती है और हवा से प्रज्वलित होती है, किन्तु विरहिणी के हृदय की आग पानी से प्रज्वलित होती है और बात से बुझती है। यही इस आग की विलक्षणता है। (2) **अलंकार-** 'याकैं उर औरैं कछू' में भेदकातिशयोक्ति अलंकार है।

(116) **कहा लेहुगे खेल कौ, तजौ अटपटी बात।**
नैंक हँसौहीं हैं भई, भौहैं सौहैं खात॥ 49॥

प्रसंग- नायिका ने मान किया था। सखी बड़ी कठिनता से, शपथ खा-खाकर, उसको कुछ ढंग पर ला रही थी। इतने में नायक ने उसी स्त्री का नाम ले लिया, जिसकी ईर्ष्या से मान हुआ था। सखी, यह सोचकर कि कहीं मान फिर न बढ़ जाये, बड़ी वाक्चातुरी से, नायक के उस नाम-लेने को उसका खिलवाड़ ठहराकर इधर तो नायिका के रोष को उभरने नहीं देती और उधर नायक को सचेत करती है-

व्याख्या- (तुम) खेल से क्या लोगे (इस खेल में क्या पाओगे) ! (यह) कुढंगी बात (अर्थात् खिलवाड़ के निमित्त अन्य स्त्री का नाम लेकर नायिका को चिढ़ाना) छोड़ दो। (देखो, बड़ी कठिनता से) शपथ खाते-खाते (नायिका को सरोष) भौंहैं कुछ हँसौहीं (हास्योन्मुखी) हुई हैं (ऐसा न हो कि वे कहीं फिर चिढ़ जायें)। भाव यह है कि नायक किसी दूसरी स्त्री का नाम ले-लेकर नायिका को चिढ़ाना चाहता है। नायिका की सखी इसे खिलवाड़ मात्र समझकर नायिका को ढाढस बँधाती है। नायिका जानबूझकर ही उसके सामने दूसरी स्त्री का नाम ले रहा है, अन्यथा हृदय से वह उसी में अनुरक्त है। इस पर नायिका को क्रोध से तनी हुई भौंहों पर कुछ मुस्कराहट चढ़ती है कि नायक उसे फिर छेड़ देता है।

विशेष- (1) यहाँ लोक सम्भवी वस्तु ध्वनि है। नायक का नायिका को चिढ़ाना और उससे पर-स्त्री का नाम लेकर छेड़छाड़ करना लोक सम्भव वस्तु है। इस वस्तु से उसने यह व्यंग्य किया है कि अति ठीक नहीं होती। यदि अब भी नहीं मानेगा तो उसे न तो संयोग सुख मिलेगा और न विनोद सुख ही।

(2) अटपटी बात का अर्थ है-

व्यर्थ का मजाक। यह अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से प्राप्त हुआ है।

(117) **डारी सारी नील की, ओर अचूक चुकैं न।**
मो मन-मृगु करबर गहै अहे ! अहेरी नैन॥ 50॥

प्रसंग- नायक अपनी प्रेमिका (नायिका) के नयनों की पकड़ (मारक शक्ति) की प्रशंसा करता है (कवि चीते का रूपक खड़ा करके कहता है)।

व्याख्या- नायिका ने नीली साड़ी पहन रखी है उसके पीछे छिपे नेत्र उसी तरह की स्थिति में है, जिस प्रकार चीता पेड़ की डाली की ओर (पत्तों आदि की झुरमुट में) से छिपकर शिकार पर झपट्टा मारता है और उसे अपने पंजों की गिरफ्त में ले लेता है। उसी प्रकार इस नायिका के नेत्र अवगुंठन में से ही नायक के मन में शिकार कर लेते हैं।

विशेष- (1) 'मन मृगु' और 'अहेरी नैन' में रूपक अलंकार है।

(2) नायिका (आलम्बन) के घूँघट छिपे नयनों (नख-शिख वर्णन के अन्तर्गत) की मारक-शक्ति का वर्णन किया गया है।

'महाकवि सूरदास का वियोग जितना मार्मिक है उतना किसी और का नहीं'

रसिकों के मन को डुबोने वाले श्रृंगार रस की भांति सूर का विप्रलम्भ श्रृंगार वियोग का अथाह उदधि है।

"अथ के मुख पर भी तो मैंने इति का अवगुंठन देखा है।" किसी कवि के वचनानुसार वृन्दावन की रासलीला का वह महामिलन यदि वियोग की अलंध्य मरुभूमि में परिणित हो गया तो आश्चर्य ही क्या है। रासलीला में गोपियां संयोग की उस पात्रावस्था को प्राप्त हो गई थीं "जहां एक क्षण का वियोग भी असह्य होता है।" भावनाओं का जो उद्वेग संयोग- श्रृंगार में मिलता है, कहीं उससे भी अधिक वियोग- श्रृंगार में। वियोग की अन्त: और बाह्य दशायें अपने स्वाभाविक रूप में कवि की कल्पना का सहारा पाकर साकार हो उठी हैं। सूर- साहित्य में प्राय: वियोग का प्रारम्भ विप्रलम्भ वात्सल्य से होता है। कृष्ण के मथुरा गमन पर सर्वप्रथम हमें मां यशोदा विलाप करती दिखाई पड़ती हैं। कृष्ण को मथुरा छोड़कर अकेले नन्द के पुनरागमन पर हमें यशोदा की हृदय विदीर्णकारी चीत्कार सुनाई पड़ती है-

छांड़ि सनेह चले मथुरा कत दौरि न चीर गह्यौ।
फाटि न गई वज्र की छाती कत यह सूल सह्यौ।

मां यशोदा के हृदय में है घोर झुंझलाहट, खिजलाहट, उत्सुकता के साथ विरक्ति, अपने लिए तिरस्कार की भावना, जो अपने लाल की रक्षा भी नहीं कर सकती, उसके पति का महर पद व्यर्थ सिद्ध होता है-

नन्द ब्रज लीजे ठोकि बजाय।
देह विदा मिलि जाहिं मधुपुरी जहं त्रिभुवन के राय।

ठोकि बजाय में यशोदा नन्द के सम्पत्ति और अधिकार लोलुपता को ललकारती हैं। वे नंगी- भूखी भी कृष्ण के पास जाकर रहना चाहती हैं, नन्द अपनी जागीर संभालें। यशोदा के ही मन में पीर नहीं है, नन्द को भी उनकी कठोरतायें याद आती हैं। संयोगावस्था में जिन बातों को देखकर सुख मिलता था अब वही प्राणों को कचोट रही हैं। वे कहते हैं -

तब तू मारबोई करति।
रिसनि आगे कहे न आवति, अबलै भाड़े भरति।
रोसकै कर दांवरी लै फिरति घर- घर धरति।
कठिन हिए करि तब जौ बांध्यो, अब वृथा दुख करति।

यह झुंझलाहट कृष्ण के विषय में वियोग के ही कारण उत्पन्न हुई है, उसकी अपनी स्वाभाविकता है।

गोपियां विरहाग्नि में जल रही हैं, उनके मन में कन्हैया की बातों को लेकर एक शूल उठता है।

मेरे मन इतनी सूल रही।
ते बतियां छतियां लिखि राखी जे नन्दलाल कही।
ताहि देखि मैं मान किये सखि सो हरि गुसा गही।

सोचति अति पछिताति राधिका मूर्छित धरनि ढही।

अज्ञानावस्था में जन्म के साथ मृत्यु, इस क्षण- क्षण की मृत्यु से कितनी अधिक सुखदायी होती है, यह गोपिकायें ही कह सकती हैं।

गोपियों की नेत्र वर्षा से तो घन भी हार गये हैं -

सखि इन नैनन के घन हारे।

बिनु ही ऋतु बरसत निसि बासर सदा मलिन दोऊ तारे।

प्रकृति में एक वर्ष में पावस कुछ माह के भीतर आती है, किन्तु गोपियों के नेत्रों पर तो हर समय छाई रहती है-

निस दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहति पावस ऋतु इन पर जब से स्याम सिधारे।

कृष्ण के संयोग का साथी मधुवन आज गोपियों को काट रहा है, उसकी हरीतिमा उसके लिए स्मृति का वृश्चिक दंश बन गई है। आज उनके उजाड़ नीरस जीवन से इसका कोई तारतम्य नहीं है, अत: वे चाहती हैं कि वह भी सूख जाय-

मधुवन तुम कत रहत हरे।

विरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाड़े क्यों न जरे।

तुम हो निलज लाज नहिं तुमकौं फिर सिर पुहुप धरे।

ससा स्यार् औ वन के पखेरु धिक्- धिक् सबनि करे।

कौन काज ठाड़े रहे बन में काहे न उकठि परे।

काली अंधेरी रातें जिनका संयोगावस्था में कभी ज्ञान भी नहीं होता था, अब नागिन बनकर डसने लगी हैं। सांपिन पीठ पर काली तथा पेट की ओर श्वेत होती है। काटकर नागिन का तुरन्त पलट जाना भी प्रसिद्ध है। काली रात भी अंतिम प्रहरों में या कभी- कभी बादल हट जाने पर चांदनी निकल जाने पर श्वेत दिखाई पड़ती है। गोपियां उसका नागिन का उलट जाना मानती हैं -

पिया बिनु सौंपिन कारी रात।

कबहुंक जामिनि होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात।

जिस प्रकार सूर के संयोग श्रृंगार में बिहार- स्थली असीम है, उसका ओर- छोर निकलता है जाकर यमुना के हरे- भरे कछारों में, करील के कुंजों और वनस्थलियों में, उसी प्रकार विरह- वर्णन भी 'वैरिन भई रतियां और सांपिन भई सिजिया तक सीमित न रहकर प्रकृति के प्रांगण में उन्मुक्त बिहार करता है। वे कृष्ण का-

एक वन ढूंढि सकल वन ढूंढौ कबहुं न स्याम लहौं।

जो प्राकृतिक पदार्थ गोपिकाओं के हृदय में विरह- वेदना उत्पन्न करते हैं, वे कृष्ण के मन प्राण में कोई अनुभूति नहीं भरते, तब गोपियां सहज ही कह उठती हैं - ये सारे उपकरण उधर जाते ही नहीं, जो कृष्ण इन्हें देखें और दुखित हों। ये तो इधर ही छाये रहते हैं -

मानौ माई सबनि इतै ही भावत।

अब बहि देस नन्द नन्दन को कोउ न समौ जनावत।

पावस विविध वरन वर बादर उठि नहिं अम्बर छावस।

चातक मोर चकोर शोर कर दामिन रूप दुरावत।

पावस की घन- घटाओं का वियोगिनी गोपिकायें भीषण रूप में अवलोकन करती हैं। वे ऐसा अनुभव करती हैं मानो कृष्ण के मथुरा चले जाने के कारण बादलों ने उनके ऊपर चढ़ाई कर दी है -

देखियत चहुं दिसि तै घनघोरे।
मानों मत्त मदन के हथियन बलकरि बन्धन तोरे।
कारे तन अति चुवत गण्ड मद बरसत थोरे थोरे।
रुकत न पवन महावत है पै मुरत न अंकुस मोरे।

गोपियां बादलों को कभी मत्त हाथियों के रूप में देखती हैं तो कभी अपने प्रियतम कृष्ण की अनुहारि देखती हैं -

आजु घनस्याम की अनुहारि।
उनै आए सांवरे ते सजनि देखि रूप की आरि।
इन्द्र धनुष मनो नवल बसन छवि दामिन दसन विचारि।
जनु बग- पांति माल मोतिन को चितवहिं पाइ निहारि।

भ्रमरगीत में विरह की परिणति होती है। वह तो सभी स्थितियों की रंगस्थली है। कहीं आत्म समाधान, कहीं 'ऊधो लहनो अपना ही पायो' में भाग्यवाद आदि सभी कुछ दिखाई पड़ता है।

शुक्ल जी ने गोपियों के वियोग पर अस्वाभाविकता का प्रश्न- चिन्ह लगाया है, पर वह असमीचीन है, क्योंकि गोपियों की भी अपनी मर्यादा है। आर्यपथ की वे पथिक हैं। राधा के बन्धन और घैरु की बात कही गई है। राधा को अपयश के भय से उनकी मां उसे कृष्ण के साथ जाने से रोकती हैं- उनका प्रणय व्यापार कलंक की वायु पर तैरने लगा है-

कहा कहौं सुन्दर घन तौसौं।
घैरा यहै चलावत घर- घर श्रवण सुनत जिय सोसौं।

पर मन ही मन राधा प्रार्थिनी है कि-

राधा विनय करति मन ही मन सुनहु स्याम अन्तर के जामी।
माता पिता कुल कानिहि मानत तुमहिं न जानत हैं जग स्वामी।

कृष्ण भी मर्यादाहीन जीवन के पक्षपाती नहीं थे। तभी तो गोपियों को प्रातः होने से पूर्व ही घर विदा कर देते थे। प्रीति के स्पष्टीकरण में गोपियों के आगे लोक लज्जा की दीवार आती है, वे उद्धव से अपने प्यार को गुप्त रखने की प्रार्थना करती हैं -

गुपुत मते की बात कहौ जनि कहुं काहू के आगे।
कै हम जान कै तुम ऊधो इतनी पावैं मांगे।

गोपियां वियोगिनी हैं, सीता के समान ही उनके अन्तस में भी एक कसक है, एक टीस है, पर भेद इतना है कि वे परकीया हैं। परकीया नायिका होने के नाते गोपियां प्रत्यक्ष रूप से अपनी प्रीति का दावा नहीं कर सकतीं। प्रियतम का क्षणिक संयोग उनके लिए सौभाग्य की वस्तु के साथ अलभ्य है। यह बड़ी बाधाओं के बाद प्राप्त हुआ है, इसमें प्रियतम का क्षणिक वियोग उनके लिए जीवन का सबसे बड़ा संकट है। राक्षसों से घिरे हुए लंका- निवास की अवधि में सीता राम के प्रेम- कवच से आरक्षित तथा स्वकीयात्व की भावना से आश्वस्त थीं, पर गोपियों को यह विश्वास कभी मिला ही नहीं। संयोग में दर्शन लाभ संभाव्य था, वियोगावस्था में वह भी समूल नष्ट हो गया। गोपियों का वियोग स्वाभाविक होने के साथ ही साथ वह अथाह समुद्र है, जिसमें उद्धव जैसे ज्ञानी भी थाह नहीं पा सके।

भ्रमरगीत का अर्थ

हिन्दी साहित्य में उपालम्भ काव्य के रूप में भ्रमरगीत का विशेष महत्व रहा है। 'भ्रमरगीत शब्द' 'भ्रमर' और 'गीत' दो शब्दों के योग से बना है। भ्रमर श्याम वर्ण का उड़ने वाला एक जीव होता है, इसके मधुवृत, मधुकर, अलि, षटपद, चंचरीक, अलिंद, सारंग, भृंग, आदि नाम भी प्रसिद्ध हैं। भ्रमर के शरीर पर पीत रंग का सूत्र होता है। गीत का अर्थ गान होता है। इस प्रकार भ्रमरगीत शब्द का अर्थ - भ्रमर का गान या भ्रमर को लक्ष्य करके गाया गया गान होता है।

भ्रमरगीत का अर्थ-विस्तार

काव्य में 'भ्रमर' शब्द का प्रयोग कृष्ण और उनके सखा उद्धव के लिए हुआ है। कृष्ण का वर्ण श्याम था और वे पीताम्बर धारण करते थे। इसी प्रकार कृष्ण के मित्र उद्धव जी भी श्याम थे, और पीत वस्त्र धारण करते थे, उद्धव का वर्ण और वेश भ्रमर के समान था. साथ ही वे अन्तर्मुखी साधना में रत रहकर कमल-सम्पुट में बन्द हो मौन समाधि लगाने वाले, भ्रमर से साम्य रखते थे। अतः भ्रमरगीत में उनको 'भ्रमर' के प्रतीकार्थ में ग्रहण किया गया, इस प्रकार भ्रमर गीत का अर्थ 'भ्रमर' को लक्ष्य कर के लिखा गाना-गान हुआ। गोपियां उद्धव का भ्रमर से साम्य स्थापित करती हुई कहती हैं -

मधुकर ! जानत है सब कोऊ
जैसे तुम और मीत तुम्हारे, गुननि निगुन हौ दोऊ ।
पाये चोर हृदय के कपटी, तुम कारे अस दोऊ ।

इसी प्रकार भ्रमरगीत में कृष्ण को भ्रमर के प्रतीकार्थ में स्वीकार किया गया है। श्रीकृष्ण का वर्ण भ्रमर के समान श्याम है। कृष्ण पीताम्बर धारण करते हैं और भ्रमर के शरीर पर पीत चिन्ह हैं। भ्रमर स्वर गुन्जन से मन को मुग्ध करता है और कृष्ण बंशी की ध्वनि से मोहित करते हैं। भ्रमर जिस प्रकार एक पुष्प का प्रेम ठुकराकर दूसरे पुष्प पर चला जाता है। उसी प्रकार कृष्ण गोपियों के प्रेम को ठुकरा कर मथुरा चले गये। भ्रमर यदि पुष्परस चुराता है तो कृष्ण ने गोरस की चोरी की है। पुष्परस लेकर ओर फिर उसे ठुकराकर भ्रमर शठता का व्यवहार करता है। श्री कृष्ण ने भी शठता की क्योंकि प्रेम करके गोपियों को छोड़ गये -

(i) **कोऊ कहैं री। मधुप भेस उनहीं को धारयौ।**
श्याम पीत गुंजार बैन किकिन झनकारयो॥
वा पुर गोरसि चोरिकै आयो फिरि यदि देस॥
इनको जनु मानहु कोऊ कपटी इनको भेस॥
चोरि जनि जाइ कछु॥
(ii) **जनि परसहु मम पांव रे हम मानत तुम चोर।**
तुमही रूप कटती हुते मोहन नन्दकिशोर (नन्ददास)

निष्कर्ष निकलता है कि भ्रमर शब्द प्रतीकार्थ में प्रयुक्त हुआ है। भ्रमर श्रीकृष्ण और उद्धव दोनों का प्रतीक है। डा. सत्येन्द्र ने भ्रमर का अर्थ पति अर्थात् नायक भी माना है -

भ्रमर शब्द भी अर्थ विकास की दृष्टि से भ्रमर नामक कीट से अर्थ विस्तार करके कृष्ण का पर्याय हुआ और तब पति का भी पर्याय हो गया। लोक गीतों में भी भ्रमर भंवर जी होकर पति के लिए रूढ़ हो गया।

श्रीकृष्ण गोपियों के परम पति और नायक थे। भ्रमर शब्द को पति या नायक अर्थ में स्वीकार किया जाए तो भ्रमर गीत का आशय होगा - पति या नायक को लक्ष्य करके लिखा गया गान।

हिन्दी काव्य में कृष्ण, राधा तथा गोपियों के प्रेम प्रसंग को लेकर उद्धव और भ्रमर के माध्यम से जो कुछ लिखा गया वह सब भ्रमरगीत के क्षेत्र में आता है। भ्रमर षटपदी होता है। अत: भ्रमरगीत के लिए षटपदी छन्द का निर्माण किया गया। इस प्रकार भ्रमर गीत को छन्द विशेष भी कहा जाता है। इस छन्द में छह चरण होते हैं। प्रथम चार चरणों में 24-24 और अन्त के दो चरणों में 10-10 मात्राएं होती हैं। लय और यति की दृष्टि से इसके प्रथम दो चरण रोला मध्य के दो चरण दोहा और अन्त के दो चरण अर्द्धाली के रूप में होते हैं। सभी कवियों ने भ्रमर गीत लिखते समय भ्रमर गीत छन्दों को नहीं अपनाया परन्तु यह सत्य है कि हिन्दी काव्य में भ्रमर गीत भाव और कला दोनों दृष्टियों से पूर्णता को प्राप्त है।

'सूर के काव्य में भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है।'

(I) भावपक्ष

सूरदास के भाव- पक्ष की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. **भक्ति- भावना-** सूरदास सगुण भगवान श्रीकृष्ण के परमोपासक और अटल भक्त हैं। अपने आराध्य के प्रति महाकवि ने भक्ति दास्य, सख्य, माधुर्य, प्रेम- भाव सहित नवधा- भक्ति के विभिन्न रूपों में की है। संख्य भक्ति का एक उदाहरण देखिये-

"हमारे प्रभु औगुन चित्त न धरौ।
समदरसी है नाम तिहारो, सोई पार करौ।"

2. **दार्शनिकता-** सूरदास उच्चकोटि के दार्शनिक कवि हैं। वे निर्गुण ब्रह्म को सगुण से बढ़कर महत्व नहीं देते हैं। उनका दार्शनिक पक्ष स्पष्ट है।

3. **भावुकता-** सूरदास जी के काव्य में विविध प्रकार की भाव तरंगें उछलती हुई दिखती हैं। इसमें जीवन की विविध भावनाओं का समावेश है। बालक श्रीकृष्ण की कोमल और विशुद्ध भावनाएं, नन्द और यशोदा की प्रेमभरी उमंग, गोपी- गोपियों सहित राधा की सरसता और मधुरता, फिर श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर सम्पूर्ण ब्रज प्रदेश की तड़पन और विवशता जैसी भाव धाराएं सूरदास ने प्रवाहित की हैं।

4. **वात्सल्य विधान** - सूरदास का वात्सल्य विधान सर्वश्रेष्ठ है। आप बलकोचित भावों और प्रक्रियाओं एवं स्वरूपों का यथार्थ स्वाभाविक तथा रोचक चित्र प्रस्तुत करने में सबसे आगे हैं। बालक श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था की क्रियाओं और स्वाभावों की रूप रेखाएं कवि ने इस प्रकार अत्यन्त प्रभावशाली रूप में वर्णन किया है। इसका एक उदाहरण देखिये -

"मैया मैं नहीं माखन खायो।
ख्याण परै ये सखा सवै मिली मेरे मुख लपटायो॥
देखि तुही छींके पर माखन, ऊंचे धारि लटकायो।
है जु कहत नान्हे कर अपने मैं कैसे धरि पायो॥"

5. **श्रृंगार विधान-** सूर ने श्रृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के जो चित्र प्रस्तुत किए हैं वे अनूठे और बेजोड़ सिद्ध हुए हैं। संयोग श्रृंगार का एक चित्र देखिये -

'सूर स्याम देखत ही रीझै नैन- नैन मिलि परी ठगोरी।'

6. **प्रकृति चित्रण-** प्रकृति देवी का उद्दीपन चित्र सूरदास का सर्वाधिक सशक्त चित्रण है। गोपियों के साथ क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण और बाल ग्वालों के भावों और चेष्टाओं को रोचक रूप देने के लिए कवि ने प्रकृति का सहारा लिया है। गोपी- विरह प्रसंग में प्रकृति - चित्रण प्रधान होकर मार्मिक और हृदयस्पर्शी व सजीव बन गये हैं।

(II) कला- पक्ष

महाकवि सूरदास की कलागत विशेषताएं इस प्रकार से हैं -

1. **भाषा -** काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सूरदास ने भाषा को विशिष्ट रूप दिया है। सूर की भाषा अवधी और ब्रजभाषा है। उनकी भाषा में ब्रज का माधुर्य बिखरा हुआ है। उन्होंने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। लोकोक्तियों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। लोकोक्ति का एक उदाहरण देखिये-

"अपने स्वास्थ्य के सब कोउ, जो छोटी।
तेई है खोटी, जाहि लगैं सोई पै जाने॥"

2. **शैली-** सूर की काव्य की सर्वाधिक विशेषता है - सजीवता, प्रौढ़ता और औजस्विता का एक रूपक देखिये -

अविगत नाति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फलौ की रस अन्तरगत ही भावै॥

3. **अलंकार योजना -** सूर का 'सूरसागर' अलंकारों का भंडार है। कवि ने सांगरूपक का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त 'सूर सागर' में उपमा, सन्देह, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। उत्प्रेक्षा का एक सुन्दर उदाहरण देखिये-

"शौभित कर नवनीत लिये।
घुटुरूअस चलत, रेनु तनु मंदित, मुख दधि लेप किये।
"लट लटकनि मनुवत मधुपमन, मादक मधुपि पिये।"

4. **छन्द-** सूर का काव्य गैय होने के कारण उसमें छन्दों का विशेष महत्व नहीं है तथापि सूर सागर में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उसमें रोला, कुण्डल, राधिका, रूपमाला, हीर, सवैया, वीर, रीतिका आदि प्रमुख हैं।

संक्षेप में हम कुछ कह सकते हैं कि महाकवि सूरदास का काव्यगत सौन्दर्य निर्विवाद रूप से सर्वोपरि है। इसी का जो स्वरूप दिखाई देता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

वात्सल्य के क्षेत्र के सूर सम्राट हैं।

सूरदास ने वात्सल्य का जैसा सजीव, आकर्षक और हृदयस्पर्शी वर्णन किया है वैसा हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ है। कवि बालक की क्रियाओं का जैसा सूक्ष्म अंकन करता है वह देखते ही बनता है।

कृष्ण के जन्म से माता- पिता के हृदय में आनन्द का समुद्र उमड़ने लगता है। सम्पूर्ण ब्रज नन्द के दरवाजे पर दौड़ पड़ता है। आखिर नन्द और यशोदा की मनोकामना चिरकाल के बाद पूरी हुई है। नवजात बालक को पालने की जरूरत है। यशोदा तो रंगबिरंगा पालना चाहती है। वह बढ़ई को स्वयं आदेशित करती हैं -

"पालनौ अति सुन्दर गढ़ि ल्याऊ रे बढ़ैया।

सीतन चन्दन कटाउ, घरि खराद रंग लाऊ,
विविध चौकी बनाऊ धार रे बनैया ।।"
'घाउरे' शब्द में मां का उतावलापन दर्शनीय है ।

बालक तो माता- पिता का प्यारा खिलौना होता है । कृष्ण का तो कहना ही क्या ? वे तो माता-पिता के सर्वस्व हैं । मां के हृदय में बालक के लिए कितनी अभिलाषायें हैं । हर मां चाहती है कि उसका प्यारा बेटा जल्दी चलने लगे, मां यशोदा भी कृष्ण को चलना सिखाती हैं-

सिखवत चलन यशौदा मैया ।

और भी - **कबहुंक सुन्दर बदन बिलोकति, उर आनन्द भरि लेत बलैया ।**
कबहुंक बलि को टेरि बुलावति, इहि आंगन खेलो दोऊ भैया ।"

बालक कृष्ण धीरे- धीरे बड़े होने लगते हैं । बच्चा घर में बन्द नहीं रह सकता । वह बाहर खेलने जाना चाहता है । लेकिन मां उसे स्वयं से दूर कैसे जाने दे ? यदि उसे कुछ हो गया तो, अत: वह उसे 'हाऊ' का भय दिखाती है-

"दूरि खेलन कत जात कान्हा ।।
आज सुन्यो है हाऊ आयौ तुम नहिं जानत नान्हा ।।
इक सरिका अवही भजि आयी, रोवत देख्यो ताहि ।
कान तोरि वह लेत सबनि के, लरिका जानत जाहि ।

सूरदास ने बाल क्रीड़ाओं के अनेक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं । कृष्ण देखते हैं कि उनके अन्य सखा गायें चराने जाते हैं तब वह कैसे इस कार्य से वंचित रह जायें-

"मैं अपनी सब गाय चरैहौं ।
प्रात होत बल के संग जैहों, तेरे कहे न रैहों ।
ग्वाल बाल गाइन के भीतर डर नहिं लागत ।
आज न सौवों नन्द दुहाई, रैनि रहौंगौं, जागत ।।"

संयोग वात्सल्य ही नहीं वियोग वात्सल्य को भी सूर ने उच्चता के शिखर पर पहुंचाया है । सच तो यह है कि सूर का संयोग वात्सल्य वियोग की भूमिका मात्र है । कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं । मां यशोदा धाड़ मार- मार कर चिल्लाने लगती है-

"यशोदा बार- बार यौं भाखै ।
है कोऊ ब्रज में हितू हमारौ,
चलत गोपालहि राखै ।।"

नन्द कृष्ण को लेने मथुरा जाते हैं लेकिन उधर से जब अकेले लौटते हैं तो यशोदा तो पागल हो जाती है । वह पुत्र प्रेम में लौकिक व्यवहार को भूल जाती है । अपने पति नन्द को न जाने क्या- क्या कहने लगती है-

"यशोदा कान्ह- कान्ह कै बूझै ।
फूटि न गई तिहारी चारौं, कैसे मारग सूझै ।।

और भी - **सूर स्याम बिझूरन की हम पै, दैन बधाई आये ।।"**

पुत्र वियोग में मां की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है । वे नन्द को उलाहने देने में नहीं चूकतीं । वे नन्द पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं -

"सराहौ तेरो नन्द हियौ ।

मौहन सो सुत छाड़ि मधुपुरी, गोकुल आनि जियो ॥
कहा कहौं मेरे लाल लड़ैते, जब तू बिदा कियौ ।
जीवन प्राण हमारे ब्रज को, वसुदेव छीन लियौ ॥"

सूर के वात्सल्य के सम्बन्ध में डॉ. चन्द्रभान रावत ने लिखा है, "सूर का वात्सल्य वर्णन अत्यन्त मौलिक है । यह चित्रण इतना क्रमिक और पूर्ण है कि कोई कड़ी लुप्त नहीं है ।..... इसका प्रवाह निर्वाह है । समस्त लीला का विस्तार नितांत मानवीय है ।"

'सूर की श्रंगार व्यंजना अद्वितीय है ।'

आचार्यों ने श्रृंगार के दो पक्ष स्वीकार किये हैं- संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार । सूरदास ने अपने काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्षों का उद्घाटन बड़ी कुशलता से किया है । उन्होंने श्रृंगार को भक्ति रस से परिपुष्ट बनाया है ।

(I) संयोग श्रृंगार

सूर के संयोग श्रृंगार के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं - "सूर संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीत में जीवन एक चलती गहरी धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कुछ दिखलाई नहीं पड़ता है ।"

सूर के संयोग श्रृंगार के आलम्बन राधा और कृष्ण हैं । राधा और कृष्ण का प्रथम मिलन कवि ने बड़े ही नाटकीय तरीके से कराया है । कृष्ण राधा को देखते हैं और राधा कृष्ण को और फिर दोनों के नेत्र मिल जाते हैं -

"खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी ।
कटि कछनी पीताम्बर बांधे, हाथ लिए भौंरा चक डोरी ॥
और भी - **औचक ही देखी तहं राधा, नैंन विशाल भाल दिये रोरी ॥**
और भी - **सूर स्याम देखते ही रीझै, नैन नैन मिल परी ठगौरी ॥"**

कृष्ण बहुत चतुर और छलिया हैं, वह राधा के सहज और भोले सौन्दर्य को देखकर उसे फुसलाने का प्रयास करते हैं -

"बूझत स्याम कौन तूं गोरी ।
कहां रहति काकी है बेटी, देखी नहीं कहूं ब्रज खोरि ॥
काहे को कम ब्रज तन आवत, खेलत रहत अपनी पौरी ।
श्रवनन सुनत रहत नन्द ढोटा, करत रहत दधि माखन चोरी ॥
तुम्हारो कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलहु संग मिलि जोरी ।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमणि, बातन भुरई राधिका भोरी ॥"

कृष्ण ने राधा को बातों में भुला दिया । राधा और कृष्ण का मिलन नित प्रति होने लगा । राधा को भी कृष्ण से मिले बिना चैन न पड़ता । दोनों के हृदयों में कसक बढ़ने लगी । राधा को कृष्ण से गाय दुहाना बहुत अच्छा लगता । कृष्ण को भी एक दिन अच्छा मजाक सूझा-

"हरि सौं धेनु दुहावती प्यारी ।
करति मनोरथ पूरन मन, वृषाभानु महरि की बारी ।
और भी - **दूध धार सुखै पर छवि लागति, सो उपमा अति भारी ।**

मानहु चन्द कलंकहि धोवति, जहं- तहं बूंद सुधारी ॥

कृष्ण द्वारा राधा के मुख पर छोड़ी दूध की धारा कितनी सुन्दर व्यतीत होती है ? प्रेम का यह धागा कितना लम्बा हो गया कि कृष्ण उसके बाल भी पकड़ने लगे-

"छांड़ि देहु मेरी लट मोहन।"

ग्रीष्म लीला के अवसर पर अन्य सखियां राधा से कहती हैं कि 'तू धन्य है क्योंकि कृष्ण के निकट रहती है' पर राधा भेद नहीं देती-

"राधिका कहि अब सांची।"

और भी - **सूरदास राधिका सयानी, रूप- रासि- रस सांची।**

चीर हरण प्रसंग में कृष्ण सभी गोपियों को परेशान करते हैं। कृष्ण स्नान करती हुई गोपियों की पीठ धोखे से आकर मलने लगते हैं -

"कैसे बने जमुना न्हात।
नन्द को सुत तीर बैठों बड़ों चतुर सुआन।
हार तोरे, चीर फारैं, नैन चले चुराई।
काल्हि धौखैं कान्ह मेरो, पौठ मौंजा आइ ॥"

इस वर्णन से एक बात स्पष्ट है कि सूर का संयोग श्रृंगार वासनात्मय नहीं है मूलत: वे भक्त कवि हैं और भक्ति के परिप्रेक्ष्य में ही उनके श्रृंगार का मूल्यांकन होना चाहिये।

(II) वियोग श्रृंगार

सूर के वियोग श्रृंगार का आधार साधारण और सूक्ष्म है। अक्रूर के साथ कृष्ण मथुरा चले जाते हैं और सम्पूर्ण ब्रज में कुहराम मच जाता है पर गोपियां और राधा क्या करें, जिनके जीवन का सर्वस्व ही कृष्ण है। कृष्ण जब लम्बी अवधि बीत जाने पर भी लौटकर नहीं आते तो गोपियां एक रास्तागीर से सन्देश भेजती हैं -

"हरि परदेश बहुत दिन लाये।
कारी घटा देखि बादर की नैन भार आये ॥
पालगौं तुम बीर बटाऊ, कौन देस तैं धाये।
इतनी पतियां मेरी दीजौं, जहां स्याम घन छाये ॥"

और फिर बादलों की गर्जना और कृष्ण का लौटकर न आना गोपियों की स्थिति को कई गुना दुखदायी बना देता है। पर इस अवस्था में भी जब पपीहा बोलता है तो वे उसे आशीर्वाद देने लगती हैं क्योंकि वह भी तो अपने प्रिय के विरह में 'पीउ पीउ' चिल्लाता रहता है-

बहुत दिन किबौ, पीपीहा प्यारी।
बासुरी रैन नाव लै बोलत, भयो विरह जुर कारो ॥"

गोपियों में निराशा का भाव तब आ जाता है जब कृष्ण के स्थान पर ऊधव का आगमन होता है और वे गोपियों को निर्गुण का सन्देश देने लगते हैं तब गोपियों पर वज्रपात हो जाता है। पर वे उनसे साफ- साफ कह देती हैं कि हम तुम्हारे निर्गुण को स्वीकार नहीं कर पायेंगी क्योंकि हमारा मन हमारे पास नहीं है। हां, यदि तुम हमारा मन लौटा दो तो हम सब बातें स्वीकार कर लेंगी-

उधौ मन नहिं हाथ हमारे।
रथ चढ़ाई हरि संग गये लै मथुरा जबहि सिधारे ॥

और भी - **"आजहूं मन आपनौ हम पावै, तुमतै होय तो होय।**
सूर सपथ हमें कोटि तिहारी, कही करेंगी सोह॥"

वियोग में राधा का चित्र देखकर तो कारुणिक दृश्य उपस्थित हो जाता है। बेचारी उस साड़ी को त्यागती नहीं है जिसे कृष्ण के साथ क्रीड़ा करते समय धारण की थी -

अति मलीह ब्रज भानु कुमारी।
हरिश्रम जल अन्तर तन भीजे।
ता लालच न धुववति सारी॥"

गोपियों की निराशा का मार्मिक अंकन इन पंक्तियों में देखिये -

"नैना भये अनाथ हमारे।
मलन गोपाल वहां तैं सजनी सुनियन दुरि सिधारे।"

कृष्ण मथुरा से द्वारिका जाने के बाद सचमुच कभी नहीं आये। उस निष्ठुर ने गोपियों को जीवन भर वियोग के समुद्र में ढकेल दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर ने श्रृंगार के उभय पक्षों संयोग और वियोग का पूर्ण सफल चित्रण किया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर ने हिन्दी साहित्य में श्रृंगार को रसराज के पद पर प्रतिष्ठित किया है।

'भ्रमर गीत'

उत्तर- भ्रमर गीत का शब्दिक अर्थ है भ्रमर को लक्ष्य करके लिखा गया गान या गीत। - भ्रमर गीत का यह अर्थ सामान्य है। साहित्य में इस शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में होता है। इस सम्बन्ध में डॉ. हरवंशलाल शर्मा लिखते हैं, भ्रमर शब्द अत्यन्त प्राचीनकाल से ही साहित्य में रस- लोलुप पुरुष का प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुआ है।

कली- कली का रस- पान करने वाले भ्रमर के समान नित्य नवीन मुग्धा से अठखेलियां करने वाला पुरुष भ्रमर के नाम से उपालम्भ का आस्पद बनाया जाता रहा है।

कृष्ण भी अपनी भ्रमर- वृत्ति के कारण आगे भ्रमर के अर्थ में प्रयुक्त होने लगे।

कृष्ण गोपियों की उपेक्षा करके भ्रमर के समान ही मथुरा चले गये। भ्रमर भी तो फूल-फूल का रस- पान करता है। 'भ्रमर' कृष्ण और उद्धव दोनों का प्रतीकार्थ बन गया तथा 'भ्रमर गीत' का अर्थ हो गया उद्धव और कृष्ण को उपालम्भ करके गाया जाने वाला गीत।

कृष्ण गोपियों को विरह के महोदधि में डूबता हुआ छोड़कर मथुरा चले जाते हैं।

गोपियों की स्थिति तब और दयनीय हो जाती है जब कृष्ण के सखा उद्धव गोपियों को निराकार ब्रह्म का संदेश देने आ जाते हैं। गोपियां उद्धव के ज्ञान से पराजित नहीं होतीं अपितु अपने तर्कों से उन्हें ही निरुत्तर कर देती हैं। कभी वे उनका मजाक उड़ाती हुई कहती हैं-

'देन आये ऊधौ मत नीकौ।
आबहु री मिलि सुनहु सयानी, लेहु सुजास कौ टीकौ॥
जाकी प्रकृति परी जिय जैसी, सोच न भली- बुरी कौ।
जैसे सूर ब्याल रस चाखै, मुख नहिं होत अभी कौ॥'

गोपियों की व्यथा मानो सूर की अपनी व्यथा है। तभी तो गोपियों की पीड़ा को वे इतनी गहराई से व्यक्त कर पाये हैं।

गोपियां ऊधव को निरुत्तर करना चाहती हैं। वे कभी असहाय और मर्माहत दिखती हैं, तो कभी बुद्धि को चकराने वाले प्रश्न पूछती हैं। गोपियों को निर्गुण से कोई परहेज थोड़े ही है। यदि निर्गुण की साधना इस बात की गारंटी उन्हें दे दे कि इस साधना से उनके प्रिय के दर्शन हो जायेंगे तो वे सहर्ष निर्गुण की साधना कर सकती हैं -

'ऊधौ तो हम जोग करैं।
जो हरि बेगि मिलै अब हमको, वैसे भेस धरैं॥'

एक बात और है कि इस निर्गुण की उपासना मन के बिना तो हो नहीं सकती और गोपियों का मन तो कृष्ण के पास चला गया है। अत: वे ऊधव से कहती हैं कि तुम हमारा मन हमें लौटाकर ला दो तो हम तुम्हारे इस निर्गुण को स्वीकार कर लेंगी-

'ऊधौ मन नहिं हाथ हमारे।
रथ चढ़ाइ हरि संग गये लै मथुरा जबहिं सिधारे।
अजहूं मन अपनो हम पावैं, तुमसे होय तो होय।
सूर शपथ हमें कोटि तिहारी, कही करैंगी सोय॥'

ऊधव ज्ञान का गुमान लेकर ब्रज आये थे। लेकिन गोपियों की प्रेमधारा में उनका रूखा ज्ञान बहकर डूब गया। वे गोपियों को ज्ञान की शिक्षा देना चाहते थे लेकिन उलटे प्रेम के सागर में डूबने- उतराने लगे।

गोपियां बचपन से कृष्ण के साथ खेली हैं, उनके सौन्दर्य का रसपान किया है। आज यह पहला अवसर है कि वे इतनी कटु बात सुन रही हैं। भला इन रुक्ष बातों को सुनकर उनकी आंखें कैसे जीवित रह सकती हैं ?

'अखियां हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहे रूप- रस- राची ये बतियां सुनि रुखी॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत, तब ऐतौ नहिं झूखीं।
अब इन जोग सदेसनि ऊधौ, अति अकुलानी दूखी॥'

ऊधव ने आकर गोपियों से निर्गुण की उपासना की चर्चा चलाई। गोपियों की तारीफ इस बात में है कि ऊधव के मुख से एक बार निर्गुण की उपासना का शब्द निकला क्या, फिर उन्हें बोलने ही नहीं दिया। कोई ऊधव से निर्गुण का परिचय पूछती है, तो कोई कहती है कि इसे ठीक प्रकार से गांठ में बांध लो, कहीं ऐसा न हो कि यह छूट जाये और बाद में तुम्हें पछताना पड़े। ऐसे प्रश्नों से उद्धव की मति ही भ्रमित हो जाती है -

'सुनतमौन व्है रह्यो ठगो सो, सूर सबै मति नासी॥'

'भ्रमर गीत' सूरदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें सगुण शक्ति का निर्झर ऊंची- नीची और समतल भावभूमि में योगमार्ग की कठिन शिलाओं को तोड़ता हुआ प्रवाहित होता है।

गोपियों के सरस तर्कों में ऊधव की निर्गुण उपासना का भूसा न जाने कहां उड़ गया।

भ्रमरगीत की कथा का स्वरूप

भ्रमरगीत विप्रलम्भ श्रृंगार का काव्य है। कृष्ण गोपियों से प्रेम क्रीड़ाएं करके उनको अपने वियोग में तड़पता छोड़कर मथुरा चले जाते हैं। मथुरा में कंस का वध करके कृष्ण राजकाज में इतने अधिक व्यस्त हो जाते हैं कि उनको गोकुल लोटने का अवसर नहीं मिलता। वे अपने ज्ञानी मित्र उद्धव को गोकुल में माता-पिता, ग्वाल-बाल और गोपियों को सांत्वना देने के लिए भेजते हैं। गोकुल

में उद्धव का गोपियों से वाद-विवाद होता है। उद्धव वाद-विवाद में हार जाते हैं और गोपियों की प्रेम भावना में निमग्न होकर मथुरा लोट आते हैं।

भ्रमरगीत का इतना संक्षिप्त और सीधा कथानक है।भागवत्कार गोपी-उद्धव-संवाद के बीच में एक भ्रमर को ला देता है। भ्रमर उड़ता हुआ आता है और एक गोपी के चरण को कमल समझकर उस पर बैठ जाता है। गोपियां उद्धव को छोड़कर उस भ्रमर के पीछे पड़ जाती हैं। वे भ्रमर को लक्ष्य करके कृष्ण और उद्धव को खरी खोटी सुनाने लगती हैं। गोपियों के समक्ष उद्धव का सारा गर्व चला जाता है। भागवत् के इस मूल कथानक के आधार पर काव्य रचना होती रही, जिसका नाम भ्रमरगीत पड़ा।

डां. सत्येन्द्र ने भ्रमरगीत के कथानक का निम्न प्रकार विश्लेषण किया है -

1. **भूमिका** - कृष्ण उद्धव को ब्रज जाने के लिए प्रेरित करते हैं और उद्धव ब्रज पहुंचते हैं।

2. **प्रस्तावना** - उद्धव अवसर पाकर गोपियों से कृष्ण का संदेश कहते हैं।

3. **विषय प्रवेश** - कहीं से उड़ता हुआ एक भ्रमर आ जाता है।

4. **मूल विषय** - गोपियां भ्रमर को - (क) सम्बोधन करके कृष्ण और उद्धव को खरी खोटी सुनाती हैं और हृदय के उद्‌गार अभिव्यक्त करती हैं। (ख) गोपियां उद्धव के ज्ञान और संदेश का खंडन करती हैं। (ग) अन्त में वे कृष्ण में तन्मय हो जाती हैं।

5. **उपसंहार** - गोपियों की प्रेम तन्मयता को देखकर उद्धव का ज्ञान-गर्व चला जाता है और उनकी प्रेम भक्ति पर आस्था हो जाती है। वे मथुरा लौटकर गोपियों की दशा का वर्णन करते हैं और कृष्ण को निष्ठुर कहते हैं।

भ्रमरगीत का उद्देश्य

डा. स्नेहलता श्रीवास्तव ने भ्रमर गीत के उद्देश्य को निश्चित करते हुए हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा में लिखा है -

ज्ञान पर प्रेम की, मस्तिष्क पर हृदय की विजय दिखाकर निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की अपेक्षा सगुण साकार ब्रह्म की भक्ति भावना की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।

भ्रमरगीत का मूल स्त्रोत श्रीमद भागवत् है। उक्त उद्देश्य भागवतकार का न होकर सूर एवं उनके समकालीन तथा परवर्ती कवियों का रहा है।

भ्रमरगीत परम्परा में सूर के भ्रमरगीत का स्थान ।

भ्रमरगीत सूरदास का एक अत्यन्त सरस, मधुर एवं उपालम्भ पूर्ण अंश है। सूरकृत भ्रमर गीत श्रृंखला की पहली कड़ी है। भ्रमरगीत का मुख्य आधार श्रीमदभागवत् है। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह एक सौद्देश्य रचना है। इसका नाम भी बड़ा ही सार्थक एवं सहेतुक है। सर्वप्रथम भ्रमर गीत की परम्परा में सूरकृत भ्रमरगीत का क्या स्थान है का विवेचन प्रस्तुत है -

भ्रमरगीत की परम्परा में सूरकृत भ्रमरगीत का स्थान

भ्रमरगीत का प्रसंग सर्वप्रथम श्रीमद्‌भागवत् में देखने को मिलता है। हिन्दी में इस प्रसंग को सर्वप्रथम चित्रित करने का श्रेय महाकवि सूरदास को है पर भागवत के इस प्रसंग को अपना आधार बनाते हुए भी सूर ने इस में कुछ मौलिक परिवर्तन कर दिये हैं। भागवत में भक्ति के अपेक्षा ज्ञान की श्रेष्ठता का चित्रण किया गया है जबकि सूर ने ज्ञान पर भक्ति की विजय का वर्णन किया है। भागवत् में राधा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता सूर ने अपने भ्रमरगीत में राधा को स्थान दिया है। इस प्रकार सूर ने भ्रमरगीत की रचना में अपनी मौलिक सूझबूझ का परिचय दिया है। उद्धव

की ज्ञानयोग प्रियता और गोपियों के प्रेम की अनन्यता दोनों को समान्तर रखकर ज्ञान योग पर प्रेम योग की विजय का चित्रण किया है और अपनी भक्ति भावना का भी। सूरदास ने तीन भ्रमर गीतों की रचना की है। प्रथम भ्रमरगीत तो भागवत् का हीं अनुवाद सा प्रतीत होता है यह दोहे चौपाईयों में है। दूसरा भ्रमरगीत पदों में है। इसमें पदों की संख्या के नाम पर केवल एक ही पद है। तीसरे भ्रमरगीत में पदों की संख्या सूरसागर के 4078 वें पद से प्रारम्भ होकर 4710 वें पद पर समाप्त होती है। सूर का भ्रमरगीत प्रधानत: व्यंग्य काव्य है। भ्रमर के माध्यम से गोपियों ने उद्धव पर, उनके निर्गुण निराकार ईश्वर पर, इनके ज्ञान योग पर, कृष्ण पर खूब व्यंग्य कसे हैं। भ्रमर की उपमा भी सर्वथा संगत एवं समचीन है। कृष्ण और उद्धव भी काले तथा भ्रमर भी रस लोलुप्त और कृष्ण भी। वस्तुत: सूर के भ्रमरगीत में ज्ञान और भक्ति, निर्गुण और सगुण तथा हृदय और मस्तिष्क का संघर्ष है। उसमें तर्क वितर्क के लिए अधिक स्थान नहीं है। सूर भ्रमरगीत में तो हृदय पक्ष की प्रधानता है। गोपियां अपने आपको अबला और मूर्ख कहती हैं तथा निर्गुण पन्थ को बहुत ही दुरूह और दुष्कर बताती हैं। गोपियों के प्रेम की प्रगाढ़ता को देखकर उद्धव का ज्ञान गर्व मिट जाता है। गोपियों के प्रेम पथ के पथिक बन जाते हैं।

सभी भ्रमरगीतों के अवलोकन अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि सूरकृत भ्रमरगीत की सी भावना की तीव्रता, संवेदना की मार्मिकता, अनुभूति की तीक्ष्णता तथा कलात्मक सौष्ठव अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तव में भ्रमरगीत की कल्पना का मूल रूप भागवत् में उपलब्ध होते हुए भी, हिन्दी में इसे मौलिक रूप में प्रणयन करने का एक मात्र श्रेय महाकवि सूरदास को ही है। परवर्ती कवि सूर से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित होते रहते हैं। उद्धव के ज्ञान गर्व का उन्मूलन करना महाप्रभु वल्लभ द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के अनुसार प्रेमभक्ति की प्रतिष्ठापना सूर की मौलिकता है। सूर ने भागवत् के संक्षिप्त प्रसंग को विस्तृत एवं व्यापक भी बना दिया। नि:संदेह सूर का भ्रमरगीत एक सर्वश्रेष्ठ उपालम्भ काव्य है तथा भ्रमरगीत परम्परा में सूर का स्थान असन्दिग्ध रूप से मूर्धन्य है।

सूरकृत भ्रमर गीत अपनी अनेक विशेषताओं के कारण भ्रमरगीत परम्परा में विशेष स्थान रखता है। यह वह प्रसंग है जिसमें कवि की सहृदयता और वाकविदग्धता दोनों को समान महत्व प्राप्त हुआ है। यह वह रत्न है जिसकी आभा के समक्ष सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य नतमस्तक है। इसकी रचना सूरदासजी ने प्रेम भावना की प्रतिष्ठा और ज्ञान के खण्डन के लिये की है। सूर के भ्रमरगीत का प्रमुख उद्धेश्य सगुण का मण्डन और निर्गुण का खंडन है।तत्कालीन पीड़ित और त्रस्त जनता के निराश हृदय को आश्वस्त करने में निर्गुण पंथी ज्ञानमार्गी सन्त कवि तथा प्रेममार्गी सूफी सन्त कवि दोनों ही सर्वथा असम एवं अक्षम सिद्ध हुए थे। जनसाधारण अदृश्य निराकार, निर्गुण, ईश्वर की कल्पना से न सन्तुष्ट हुआ न आश्वस्त। फलत: निर्गुण का स्थान सगुण भक्ति ने ले लिया है। निर्गुण की पराजय का और सगुण की विजय उद्धव और गोपियों के माध्यम से भ्रमरगीत में सूर ने भली भांति चित्रित की है। उस युग में उत्पन्न 'ज्ञान बड़ा अथवा भक्ति' विवाद को सूर ने भ्रमरगीत में सुलझाने का प्रयास किया है। सूर ने अपना संपूर्ण कौशल, ज्ञान से बड़ी भक्ति सिद्ध करने में प्रकट किया है।

वस्तुत: भ्रमरगीत के प्रसंगानुसार उद्धव को ब्रज में भेजने का श्रीकृष्ण का उद्देश्य भी यही था। उद्धव ज्ञानोपासक थे। उनको अपने ज्ञान का अत्यधिक गर्व था। वे भगवद भक्ति और भगवद प्रेम को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। उद्धव के नीरस निर्गुणवाद के अहंकार को गोपियों के सरस सगुणवाद द्वारा उन्मूलन करने तथा ज्ञान की उपेक्षा भक्ति की गौरव महिमा को स्वीकार करने के उद्धेश्य से ही कृष्ण ने उद्धव को ब्रज में गोपियों को समझाने के लिए भेजा था। सूर ने लिखा है-

जदुपति आनि उद्धव रीति।

प्रेम भजन न नेकु जाके जाय क्यों समुझाय।

सूर प्रभु मन यह आनी ब्रजहि देहु पठाय।

सूर ने इस तथ्य का अनुभव किया था कि निर्गुण के नीरस उपदेशों से जगत का कल्याण सम्भव नहीं। जनता पर उनका प्रभाव कुछ नहीं पड़ता। जनता को तो सगुण साकार ही सहारा दे सकता है। वही उनको अपनत्व प्रदान कर सकता है। रूप, रंग, हाथ, पांव से विहीन केवल भावना प्रधान निर्गुण और निराकार जनता के लिए किस काम का। फलतः सगुण साकार ब्रह्म की स्वीकृति और निर्गुण ब्रह्म के निषेध हेतु ही भ्रमरगीत की रचना सूर ने की है। वे इसमें पर्याप्त सफल भी हुये हैं। भाषा स्वरूप भ्रमरगीत का अन्तिम अंश इसका उदाहरण है जिसमें उद्धव अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं और कृष्ण से ब्रज लौट चलने का आग्रह करते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि सूरदासजी का भ्रमरगीत काव्य कला की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, उसमें प्रेम सौन्दर्य और भक्ति का भी अदुभुत सामंजस्य दिखाई देता है। सूरदास सच्चे अर्थों में मानव हृदय के पारखी थे, उन्होंने सम्बन्ध भावना का प्रसार दिखाकर अपने मनोवैज्ञानिक पाण्डित्य को भी प्रकट किया है। उनकी गोपियां अपनी प्रेम साधना की महत्ता और एक निष्ठा को प्रमाणित करती हुई जिस भाव को प्रकट करती हैं, वह सूर की सहृदयता का प्रमाण है। इसी प्रकार गोपियों नें उद्धव के प्रति जो व्यंग्य और तर्क प्रस्तुत किये हैं वे न केवल सूर की काव्यात्मकता के प्रतीक हैं अपितु उनकी सहृदयता और वाक्चातरी के भी स्पष्ट प्रमाण हैं।

श्रंगार रस का ऐसा उपालभ्य काव्य दूसरा नहीं है

आचार्य प. रामचन्द्र शुक्ल ने 'भ्रमरगीत सार' की प्रस्तावना के अन्तर्गत ये महत्वपूर्ण शब्द लिखे हैं- "जिस प्रकार बंग देश में कृष्ण-भक्त चैतन्य थे, उसी प्रकार उत्तर भारत में श्री बल्लभाचार्यजी ने परम भाव की उस आनन्द विधायिनी कला का दर्शन कराकर, जिसे प्रेम कहते हैं, जीवन में सरसता का संचार किया। दिव्य प्रेम-संगीत की धारा में इस लोक का सुखद पक्ष निखर आया और जमती हुई उदासी या खिन्नता बह गई।

जयदेव की देववाणी में स्निग्ध पीयूष-धारा जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक-भाषा की सरलता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विघापति के कोकिल कण्ठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील-कुंजों के बीच फैलकर मुरझाये मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊंची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी-"....मनुष्य के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को प्रत्यक्ष दिखाकर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों नें जीवन के प्रति अनुराग जगाया या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी।" अतः सूरदास के काव्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें दृष्टव्य हैं- (1) उसमें जीवन का मधुर पक्ष है। (2) उसमें जीवन के सौन्दर्य का उद्घाटन है। (3) वह सरस है। (4) उसमें भगवतप्रेम की चर्चा है।

श्रंगार रस का स्थायी भाव 'रति' है। 'रति' का अर्थ है 'प्रेम'। आलम्बन भेद से 'रति' की तीन श्रेणियां ठहरती हैं। यथा- (क) समान के प्रति, (ख) बड़े के प्रति, (ग) छोटे के प्रति।

समान के प्रति प्रेम सौहार्द्र, मैत्री आदि कोटि का होता है, परन्तु व्यापक रूप में 'दाम्पत्य प्रेम' का ही अधिक महत्व है। नायक-नायिका विषयक 'दाम्पत्य प्रेम' को श्रंगार कहते हैं।

बड़े के प्रति प्रेम में पूज्य बुद्धि का संयोग रहता है। अत: यह प्रेम, श्रद्धा या भक्ति की कोटि का होता है। अपने से छोटे के प्रति प्रेम 'अपत्यस्नेह' की कोटि का होता है। अत: इसे वात्सल्य रस कहते हैं। इस प्रकार आलम्बन-भेद के आधार पर श्रंगार रस के मुख्यतया तीन विभाग ठहरते हैं- भक्ति, श्रंगार तथा वात्सल्य। सूरदास ने 'प्रेम' तत्व की विशद् चर्चा की है। अत: उनके काव्य में हमको भक्ति, श्रृंगार तथा वात्सल्य तीनों के दर्शन होते हैं। उन्होंने प्रेम के विशद् निरूपण द्वारा एक सागर तैयार किया, जिसको 'सूरसागर' कहते हैं। 'सूरसागर' में वस्तुत: एक सागर की वारि-राशि का गाम्भीर्य एवं घनत्व है।

माता यशोदा, नन्द बाबा, गोकुल के गोप एवं गोपिकाएँ- इनका कृष्णप्रेम 'वात्सल्य' के अन्तर्गत आता है, राधा और गोपियों का कृष्ण प्रेम एवं रास-क्रीड़ाएँ आदि श्रंगार रस की कोटि में आती हैं तथा विनय के पद 'भक्ति' के अन्तर्गत आते है।

'भ्रमरगीत सार' में विनय के पद नहीं हैं। इनमें श्रीकृष्ण के बाल्यकाल एवं यौवन-काल के मनोहर चित्र हैं। इनमें माता यशोदा एवं बाबा नन्द का कृष्ण-प्रेम गौण रूप से तथा कृष्ण और गोपिकाओं की प्रेम-माधुरी प्रधान रूप से वर्णित है। इन वर्णनों की मधुरता एवं सरसता जीवन में स्फूर्ति का संचार कर देती है। यथा-

"ऊधो, मन नाहीं दस बीस।
एक हुतौ सो गयो स्याम संग को आराधै ईस ?

xx xx xx

तुम तौ सखा स्याम सुन्दर के सकल जोग के ईस।
सूरदास रसिक की बतियां पुरवौ मन जगदीस।"

बाल्यकाल और यौवन काल के बीच की नाना परिस्थितियों का सुखद चित्रण सूरदास ने जी-खोलकर किया है। इन वर्णनों में "सूरदासजी ने जीवन की जो रमणीयता सामने रखी, उससे निराश हृदय नाच उठे।"

1. वात्सल्य और श्रंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं। वे इन क्षेत्रों का कोना-कोना झांक आए।
2. उक्त दोनों रसों (श्रंगार के उक्त दोनों पक्षों- वात्सल्य एवं श्रंगार) में रतिभाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियाँ, दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षी-करण सूर कर सके, उतना और कोई नहीं।
3. हिन्दी-साहित्य में श्रंगार का रस-राजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने।

वात्सल्य

हम सर्वप्रथम 'वात्सल्य' का एक उदाहरण लेते हैं। माता यशोदा अपने लाड़ले कन्हैया के वियोग में व्याकुल हैं, उनके हृदय की विकलता अग्र प्रकार व्यक्त की गई है-

"संदेसौ देवकी सो कहियो।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की मया करत ही रहियो।

xx xx xx

तुम तो टेव जानतहि हैहौ तोऊ मोहि कहि आवै।
प्रात: उठत मेरे अलक लड़ैतेहि माखन-रोटी भावै।।"

लड़का कहीं रहे, कितनी ही अच्छी तरह परन्तु माता को उसकी चिन्ता सताती रहती है। उसको यह विश्वास रहता है कि इसके सिवाय उसके लाल की कोई ठीक तरह देखभाल कर ही नहीं सकता है। मातृ ह्रदय की इस कोमलता की व्यंजना प्रज्ञाचक्षु सूर की वाणी ही कर सकी है। इधर बेटे को भी माता की याद आती है, परन्तु उसके प्रेम में किंचित तर्क का संयोग है। बाल्यकाल का मूल्य विदित होता है। किसी ने ठीक कहा है कि-

"नदिया बिन सागर कौन भरे ?
माता बिन आदर कौन करे।"

हम जब माता के पास हों, तब भले ही उससे लड़ लें, परन्तु उससे बिछुड़ने पर हमें मालुम होता है कि उसकी ममता का क्या महत्व है। माता का रीता हाथ ही बालक के समस्त दु:ख हर लेता है। कृष्ण की दशा कुछ-कुछ वैसी ही है। इसमें राधा के प्रति प्रेम की व्यजंना भी है और साथ ही बाल-स्वभाव की बहुत ही सहज किन्तु सूक्ष्म वृत्ति का मधुर उद्घाटन भी। देखिये अपत्य से स्निग्ध यह पीयूष वाणी-

"नीके रहियो जसुमत मैया।
आवैगे दिन चार-पॉच में हम हलधर दोउ भैया।
जा दिन तें हम तुम तें बिछुरे काहु न कहौ 'कन्हैया'।
कबहु प्रात न किया कलेवा, साँझ न पीन्ही छैया।
बंसी बेनु संभारि राखियो और अबेर सबेरो।
मति लै जाय चुराय राधिका कछुक खिलौना मेरो।
कहियो जाय नन्द बाबा सों निपट निठुर जिय कीन्हों।
सूर श्याम पहुँचाय मधुपुरी बहुरि संदेस न लीन्हों।"

कृष्ण का बाल्यकाल गोकुल में व्यतीत हुआ था। यहीं साथ-साथ खेलते-खाते और गउएँ चराते हुए उनको गोकुल के ग्वाल एवं वहाँ की ग्वालिनों से प्रेम हो गया था। यह लड़कपन का साहचर्य प्रेम था, जो किसी भाव में नही छूट सकता था। जिन महानुभावों को अपने सहपाठियों से प्रेम है, जो उन्हें देखते ही खिल उठते हैं और अपने पद एवं अपनी वय की समस्त मर्यादाओं को भूलकर 'अबे','तबे' करने लगते है, वे गोपियों की इस विवशता को समझ सकते हैं कि, "लरिकाई को प्रेम कहो अलि कैसे छूटे ?" विवशता में ही प्रेम की वह पवित्रता है जिसमें अव-गाहन करते हुए सहृदय पाठक तृप्त ही नहीं हो पाते हैं।

परिस्थितियों के वश में पड़कर लड़कपन के साथी बिछुड़ गए। एक-दूसरे की याद करके वे सदैव दु:खी बने रहते हैं। बस, उनके वियोग की कथा ही 'भ्रमर-गीत सार' का प्रतिपाद्य विषय है।

विप्रलम्भ श्रृंगार

'भ्रमरगीत सार' एक विप्रलम्भ श्रृंगार प्रधान रचना है। इसमें विरह की समस्त दशाओं का सजीव उद्घाटन किया गया है। आचार्य शुक्ल ने तो लिख दिया है कि, "न जाने कितने प्रकार की मानसिक दशाएँ ऐसी मिलेंगी जिनके नामकरण तक नहीं हुए हैं।"

कृष्ण के वियोग में गोपियों की दशा चिन्तनीय हो जाती है। कृष्ण की उपस्थिति में जो वस्तुएँ प्रिय एवं सुखदायक लगती थीं, वे सब की सब अब दु:खदायी एवं अप्रिय लगने लगी हैं- वे उन्हें काट खाने को दौड़ती हुई दिखाई देती हैं। विप्रलम्भ-श्रृंगार का यह 'उद्दीपन विभाव-विधान' सूर के वियोग श्रृंगार की अनुपम देन है-

"बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजै।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।

xx xx xx

सूरदास प्रभु तुमरे दरस कौ मग जोवत अंखियाँ भई गुंजैं॥"

जाग्रतावस्था की तो बात ही क्या है- हमेशा रोते ही बीतती है। स्वप्न में कृष्ण का विरह उनके कलेजे में कसकता रहता है। न जागते चैन है, न सोते हुए ही। वस्तुतः उन्हें नींद ही नहीं आती है। दुःख के दिन को तो वे किसी भाँति व्यतीत कर ही लेती हैं, परन्तु विरहागम रात्रि तो रो-रोकर ही कटती है- उनकी व्यथा को कौन जाने ! वे रात को सोती हैं अथवा बैठी हुई रोती रहती हैं-

"हमको सपनेऊ में सोच।
जा दिन ते बिछुरे नन्द-नन्दन ता दिन ते यह सोच।
मनु गुपाल आए मेरे गृह हँसि करि भुजा गही।
कहा करौं बैरिन भई निंदिया निमिष न और रही।"

कृष्ण जब से मथुरा गए हैं, तब से गोपिकाओं के नेत्रों में वर्षा आ गई है। उनकी आँखें श्रावण-भादों के रूप में बरसती रहती हैं। एक क्षण को भी आँसू बन्द नहीं होते हैं-

"निस दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस रितु हम पै, जब तैं स्याम सिधारे।
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ, उर कपोल भए कारे।
कबुकि पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे॥"

यह तो हुआ रस-परिपाक की दृष्टि से सूरदास का हृदयग्राही विरह-वर्णन ! सूरदास ने इस प्रकार के मर्मस्पशी विरह-वर्णन की एक माला-सी पिरोकर तैयार कर दी है। प्रत्येक पुष्प समान रूप से मोहक है- किसको छोड़ें और किसको ग्रहण करें।

'भ्रमरगीत सार' के विरह-वर्णन में कवि की कोरी भावुकता ही नहीं है, बल्कि शास्त्रीय नियमों का भी सफल पालन दिखाई देता है। साहित्य-शास्त्रियों के मतानुसार विरह की दस दशाएँ मानी गई हैं- 1. अभिलाषा, 2. चिन्ता, 3. स्मरण, 4. उद्वेग, 5. प्रलाप, 6. उन्माद, 7. व्याधि, 8. जड़ता, 9. मूर्च्छा, 10. मरण।

भ्रमरगीत में विरह की दसों दशाओं से सम्बन्धित वर्णन मिलते हैं।

'भ्रमरगीत सार' में अनेक पदों में विरह की ऐसी मानसिक स्थितियों का निरूपण किया गया है जो इन दस दशाओं के बाहर होते हुए भी अत्यन्त मार्मिक हैं। इसका एक कारण है- उनकी उमड़ती हुई वागधारा। आचार्य कवियों में काव्यांग-निरूपण हेतु काव्य-रचना करने वाले कवियों की भाँति संचारी भावों एवं अनुभावों की गिनती को ध्यान में रखकर आगे चलने वाली प्रवृत्ति न थी।यथा-

"ऊधौ कहियो यह संदेश।
लोग कहत कुब्जा रस माते, तातें, तुम सकुचौ जनि लेस।"

सौतिया डाह, अनन्य प्रेम, प्रिय के प्रति क्षमा-भाव आदि एक साथ कितने संचारी भावों का सुखद मिलन है। इसी प्रकार-

"फिर ब्रज बसहु गोकुलनाथ।
बहुरि तुमहिं न जगाय पठबौं गोधनन के साथ।

बरजौं न माखन खात कबहूँ, देहूँ देन लुटाय।

xx xx. xx

करिहौं न तुम सौं, मान हठ, हठि हौं न माँगत दान।
कहिहौं न मृदु मुरली बजावन करन तुम सों गान।
कहिहौं न चरनन देन जाबक, गहन बेनी फूल।
कहिहौं न करन सिंगार बटतर बसन जमुना कूल।"

कोई पूछे कि फिर तू उनका क्या करेगी? ये सब प्रतिज्ञाएँ क्यों की जा रही हैं? इसका सहज-सा कारण है, केवल दर्शन की लालसा। इस प्रेम में भोगेच्छा नहीं, बल्कि केवल प्रिय-दर्शन की इच्छा है-

"एक बार जो देहु दरसन प्रीति पंथ बसाय।
करौं और चढ़ाय आसन नैन अंग-अंग लाय।"

उक्त पद में गोपियों की अनुपात मिश्रित उदारता एवं सहिष्णुता की सूचना है। वे कहाँ तक अपनी करनी पर पछताएँ-

"कहाँ लगि मानिए अपनी चूक।
बिनु गोपाल, ऊधौ! मेरी छाती, हौन न गई द्वै टूक।"

"गोपियों की इन दर्द-भरी भोली-भाली प्रतिज्ञाओं में अनुपात, अधीनता और त्याग के उद्‌गार हैं। प्रेम अब चपल क्रीड़ा-वृत्ति छोड़ शान्त आराधना के रूप में परिणत होने को तैयार हो गया है। प्रेम का भक्ति में यह पर्यावसान सूरदास के प्रेम निरूपण की बहुत बड़ी विशेषता है। सुख-क्रीड़ा का त्याग रूप का विरक्त पक्ष दिखाकर मानो सूर ने भक्ति-मार्ग के शान्त रस का स्वरूप दिखाया है।"

सच्चे प्रेम में आत्मोत्सर्ग की भावना बढ़ती जाती है। अन्त में निराश होकर प्रेमी प्रिय-दर्शन का आग्रह भी छोड़ देता है। आत्मोत्सर्ग की यह पराकाष्ठा वहाँ समझनी चाहिए, जब प्रेमी का प्रेम एक अकिंचन कामना के रूप में दिखाई देने लगे। वह अपने लिए प्रिय से किसी सुख की कामना नहीं करता, वह केवल प्रिय के सुख की कामना को सर्वस्व समझ लेता है। प्रिय चाहे जहाँ रहे, सुख से रहे, उसका बाल भी बाँका न हो, सूरदास की गोपियों का प्रेम इसी चरमावस्था को प्राप्त होता है-

"जहँ-जहँ रहौ राज करौ, तहँ-तहँ लेहु कोटि सिर भार।
यह असीस हम देति सूर सुनु 'न्हात खसै जनि बार'।"

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है। सूरदास ने जिस विस्तार के साथ गोपियों के विरह का वर्णन किया है, उस विस्तार के साथ कृष्ण के पक्ष में प्रेम का निरूपण नहीं है। इसका कारण दार्शनिक है। कृष्ण और गोपियों का सम्बन्ध परमात्मा और आत्मा के समान है; अत: यह सवैया न्यायसंगत ही है। परन्तु एक-दो स्थलों पर उन्होंने श्रीकृष्ण के विरह का भी वर्णन किया है, ताकि कृष्ण इसी लोक के प्राणी बने रहें- आसमान को रास्ता दिखाने वाले निर्गुण ब्रह्म न बन बैठें। वह उद्धव के समक्ष अपने प्रेम की चर्चा करते हुए कहते हैं कि :-

"ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कगरी, अरू कुंजन की छाहीं।
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिल दुहावन जाहीं।

xx xx xx

यह मथुरा कंचन की नगरी मनि मुकताहल जाहीं।

जबहि सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत तन नाहीं।"

सारांश यह है कि श्रृंगार तथा वात्सल्य के क्षेत्र में इतनी अन्तर्दृष्टि कदाचित ही किसी अन्य कवि को प्राप्त हो। इनके पदों में श्रृंगार रस के प्राय: समस्त संचारी भावों का अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटन दिखाई देता है।

इस प्रकार यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि श्रृंगार रस के क्षेत्र में सूरदास की पैठ अनोखी है। उसकी कोई बात उनसे छिपी नहीं रह सकती- प्रेम क्षेत्र को उन्होंने चारों ओर से लोट-पोटकर देखा भी है और दिखाया भी है। इस क्षेत्र में अन्य कवियों की उक्तियाँ यदि जूठन-सी प्रतीत हों, तो इसमें आश्चर्य हो क्या है?

अब श्रृंगार रस का एक भक्ति वाला पक्ष रह जाता है। इसका सम्बन्ध उसकी उपासना-पद्धति से है। सूरदासजी श्री बल्लभाचार्यजी के शिष्य थे, जिन्होंने भक्ति-मार्ग में भगवान् का प्रेममय स्वरूप प्रतिष्ठित करके उसके द्वारा 'सायुज्य मुक्ति' का मार्ग दिखाया था।

श्रृंगार रस के विवेचन के अन्तर्गत हम सूरदास की प्रेम पद्धति का दिग्दर्शन कर ही चुके हैं- प्रेम अपनी चपल क्रीड़ा वृत्ति का त्याग कर किस शान्त आराधना के रूप में परिणित हो जाता है। रही बात शक्ति-साधना के चरम लक्ष्य, सायुज्य मुक्ति की। सूरदास ने यथास्थान इस ओर भी संकेत किया है। यथा-

"सीत उष्ण सुख नहिं मानै, हानि भये कछु सोच न राँचै।
जाय समाय सर वा निधि में, बहुरि न उलटि जगत में नाँचै।"

प्रेम भाव की चरमसीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है। अत: भगवत्-भक्ति की साधना के लिए इसी प्रेम तत्व को बल्लभाचार्य ने भी सामने रखा और उनके अनुयायी कृष्ण-भक्त कवि इसी को लेकर चले। इसी प्रेम तत्व की पुष्टि में सूर की वाणी किस प्रकार प्रयुक्त हुई, यह हम ऊपर बता ही चुके हैं। रतिभाव के तीनों प्रबल और प्रधान रूप- भगवद्विषयक रति, वात्सल्य, वदाम्पत्य रति, सूर ने लिखे हैं और उनके वर्णन में अपूर्वता लाकर भारतीय जनता के मानस को सरस, सुहावना बना दिया है। हृदय से निकली हुई प्रेम की इन तीनों प्रबल धाराओं से सूर ने बड़ा भारी सागर भरकर तैयार किया है।

सूर की रचना गीत-काव्य परम्परा के अन्तर्गत आती है। यह परम्परा उनको जयदेव और विद्यापति से प्राप्त हुई। यह परम्परा श्रृंगार रस की थी।

गीत-काव्य की सफलता के लिए संगीत, भावनाओं की गहनता, आत्माभिव्यक्ति तथा संक्षिप्तता आवश्यक है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'भ्रमरगीत सार' की रचना इस कसौटी पर पूर्णतया खरी उतरती है। उसका प्रत्येक पद चुनकर सजाए गये गुलदस्ते के समान आनन्द-विधायक है। सूर के पद संगीतज्ञों के कण्ठहार हैं। आज भी, सूर के पद गायन के बिना कोई भी संगीत-सम्मेलन पूर्ण नहीं समझा जाता है।

"सूर के भ्रमरगीत में वचन की भाव प्रेरित वक्रता द्वारा प्रेम प्रसूत न जाने कितनी अंतवृत्तियों का परम मनोहर उद्घाटन हुआ है।"

आचार्य शुक्लजी के मतानुसार वचन की जो वक्रता भाव प्रेरित होती है, वही काव्य होती है। "वक्रोक्ति: काव्य जीवितम्" से यही वक्रता अभिप्रेत है, वक्रोक्ति अलंकार नहीं। भावोद्रेक से उक्ति में जो एक प्रकार की बांकपन आ जाता है, तात्पर्य कथन के सीधे मार्ग को छोड़कर वचन जो एक भिन्न प्रणाली ग्रहण करते हैं, उसी को रमणीयता काव्य की रमणीयता के भीतर आ सकती है। भाव प्रसूत वचन रचना में ही भाव अथवा भावना तीव्र करने की क्षमता पाई जाती है। कोई मनुष्य

किसी को बड़ा बहादुर कह रहा है। दूसरे से सुनकर नहीं रहा जाता। वह कहता है-"हां, तभी न बिल्ली देखकर गिर पड़े थे।" कहने वाला इसे सीधे तरह से भी कह सकता था-"वह बहादुर नहीं, भारी डरपोक है, बिल्ली देखकर डर जाता है। पर इस सीधे वाक्य से उसको संतोष नहीं हो सकता था। भीरु को वीर को वीर सुनकर जो उपहास की उमंग उसके हृदय में उठी, उसने श्रोताओं को भी उपहासोन्मुख करने के लिए बिजली से डरने को बहादुरी के सबूत में पेश करा दिया। काव्य की उक्ति का लक्ष्य किसी वस्तु या विषय का बोध कराना नहीं, बल्कि उस वस्तु या विषय के संबंध में कोई भाव या रागात्मक स्थिति उत्पन्न कराना होता है। तार्किक जिस प्रकार श्रोता को अपनी विचार पद्धति पर लाना चाहता है, उसी प्रकार कवि अपनी भाव पद्धति पर-

अत: यह स्पष्ट है कि भाव प्रेरित विदग्धता (वक्रता) ही काव्योपयोगी हो सकती है। वक्रता का कारण कोई भाव अथवा कम से कम कोई रागात्मक दशा हो। 'विदग्धता नायिका' की वचन विदग्धता अथवा क्रिया विदग्धता में रतिभाव विद्यमान होने के कारण ही काव्य की रमणीयता होती है। रागात्मकता के अभाव में सिर्फ ब्यौरेवार वर्णन ही काव्य के अंतर्गत नहीं आ सकता। उदाहरण के रूप में हमें बालक कृष्ण की निम्नांकित वचन विदग्धता को प्रस्तुत कर सकते हैं-

"मैं अपने मंदिर के कोने माखन राख्यो जानि।
सोई जाय तुम्हारे ढौटा लीनो है पहचानि॥
बूझी ग्वालिन घर में आयो, नेकु न संका मानी।
सूर श्याम यह उतर बनायो 'चींटी काढत पानी'॥

इस उदाहरण में भय प्रेरित बाल प्रकृति का चित्रण होने से विदग्धता में रमणीयता का विधान हुआ है।

भ्रमरगीत और भाव प्रेरित वक्रता- इस परिप्रेक्ष्य में जब हम सूर कृत भ्रमर गीत का अध्ययन करते हैं, तो उसमें हमें भाव प्रेरित वक्रता द्वारा प्रेम प्रसूत अगणित अंतर्वृत्तियों के दर्शन होते हैं। सूर तो सरस सुकवि जो ठहरे। अपनी सरसता के साथ-साथ भाव प्रेरित वक्रता का भी अनूठा प्रयोग उन्होंने किया है। उसे हम कोरा वाग्जाल नहीं कह सकते। गोपियों को विरह अभिव्यंजना में सरसता तथा भाव प्रेरित वक्रता दोनों के दर्शन होते हैं। भ्रमरगीत की सबसे बड़ी विशेषता ही यही है। वियोगिनी गोपियां अपनी विरह व्यथा को इतनी विदग्धता के साथ व्यक्त करती हैं कि पाठक मन-मसोस कर रह जाता है। संपूर्ण भ्रमरगीत में बाल सिर्फ एक ही मिलती है और वह यह कि हे उद्धव ! हमें कृष्ण प्राणों से भी ज्यादा प्रिय है। हम उनकी ही दासी अथवा प्रेमपगी सखियां हैं। अत: आप हमें ज्ञान योग आदि की शिक्षा देने का कष्ट मत कीजिए। हम तो कृष्ण के विरह के मारे हो रही है तथा तुम्हें योग की पड़ रही है। यह है भाव प्रेरित वक्रता, जिसके द्वारा गोपियां अपनी बात भी कह देती हैं और उद्धव की बात का खंडन भी कर सकती हैं। पहले पहल वे सरस और मार्मिक ढंग से कहती हैं-

"आयो घोष बड़ो व्यापारी।
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की, ब्रज में शाय उतारी॥
उनके कहे कौन बहकावै, ऐसो कौन अजानी।
अपनी दूध छांडि को पीवे, खार कूप को पानी॥

उक्त पंक्तियों के द्वारा गोपियां कहना सिर्फ यही चाहती हैं कि कृष्ण ही हमें प्रिय है, अत: तुम्हारा योग हमारे अनुकूल नहीं है। योग को 'खार कूप को पानी' कह कर अपने प्रेम की श्रेष्ठता सिद्ध करके प्रेम और योग का पार्थक्य स्पष्ट कर दिया है। यही तथ्य संपूर्ण भ्रमर गीत में विभिन्न तरह से व्यंजित हुआ है। उदाहरण दृष्टव्य है-

"कहा करौं निर्गुन लै कैहौं, जीवहु कान्ह हमारे।
'जागत सोवत, सपने सौंतुख कान्ह जकरी।
सुनतहिं जोंग लगत अलि। ऐसो, ज्यौ करुई ककरी॥
सोई व्याधि हमें लै आए, देखी सुनी न करो।
यह तों सूर तिन्हे लै दीजे, जिनके मन चकरी॥"

उक्त उदाहरणों से गोपियों के प्रेम की दृढ़ता तथा योग के प्रति विरक्ति स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती है। भाव प्रेरित वाग्वैदिग्ध का एक और उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें निराकार पर व्यंग्य कितना मार्मिक है !-एक सखी कहती है-

"मोहन मांग्यों अपनो रूप,
या ब्रज बसंत ऊंचै तुम बैठी, ता बिन उहां निरूप।"

गोपियां अपने कथन की पुष्टि के लिए राम और कृष्ण की तुलना करती हैं और कहती हैं कि हमारे कृष्ण से तो सीता का पति राम ही अच्छा था, जो अपनी प्रिय सीता के लिए वन-वन भटकता रहा पर सीता को किसी प्रकार का निर्गुण ज्ञान संदेश के रूप में नहीं भेजा। सूर ने लिखा है-

"हरि सों भलो सो पति सीता को।
वन-वन खोजत फिरे बंधु संग कियो सिन्धु बीता को।
रावन मारयो, लंका जारी, मुख देख्यो भीता को।
दूत हाथ उन्हें लिखित पठायो, निगम ज्ञान गीता को॥

कई स्थानों पर सूर ने विपक्षी के कथन को अविश्वास की दृष्टि से भी देखा है। गोपियां बहुत ही विदग्धता और मार्मिकता के साथ कहती हैं-

"ऊधौ, हम अंजान मति भोरी।
कंचन को मृग कौने देख्यौ-कौने बांध्यौ डोरी।
कहुंधौं मधुप! वारि मथि माखन, कौने भरी कमोरी?"

सूर ने तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से वाक्विदग्धता को और भी अधिक रमणीयता और सरसता प्रदान की है। इसके द्वारा भक्ति मार्ग की सरसता और योग मार्ग की कठोरता और नीरवता को व्यक्त करने में सरलता मिली है। उदाहरण देखिए-

"अटपटी बात तिहारी ऊधौ, सुनै सो ऐसी कोहै?
हम अहीर अबला सठ, मधुकर! तिन्हें जग कैसे सौहैं?
बूचिहि खुवो, आंधरी काजर, नकटी पहिरै बेसरि।
मुंडली पाटी पारन चाहं कोढ़ी, अंगहि केसरि॥

कितनी परिहासपूर्ण उक्ति है? गोपियों को कृष्ण के द्वारा किए गए निष्ठुर और निर्मम व्यवहार पर अत्यंत दुःख है, पर वे यह जानकर बड़ी संतुष्ट होती हैं कि कृष्ण का दिल कुब्जा ने चुरा लिया है। वे उद्धव से अपनी प्रसन्नता और संतोष व्यक्त करती हैं-

"बरु वै कुब्जा भलो कियो।
सुनि सुनि, समाचार ऊधौ मो कछूक सिरात हियो॥
जाको, गुन गति नाम रूप, हरि हारयौ फिरी न दियो।
तिन अपनो मन हरत न जान्या, हंसि हंसि लोग जियो॥
सूर तनिक चंदन चढ़ाय तन ब्रजपति वस्य कियो।

और नकल गागरि नारिन को, दासी दाव लियो ॥

यह है सूर कृत भ्रमरगीत के पदों को भावप्रेरित-वाक्पटुता। गोपियां एक ओर तो उद्धव को खरी सुनाने के लिए कथन की नई-नई शैलियां अपनाती हैं और दूसरी ओर अपनी रागात्मक वृत्ति को भी प्रकट करती हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह नि:संकोच कह सकते हैं कि भ्रमर-गीत में भाव प्रेरित वचन की वक्रता द्वारा प्रेम प्रसूत अगणित अंतर्वृत्तियों का मनोहर उद्घाटन हुआ है। भ्रमर-गीत प्रसंग सूर की सहृदयता तथा वाक्विदग्धता का अनुपम उदाहरण है।

सूरदास की विनय-भावना का परिचय

महाप्रभु वल्लभाचार्य से भेंट होने से पूर्व सूरदास भगवद्भक्ति विषयक पद बनाकर गाया करते थे। दास्य, दैन्य, भर्त्सना, विचारणा, पश्चात्ताप आदि भावों से संबंध रखने वाले सूर के विनय के पद उसी समय के लिखे हुए हैं।

विनय के लिए एक ऐसे आधार की आवश्यकता है, जिसके लिए विनय की जाए। सूरदास ने प्रारंभ में ही इस विषय में अपना मत स्थिर कर दिया है। उनके विनय का आलंबन निर्गुण का सगुण अवतार (कृष्ण) हैं। 'अविगत' निर्गुण के प्रति विनय की भावना रहस्यमूलक, अस्पष्ट और भ्रामक हो सकती है अत: सूर ने अपना आधार सगुण रूप को बनाया-

अविगत गति कछु कहन न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै ॥
परम स्वादु सब ही जु निरंतर अ मत तोश उपजावै।
मन बानी को अवम अगोंचर, जो जाने सो पावै ॥
रूपु रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालय मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावै ॥
सूर के 'सगुनहैं- "वासुदेव" जदुनाथ गुसाईं'। देखिए-
वासुदेव की बड़ी बड़ाई।

x x x x x x x x x

बिनु दीन्हें ही देत सूर प्रभु ऐसे हैं, जदुनाथ गुसाई।

x x x x x x x x x x x x x x x x x x x

वेद उपनिषद् जासु कौं निरगुन ही बतावैं।
सोई सगुन सूर नन्द की दांवरि बंधावै ॥

सूर को यह निश्चय है कि निर्गुण व सगुन एक ही हैं। किसी कारण से ही 'निरगुन','सगुन' अवतार लेता है। उसके दो कारण हैं-

(क) ब्रह्म की लीला, (ख) भक्तों को आनंद देना एवं उसके दु:खों को दूर करना।

पहले वे भगवान के स्वभाव का वर्णन करते हैं, क्योंकि भक्त को उसी स्वभाव का आश्रय लेना है। भगवान के स्वभाव के अंग भक्त-वत्सलता, भक्त की धृष्टता सहना, भक्त का कष्ट हरण, शरणागत वत्सलता, दीन-ग्राहकता, गाढ़े दिन की मित्रता और अभयदान हैं। भगवान के इसी स्वभाव के विश्वास को लेकर भक्त आगे बढ़ता है। वह सांसारिक वैभव को त्याग भगवान की भक्ति-रूपी संपत्ति में ही अपने को धनी मानता है-

कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा-नाथ मनोरथ पूरन, सुख निधान जाकी मौज धनी ॥

अर्थ धर्म अरु काम, मोक्ष फल चारि पदारथ देत गनी।
इन्द्र समान हैं जके सेवक, तज बपुरे की कहा गनी॥
कहा कृपिन की माया गरिए, करत फिरत अपनी-अपनी।
खाइ न सकै खरचि नहिं जाने, ज्यों भुजंग सिर रहत मनी॥
आनंद मगन रम गुन गावै, सुख संताप की काटि तनी।
सूर कहत जे भजत राम को तिनसौं हरि सदा बनी॥

आगे वह अपने को महाराजाओं से भी बड़ा मानता है, भगवान का ऐश्वर्य ही उसका ऐश्वर्य है-

हरि के जन की अति ठकुराई।
महाराज दिविराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई॥

यहां तक मन को आश्वस्त करने के बाद भक्त विनय की भूमिका में उतरता है। वह पहले भगवान से माया और तृष्णा के परिहार की प्रार्थना करता है, क्योंकि भक्ति के यही दो प्रबल शत्रु हैं। सूर ने माया का वर्णन कई रूपकों में किया है-

माया नटी लकुटी कर लीन्हें।

x x x x x x x x x

माधौ जू यह मेरी इक गाइ।
अब आजु तें आपु आगे दई ले आइए चराइ॥
है अति हरहाइ हर कतहू बहुत अमारग जाति।
फिर बेद बन ऊख उखारत सब दिन अरु सब राति॥

इस माया नटी के काम हैं-भगवान् से विमुखता उत्पन्न करना, मन में अभिलाषाओं की तरंगें उठाकर मिथ्या से परिश्रम कराना और उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न करना। यही माया का भ्रम है और वही भ्रम बाद में हिंसा, मद, आशा, निद्रा, काम, तृष्णा आदि का कारण होता है। आशा का वर्णन सूर ने इस प्रकार से किया है-

यह आशा पापिनी गहै।
तजि सेवा बैकुंठनाथ की, नीच नरनि के संग रहै॥
जिनको मुख देखत दुख उपजत, तिनको राजा राम कहै।
फन-मद मूढ़नि, अभिमाननि-मिति लोभ लिए दुर्वचन सहै॥

किन्तु भक्त का अंतिम आश्रय जहां भगवान् का अनुग्रह है, वहां उसे अपनी ओर से भी प्रयत्नशील होना पड़ता है। भक्त का मुख्य प्रयत्न होता है- आत्म शुद्धि एवं आत्म प्रबोध-

रे मन छांड़ि विषय की रचिवौ।

x x x x x x x x x x x x x

रे मन अजहुं तो क्यों न सम्हरै ?

कवि अपने मन को समझाता है-

रे मन, आपु को पहिचानि।
सब जनम तै भ्रमत खोयो, अजहुं तो कुछ जानि॥
ज्यों मृगा कस्तूरी भूलै सुनी ताके पास।
भ्रम ही वह दोरि ढूंढ़े, जबहि पावे बास॥

x x x x x x x x x x x x x x x x x x x

जब भगत भगवंत चीन्है भरम मन ते जाई।

भगवान की कृपा से मन स्वच्छ होता है, पर भक्त को भी कुछ साधना करनी ही चाहिए। वह साधनाएं तीन हैं-

(क) नाम स्मरण, (ख) भगवत् कथागान, (ग) भगवत् स्वरूप चिन्तन। इसके अतिरिक्त गुरुभक्ति, दैन्य व सत्संग भी चाहिए और इसके साथ ही चाहिए आत्मसमर्पण।

दैन्य भाव निम्न पदों में देखिए-

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिनि तन दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमक हरामी॥
भरि भरि उदर विषय कौं धावै जैसे सूकर ग्रामी।
हरिजन छांड़ि हरि विमुखन की निसांदिन करत ग्रामी।
पापी कौन बड़ो है मो तें सब पतितन में नामी॥

कभी भक्त भगवान् की शरण में आता है-

अब हौं हरि सरनागति आयौ।

वह भगवान की कृपा के प्रति भी आस्था रखता है-

भक्ति बिना जो कृपा न करते, तो हौं आस न करतौ।
बहुत पतित उद्धार किए तुम हौं तिनका अनुसरतौ॥

इन्हीं भावनाओं के कारण भक्त ठीक हो जाता है और ढीठता के बल पर यह कहता है-

जो पै तुम ही विदर बिसारौ।
तौ कहौ कहां जाइ करुनामय कृपिन करम को मारो॥

यही नहीं, अंत में भक्त भगवान् से उसी कृपालु स्वभाव से उत्साहित होकर कहता है-

आजु हौं पक-पक करि टरिहौ।
कै तुमहीं कै हमहीं माधौ, अपुनि भरोसे लरिहौं॥
हौं तो पतित सात पीढ़िन को पतित ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नच्यो चाहत हौं तुम्हें विरद बिन करिहौं॥
कत अपनी परितीति नसावत मैं पायो हरि हीरा।
सूर पतित तब ही उठि है, प्रभु जब हंसि दंहौं बीरा॥

यही है सूर की विनय भावना के मूल में कार्य करने वाला मनोविज्ञान। सूर सभी स्थानों पर भगवान से भक्ति मांगते हैं। इसके लिए वे अपनी पतितावस्था और भगवान् के पतित-उद्धारन स्वभाव का आश्रय लेते हैं। सूर की भक्ति में पश्चात्ताप की भावना इतनी अधिक हैं कि व उनकी भक्ति को कहीं कहीं विचित्र रूप भी दे देती है। इस अवस्था का चित्रण उन्होंने रूपकों के सहारे किया है-

अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महा माह को नुपुर बाजत निन्द सबद रसाल।

भरम भरयौ मन भयौ पखावज चलत कुसंगति चाल ॥
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दे ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दियो भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूर करी नन्दलाल ॥

किन्तु भगवान् की भक्त वत्सलता का सूर को पूर्ण विश्वास है। वे कहते हैं-

अब कैं राखि लेउ भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम डरिया पारधि साधे बान ॥
ताके डर मैं भाज्यो चाहत ऊपर ढुक्यो मचान।
दुहुं भांति दुख भयौ आनि यह कौन उबारे प्रान ॥
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी कर छूटयौ सधान।
सूरदास सर लग्यौ साचनहिं जय जय कृपानिधान ॥

सूर की यह भक्ति-भावना जिस कृष्ण रूप के प्रति प्रकट हुई, यह निर्गुण से कम 'अविगत' नहीं, किन्तु सगुण रूप होने के कारण उसकी सुन्दरता भक्त के मन में समा जाती है, जिससे वह कुछ तृप्त अवश्य हो जाता है। वस्तुत: सूर का विषय विनय नहीं है। सगुण सौन्दर्य का अवलोकन, आस्वादन और ध्यान ही उनका लक्ष्य है। यह भाव तो तभी तक था, जब तक आचार्यजी के दर्शन नहीं हुए थे।

सूरदास के भावाकुल हृदय को इस स्थिति से संतोष मिल भी नहीं सकता था। उनके स्वभाव की सौन्दर्यप्रियता तथा हृदय की असाधारण संवेदनशीलता को किसी ऐसे आधार की आवश्यकता थी जिसके सहारे वे अपने हृदय के भार को हल्का कर सकते। श्रीकृष्ण के रूप में उन्हें यह अवलम्ब मिल गया। इसके पश्चात् हरि लीलागान ही उनका ध्येय बन गया।

"सूर ब्रजभाषा के वाल्मीकि हैं।"

सूर और भाषा- सूर काव्य के भाषापक्षीय अध्ययन से जो बात एकदम स्पष्ट हुई मिलती है वह है-भाषा की एक निष्ठा। सूर एकदम एक भाषानिष्ठ थे और यह भाषा थी-'ब्रज' जिसको स्वयं कवि ने, तत्कालीन मुसलमानों और जनसमाज में प्रचलित नाम 'भाषा या भासा' कहकर पुकारा है। 'सूरदास सोई हे पद भाषा करि गाई।' नि:संदेह सूर न तो कबीर की भांति घुमक्कड़ थे और न तुलसी की भांति दो भाषाओं के प्रयोगकर्ता, न उनमें केशव वाला, संस्कृतीय पांडित्य-मोह था और न विद्यापति वाला भाषा-विवाद। दूसरी ओर, 'सूर की जन्म भूमि' (साही), साधना क्षेत्र (गोघाट) तथा उपासना-क्षेत्र (पारसौली) तीनों ही केन्द्रीय ब्रज प्रदेश में थे। दूसरे, स्वामी वल्लभाचार्य और अष्टछापीय प्रभाव, श्रीनाथ मंदिर में कीर्तनकार के रूप में रोज नए-नए पदों का सृजन एवं समकालीन काव्य साहित्य क्षेत्र में ब्रजभाषा का दिन-प्रतिदिन बढ़ता हुआ प्रयोग भी सूर को ब्रजभाषोन्मुखी बनाने में सहायक रहे होंगे। तीसरे, सूर काव्य का प्रधान-वर्ण्य विषय-कृष्ण-कथा और लीला-गायन भी एकदम ब्रज से संबंधित था। नि:संदेह इन्हीं कारणों से सूर ने ब्रजभाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था।

सूरकाव्य की भाषा के 3 रूप- सूर मूलत: भक्ति कवि हैं और उनके काव्य में भक्ति का अजस्र स्रोत आद्योपांत प्रवाहित हुआ मिलता है। इस प्रवाह की 3 धाराएं एकदम स्पष्ट हैं जिनके

आधार पर इनकी भाषा के भी 3 स्पष्ट रूप देखे जा सकते हैं-1. भावात्मक भाषा, 2. विवरणात्मक भाषा तथा 3. कूटात्मक भाषा। भावात्मक भाषा को ही इसकी मूल भाषा कहना चाहिए। यह अधिकांशत: उन स्थलों पर है जो एकदम भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी है। कवि की भावुकता, भाषा की प्रवाहशीलता, स्वाभाविकता, संगीतमयता और काव्यात्मकता आदि इन्हीं अवसरों पर प्रस्फुटित हुई है। विवरणात्मक भाषा मुख्यत: कथा प्रधान और दार्शनिक स्थलों पर मिलती है। 'सूरसागर' में आयी शुक्र, परीक्षित, जय-विजय, ध्रुव जड़भरत, नारद, इन्द्र अहिल्या, अम्बरीष तथा च्यवन आदि की विविध कथाएं विनय-पद और दार्शनिक स्थापनाओं के परिवादक स्थलों पर मुख्यत: यही भाषा-रूप प्रयुक्त हुआ मिलता है। स्थूलता, नाम गणना, इतिवृत्तात्मकता आदि इस भाषा की सामान्य विशेषताएं हैं। कूटात्मक भाषा नि:संदेह कूट पदों विशेषत: 'साहित्य लहरी' में मिलती है। दुर्बोधता, क्लिष्टता, चमत्कार वर्ण्य प्रधानता, लाक्षणिकता आदि इस भाषा की अपनी विशेषताएं हैं।

भाषा सौष्ठव

शब्द भंडार- भाषा की इकाई है-शब्द। सूर का शब्द-भंडार विपुल भी है और विविध भी। प्रमाण ? सूर ने एक ओर तो संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी और सर्वाधिक ब्रज भाषा के शब्दों को ग्रहण किया है तो दूसरी ओर तत्सम, तद्भव और देशज सभी प्रकार के शब्दों को मुक्त मन से अपनाया है। "सूर के द्वारा प्रयुक्त हिन्दी शब्द कुछ तो समस्त हिन्दी-प्रदेश में प्रयुक्त हो चले हैं और कुछ ऐसे हैं जो केवल ब्रज में ही प्रयुक्त होते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो सूरदासजी के समय में प्रचलित थे किन्तु कालांतर में उनका प्रयोग ब्रज प्रांत में तथा ब्रज भाषा-काव्य की परंपरा में न चल सका। इतना अवश्य है कि इन शब्दों का प्रयोग अपने स्थल पर बड़ा ही उपयुक्त है।" संस्कृत के (तत्सम) शब्द प्राय: सिद्धांत-निरूपण, अप्रस्तुत योजना, विनय पदों और स्तुतियों में ही अधिक आए हैं। अन्य भाषाओं के शब्द यत्र-तत्र आए हैं। जहां तक प्रश्न है विदेशी शब्दों (अरबी, फारसी) का, "इन शब्दों का प्रयोग करते हुए उन्होंने इन पर ब्रजभाषा की कलई कर रखी है। यही कारण है कि शब्दों का स्वरूप हिन्दी के इतने अनुरूप हो गया है कि उनका विदेशीपन लक्षित ही नहीं होता। अर्थ की दृष्टि में इन शब्दों का सौन्दर्य अनुपम है।" इतना ही नहीं, कवि ने स्वयं भी अनेक शब्दों का निर्माण किया है। निम्न कुछ प्रमाण देखिए-

तत्सम शब्द- अम्बुज, निरालम्ब, वसुधा, अधोमुख, नृत्य, अजिर, अवज्ञा, खगपति इंदीवर, करम, गृह, दंपत्ति, पिनाक, पन्नग, रसना, राका, रजनीचर, संघात, हाटक आदि।

तद्भव शब्द- अंकवारि, अंचरा, अधियारो, अनत, अमराई, औसर, कान्हा, दही, निठुराई, नेम, पखी, सुरति, रोग, हियरौ, अटारी, कुरुखेत, तमचूर, बछल, बिज्जु आदि।

देशज शब्द- करतूती, करनी, मूंड, औचट, खरिक, खोही, मोसों, छाक, डहकायो, देर, धारी, नैसी, बाई, बागरि, लठबांसी आदि।

अनुकरणात्मक शब्द- अरबराइ, किलकित, खुनखुना, गहगहात, चचोरत, झकझोर, झकोरा, झंकार, झलमलात, झुनुक, डगमगाइ, भभकत, भहरात, हलबली आदि।

अरबी शब्द- गुमान, दगा, असल, आदमी, उमरान, कुरबानी, गुलाम, फौज, मसखरा, हकीम, आब कंगूरा, गुनहगार, गुलामी, दर, परवाना, खाजार, मुजरा, यारी, सही, सहर, सिकार, सेहरो, हरामी, हजुर आदि।

पंजाबी- महंगी, प्यारी, पा, बरिया।

पूर्वी- हमार, गोड, आपने।

कवि निर्मित- ज्योतिक, मसानी, उतजोग, उसाधा, बिचवाना, पुस्वली, निस्वै, भिनुसार, विसकर्मा, अनमारगी, तिपीसी आदि।

"कवि के शब्द- प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता है-उसकी व्यापक संग्राहक शक्ति। पात्र और परिस्थिति के विचार से जिन शब्दों को उसने उपयुक्त समझा, उसका प्रयोग करने में उसे इस बात का संकोच नहीं हुआ कि वे किस श्रेणी अथवा किस उद्‌गम के हैं।_ विभिन्न उद्‌गमों के शब्दों का प्रयोग नवीन शब्दों की रचना तथा शब्दार्थ की व्यापकता में वृद्धि करके उसने भाषा की संपत्ति में जो योगदान दिया है, कदाचित उसके समक्ष उसका स्वतंत्र कवि के विशेषाधिकार से अधिक चिन्त्य नहीं रह जाता।" व्यापक धरातल, अर्थ-अधीनता, भावानुकूलता और अभिव्यक्ति सबलता प्रवाहमयता, समन्वयवादिता तथा सब मिलकर अद्‌भुत प्रभावोत्पादकता आदि सूर की इस भाषा में प्राप्त अन्य विशिष्ट गुण हैं।

मुहावरे लोकोक्तियां- अर्थ-व्यंजना को बढ़ाने, रोचकता और प्रभाव को उत्पन्न करने, कथन में चमत्कार और वाग्बैदग्ध्ता लाने एवं समाज-संचित अनुभव तथा मनोवैज्ञानिकता आदि का समावेश करने में मुहावरे लोकोक्ति सर्वाधिक सशक्त साधन होते हैं। सूर द्वारा प्रयुक्त मुहावरे अपनी बहुलता में नहीं केन्द्रीकरण में महत्वपूर्ण हैं। कवि ने अधिकांशत: ब्रज-प्रदेश में प्रचलित मुहावरों का प्रयोग किया है और वह भी सबसे अधिक 'भ्रमरगीत' प्रसंग में। लगभग 90 प्रतिशत मुहावरे यहीं पर प्रयुक्त हुए मिलते हैं। डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया के मतानुसार तो केवल आंख से संबंधित ही 150-200 मुहावरे इस प्रसंग में प्रयुक्त हुए मिलते हैं।

सूर ने मुहावरों का प्रयोग मुख्यत: दो रूपों में किया है पीड़ित हृदय (गोपियों) के सहजोद्धार रूप में तथा उक्ति-वैचित्र्य के साधन रूप में। प्रथम प्रकार के मुहावरों में गोपियों का आक्रोश, खीझ, झुंझलाहट, डाह, प्रतिशोध, व्यंग्य, उपालंभ, पीड़ा, विवशता, व्याकुलता आदि मन:स्थितियां एकदम मर्म-स्पर्शी स्वाभाविकता के साथ मुखर हुई हैं तथा "सिर पर सौति हमारे कुब्जा, चाम के दाम चलावै,' 'काटे ऊपर लोन लगावत,' लिखि लिखि पठवत चीठी, 'जोइ जोइ आवत वा मथुरा तै' 'एक डार के तोरे'। हियरो सुलगावत, पालागौ, धूम के हाथी फिरति धतूरा खाए पढवे पाठ, हाथ बिकानी, कन मिलयो, बोहित के काग, भौंहे तानत, लेन न देन तथा प्रेम की फांसी आदि भी इसी वर्ग के कुछ अन्य मुहावरे हैं।

उक्ति वैचित्र्य रूप से मुहावरों का सर्वाधिक प्रयोग उपहार-विनोद-विषयक पदों में हुआ है अथवा मुरली-प्रसंग में। खारे कूप को वारि, पवन को भुस भयौ, खोटो खायो, पोच कियो अंगुरी गहत गह्यो पहुंचो, गूंगे गुर की दसा, दैंनाब चढ़ावत तथा गांठि को लागत आदि इसी वर्ग के कुछ प्रमाण हैं।

लोकोक्तियां साधारणत: किसी सारगर्भित विचार, पूर्ण वाक्य अथवा परंपरागत कथा या सूक्ति के रूप में कथन-पुष्टि हेतु प्रयुक्त की जाती हैं। सूर ने ब्रज प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग तो किया ही है, नाना लोकोक्तियों का सृजन भी किया है जो आज भी 'सूक्ति-रूप' में मान्य हैं। साधारणत: ये तीन प्रकार की हैं-

1. **प्रचलित लोकोक्तियां-** एक पथ द्वै काज, दूध का दूध पानी का पानी, धान की गांव पयार ते जाने, एक म्यान दो खांडे, दाई आगे पेट दुरावति, बीस विरिया चोर, अपनो बोयो आप लोनिए आदि।

2. **परिष्कृत लोकोक्तियां-** स्वान पूंछ कोटिक लागै, सूधी कहुं न करि, अपनो दूध छाड़ि को फीवे खाने कूप को पानी, जोबन रूप दिवस दस ही को, कंचन खोइ कांच लै आए आदि।

3. **स्व-निर्मित लोकोक्तियां-** सूरी के पातन के बदले को मुकताहल दैहे, लौंडी की डौंडी, जगबाजी, प्रेमकथा सोई पै जानै, बीतो होइ, तुलसी को कोटि, नीम प्रगट भयो, नहीं उपजत धनिया,

धान, कुम्हाड़ै, दिगम्बरपुर तै रजक कहा ब्यौ साइ, सुमेरू तृण और दुरावत, परेखो काको कीजै पाप कियो जिन दूजो आदि।

एकदम सच तो यह है कि, "सूर के मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग भाषा की रूढ़ता के सहज माध्यम मात्र न होकर सशक्त अभिव्यंजना के प्रसाधन हैं।-इनके द्वारा जहां सूर की भाषा-समृद्धि का परिचय मिलता है, वहीं उनके सामाजिक अनुभव और सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिज्ञान होता है, इसलिए सूर की लोकोक्तियां और मुहावरे साहित्य में प्राप्त मुहावरों और लोकोक्तियों के सामान्य प्रयोग से सर्वथा भिन्न हैं।"

शब्द-शक्ति- काव्य में शब्द के 3 अर्थ होते हैं-वाच्य, लक्ष्य तथा व्यंग्यार्थ। इन्हीं के आधार पर शब्द की तीन शक्तियां मानी जाती हैं अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना। सूर ने यद्यपि प्रयोग तो तीनों का किया है किन्तु प्रधानता अंतिम दो की है-। अमिधा का प्रयोग प्राय: विवरणात्मक पदों, स्फुट आख्यानों तथा स्तोत्रादि में ही किया गया है। सूर का सर्वाधिक कौशल मुखरित हुआ है-व्यंजना-प्रयोग में जिसका सर्वोत्तम स्थल है भ्रमरगीत। इसके साथ ही साथ बाल-लीला, मुरली, राधा-प्रेम, मानादि लीलाएं तथा कूट पदादि इसी प्रकार के कुछ प्रसंग हैं। एक उदाहरण देखिए-

"प्रकृति जोई जाके अंग परी।
स्वान-पूंछ कोटिक जा लागै सूधि न काहु करी।"

काव्य-गुण- काव्य-गुण 3 हैं, माधुर्य, ओज और प्रसाद। सूर काव्य में तीनों का ही समुचित प्रयोग मिलता है। माधुर्य का प्रयोग मुख्यत: रूप-वर्णन, श्रृंगारिक प्रसंगों, मुरली आदि में, ओज का वीरत्व सूचक प्रसंगों (यथा कालिया मर्दन, पूतना वध, गोवर्धन-धारणादि) तथा प्रसाद गुण विनय पदों, लीला तथा दार्शनिक स्थलों पर किया गया है।

अलंकार- सूर ने सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है, वह भी बहुतायत से। सायात-रहित होना, भाव-शबल्य में सहायक-रूप तथा स्वाभाविकता आदि इनके अलंकार-प्रयोग की अपनी विशेषताएं हैं। कहीं-कहीं विशेषत: कूट पदों में चमत्कार-उद्रेक भी मिलता है। प्रमुखता है अर्थालंकारों की जिनमें सर्वाधिक मात्रा में तो साम्यमूलक अलंकार हैं। "उनके प्रियतम अलंकार उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा हैं जिनके सुन्दर और अतिशय कलात्मक प्रयोग में संभवत: कोई हिन्दी कवि इनके समकक्ष नहीं ठहर सकता।...सांगरूपक पर तो...सूरदास का असाधारण अधिकार है।" इसी भांति अनुप्रास प्रयोग से कवि ने यदि ध्वन्यात्मक सौन्दर्य और वातावरण का निर्माण किया है तो वीप्सा-प्रयोग से सच्ची भक्ति-भावना और वक्रोक्ति से वाग्वैग्ध्य और व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति का परिचय दिया है। एकदम सच तो यह है कि, सूर काव्य में...अलंकारों का अनंत वैभव विकीर्ण है। स्वाभावोक्ति में तो उनसे आगे विश्व का संभवत: कोई ही कवि बढ़ सका हो।...अलंकार उनके काव्य में सहज समाविष्ट होकर उसकी चारुता को अतिशय प्रदान कर रहे हैं।" समग्रत: श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कह सकते हैं कि "सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है।"

कुछ दोष- कहीं-कहीं, प्राय: भावावेश या कविसुलभ उपेक्षा भाव के कारण सूर की भाषा में कुछ काव्य-दोष भी आए मिलते हैं। कई स्थानों पर कवि तुकप्रियता या मैत्री मोहवश लिंग, कारक-चिन्ह या क्रिया-रूपों में नियमोल्लंघन कर गया है जिससे भाषा में च्युत संस्कृति दोष आ गया है यथा "विस्मय मिटि" में पुल्लिग विस्मय के साथ 'मिटि' स्त्रीलिंग क्रिया का प्रयोग, सूल दिखावत, परसावत आदि का स्त्रीलिंग में प्रयोग आदि। कहीं-कहीं विभक्ति का असंगत प्रयोग है। (यथा, 'अखियानि स्याम अपनी करी') तो कहीं ग्राम्यत्व का समावेश (यथा बांभन, गेरत, डहरि, भैनि, बूतैं आदि के प्रयोग)। दृष्टिकूट पदों में क्लिष्टत्व और अप्रतीत्व दोष भी हैं। पुनरुक्ति इनका प्रधान दोष है। सूरसागर में न केवल प्रसंगों की अनेक आवृत्तियां हैं वरन उक्तियों, उपमाओं और पंक्तियों

की भी पुनरावृत्तियां होती गई हैं।" इसी भांति कहीं कहीं अधिक पदत्व (यथा 'हृदय हरषित प्रेम गद्‌गद् मुख न आवत बैन') यथा न्यूनपदत्व (यथा मुख छवि कहौं कहां लगि गाई' पद) एवं अश्लीलत्व (यथा सुरति-बर्जन-प्रसंगों में) काम चेष्टाओं के अंतर्गत आदि भी देखे जा सकते हैं।

उपसंहार- सूर ब्रजभाषा के सर्वाधिक सशक्त प्रयोक्ता और निर्माता कवि थे। उनका महत्व तब और भी बढ़ जाता है जबकि हम देखते हैं कि "सूरदासजी से पूर्व ब्रजभाषा काव्य की कोई प्रतिष्ठा-प्राप्त परंपरा न थी।" ब्रजभाषा की सामान्य बोली को काव्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित करना, उसको साहित्य रूप प्रदान करना, व्यापक बनाना, विश्वरूप भाषा पर आधिपत्य रखना आदि सूर की ब्रजभाषा को अद्‌भुत देन है। अतः श्री नाभाजी से सहमत होते हुए कह सकते हैं कि-

"उक्ति चोज अनुप्रास बरन, अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निरवाह अर्थ अद्‌भुत तक धारी।"
विमल बुद्धि गुन और की जो वह गुन स्रवनन करै।
सूर कवित्त सुनि कौन कवि जो नहिं किर चालन करै।"

सूर के तीन भ्रमरगीत

भ्रमरगीत का उद्‌गम श्रीमदभागवत् है। हिन्दी में सर्वप्रथम भ्रमरगीत के प्रसंग का महत्व और विस्तार सूरदास ने किया। इसलिए हिन्दी में भ्रमरगीत परम्परा का उद्‌भाव सूरदास के भ्रमरगीत से ही मानना पड़ेगा। सूर के भ्रमरगीत में भागवत की अपेक्षा अनेक विशेषताएं और मौलिकताएं हैं। सूरदास ने तीन भ्रमरगीतों की रचना की -

प्रथम भ्रमरगीत - प्रथम भ्रमरगीत भागवत् के भ्रमर गीत का अनुवाद मात्र है। इसकी रचना दोहा, चौपाई तथा सार छंद में है। इसमें न तो सूर की नई मान्यताएं हैं और न ज्ञान-वैराग्य की चर्चा ही।

दूसरा भ्रमरगीत - दूसरा भ्रमरगीत केवल एक ही पद में लिखा गया है। इसमें उद्धव का गोपियों के प्रति उपदेश, गोपियों के उपालम्भ, उद्धव का मथुरा-गमन एवं श्रीकृष्ण के समक्ष गोपियों के विरह का वर्णन तथा उसे सुनकर श्रीकृष्ण का मूर्छित हो जाना आदि सबका एक ही छन्द में वर्णन किया गया है। इसमें न तो भ्रमर का प्रवेश होता है और न गोपियां उपालम्भ ही देती हैं।

तीसरा भ्रमरगीत - सूर का तीसरा भ्रमरगीत सूरसागर के 4078 वें पद से लेकर 4710वें पद तक चलता है। सूर ने अपने भ्रमर गीत में भागवतकार की कल्पना को पूर्ण काव्य का रूप प्रदान किया है। उसमें कथा एवं भाव का क्रमबद्ध संयोजन है। तीसरे भ्रमरगीत में सूर भ्रमर के माध्यम से कृष्ण और उद्धव को मन भरकर उपालम्भ लिखते हैं। अन्त में उद्धव के ज्ञान योग और निर्गुणोपासना की पराजय होती है। सूर ने भागवतकार के भ्रमर गीत का उद्देश्य परंपरानुसार ग्रहण कर अपनी अद्‌भुत प्रतिभा से पूर्णता को पहुंचा दिया है। सूर के युग में साकार और निराकार की उपासना का भीषण द्वंद चल रहा था। जिसका अंत करके सूर ने साकारोपासना का प्रतिपादन किया। सूर ने भ्रमर में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

तुलसी का समस्त काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।

गोस्वामी तुलसीदास की समन्वयवादी दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- गोस्वामी जी की भक्ति- पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है- उनकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका समन्वय है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से, धर्म तो उनका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतने ही का जितना ध्यान के लिए चित्त को एकाग्र करने के लिए।"

तुलसी की समन्वयवादी विशिष्टताओं को हम निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं -

1. **भाव- क्षेत्र में समन्वय** - तुलसी ने अपने समय के विभिन्न मत- वादों और भावों को समन्यवादी स्वरूप प्रदान किया। वे भावनाएँ तुलसी साहित्य में आकर एकरूप और समान हो गईं।

2. **राम काव्य धारा और कृष्ण काव्य धारा में समन्वय-** तुलसी ने अपनी प्रतिभा से रामकाव्य धारा तथा कृष्ण काव्यधारा में समन्वय स्थापित किया है। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि तुलसी स्वयं राम काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि थे, परन्तु फिर भी कृष्ण जी के चरित्र को लेकर 'कृष्ण गीतावली' की रचना की।

3. **अलंकार योजना में समन्वय-** तुलसी ने अलंकार योजना में समन्वय स्थापित करने के लिए अपने समय में प्रचलित अधिकांश अलंकारों का प्रयोग किया है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने अलंकारों को साधन रूप में अपनाया है, साध्यरूप में नहीं।

4. **भावपक्ष और कलापक्ष-** भावपक्ष और कलापक्ष का समन्वय ही उनकी सफलता का मूलमन्त्र है। तुलसी के काव्य में भावपक्ष जितना सबल है कला पक्ष भी उतना ही सशक्त है वे दोनों का समन्वय करके चलते हैं।

5. **लोक भाषा और संस्कृत का समन्वय-** तुलसी ने अपने समय में प्रचलित ब्रज और अवधी लोकभाषाओं में अपने काव्य की रचना की लेकिन संस्कृत पदावली का व्यवहार कर समन्वय करने का प्रयास किया।

6. **निर्गुण और सगुण का समन्वय-** तुलसी के युग में निर्गुण और सगुण का विवाद जोरों पर था। उन्होंने इस विवाद को यह कह मिटाने का प्रयास किया -

'सगुनहिं अगुनहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥'

उनकी मान्यता है कि राम सभी रूपों में प्रकट होते हैं। वे ही निर्गुण और सगुण, निराकार और सत्कार रूपों में प्रकट हो जाते हैं।

7. **ब्राह्मण और शूद्र-** तुलसीदास अभूतपूर्व समन्वयकारी थे। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए वर्ण भेदों को स्वीकार किया लेकिन भक्ति क्षेत्र में सभी को समान स्वीकार किया। कैसा जबरदस्त समन्वय है वर्ण साम्य का कि वशिष्ठ और भरत भी निषादराज को अपने गले में लगा लेते हैं।

"भेटते भरत ताहि अति प्रीती। लोग सराहि प्रेम के रीती॥"

8. **कर्म, भक्ति और ज्ञान-** इन तीनों का समन्वय ही जीवन में पूर्णता लाता है। तुलसी ने इसी कारण इन तीनों के समन्वय पर बल दिया है।

"प्रीति राम सौं नीति पथ, चलिए राग रिस जीति।
तुलसी सतन के मते, इहैं भगति की रीति॥"

9. **वैष्णव और शैव शक्ति-** तुलसी ने इन सम्प्रदायों के पारस्परिक संघर्ष को देखा और यही कारण है कि इनका समन्वय करने का प्रयास किया है। वे कहते हैं -

"संकार प्रिय मम द्रोही, मिव द्रोही मम दास।
तो नर करहि कसप भर, घोर नरक महु बास।"

10. **भाग्य और पुरुषार्थ-** तुलसी के युग में कोई भाग्यवाद को प्रधानता देता था कोई पुरुषार्थ को। दोनों को स्वीकार करते हुए उनके समन्वय का प्रयास करते हुए वे लिखते हैं -

"शुद्ध अरु अशुभ करम अनुहारी। ईनु देइ फल हृदय विचारी।
करइ जो करम पाइ फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई॥"

11. **राजा और प्रजा का समन्वय-** तुलसीदास ने रामचरित मानस में राजा और प्रजा के संबंधों का समन्वय करने का प्रयास किया है। उस समय राजभक्त प्रजा धर्म पालन में लगी थी और राम भी अपनी प्रजा को गौरव प्रदान करते थे-

सुनहु सकल पुरजन मत बानी। कहौ न कछु ममता डर आनी।
नहिं अनीति नहिं छु प्रभुताई। सुनहु करहु नो तुम्हें सुहाई।
जो अनीति कछु भारवौ भाई। तौ मौहे बरजहु भय बिरसाई।"

12. **व्यक्ति और परिवार का समन्वय-** तुलसीदास ने पारिवारिक कलहों को दूर करने के लिए व्यक्ति और परिवार का समन्वय किया है। उन्होंने दशरथ, राम, भरत, कौशल्या, सुमित्रा आदि के माध्यम से पारिवारिक जीवन का महत्व आदर्श प्रस्तुत किया है।

13. **नर और नारायण का समन्वय-** तुलसी ने अपने आराध्य को नर और नारायण अर्थात् मानव और ब्रह्म के रूप में चित्रित किया है। इस तरह तुलसी ने नर और नारायण का सम्बन्ध स्थापित किया है। उदाहरण -

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु करम करै विधि नाना॥

14. **काव्य रूपों में समन्वय-** तुलसी ने अपने काव्य में रस, ध्वनि, अलंकार रीति और वक्रोक्ति का समन्वय सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक दोनों ही रूपों में किया है।

निष्कर्ष- अन्ततः हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि तुलसी अपने समय के सबसे बड़े समन्वयवादी कवि रहे हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों, में "उनका (तुलसी) सारा काव्य, गृहस्थ व वैराग्य का समन्वय, कला और तत्व ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय है। रामचरितमानस शुरू से आखिरी तक समन्वय का काव्य है।"

तुलसी के काव्य सौन्दर्य (भाव पक्ष, कलापक्ष)

भक्तिकाल की सगुण धारा की रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास को हिन्दी कविता का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। तुलसी का काव्य भाव- पक्ष और कला- पक्ष दोनों ही दृष्टियों से उत्तम है।

(I) भाव- पक्ष

तुलसी के काव्य की भाव- पक्ष की विशेषताएं निम्न प्रकार हैं -

1. **वस्तु विन्यास-** तुलसीकृत रामचरित् मानस का कथानक 'आध्यात्म रामायण तथा वाल्मीकि रामायण' से लिया माना जाता है। जहां भी तुलसी ने इनमें परिवर्तन आवश्यक समझा है, वहां कलात्मकता का पूरा ध्यान रखा है। कथावस्तु के विकास और वर्णन विस्तार में भी तुलसी की असाधारण प्रतिभा और कला के दर्शन होते हैं।

2. **भक्ति भावना-** तुलसी की भक्ति भावना उनके काव्य के भाव- पक्ष का प्राण है। तुलसी ने दास्यभाव की भक्ति को स्वीकारा है। वे कहते हैं -

"सेवक- सेव्य भाव बिनु,
भव न तरिय उर गारि।"

तुलसी की भक्ति का आदर्श चातक था। वे उसी प्रकार राम के भरोसे हैं जैसे 'चातक'घन के भरोसे है-

"एक भरोसो, एक बल, एक आस विश्वास,
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।"

चातक का अनन्य प्रेम निष्ठा, पीड़ा, मान, प्यास, उत्कंठा, ध्यान, लगन, उनकी भक्ति का आदर्श था।

3. **रस- व्यंजना-** तुलसीदास के काव्य में सभी रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है। शान्त रस तो तुलसी काव्य में सर्वत्र ओत- प्रोत है। विनय- पत्रिका का एक उदाहरण देखिये-

जन जुत विमल सिलनी झलकत नभ, प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहु जग रचना विचित्र, विलासत, विराट अंग- अंग।
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि- झरि, भरि- भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानो राम भगति के पीछे।

(II) कलापक्ष

तुलसी काव्य की कलागत विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. **अलंकार-** तुलसी के काव्य में अलंकार प्रियता देखी जा सकती है हालांकि वे अलंकारवादी नहीं हैं। तुलसी को अलंकार प्रदर्शन पसन्द नहीं है, बल्कि अलंकार उनके काव्य में सहज रूप से आये हैं। उपमा एवं व्यतिरेक का एक उदाहरण देखिये -

"पीपर पात सरिस मन डोला।" (उपमा)

"सन्त हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पै कहै जाना।
निज परिपात द्रवै नवनीता, परिदुख सुसंत पुनीता।" (व्यतिरेक)

2. **चित्रात्मकता -** तुलसी के शब्द चित्र अनुपम हैं। वे पाठक के अन्त पटल पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। सीता की असहाय स्थिति का एक चित्र देखिये-

"रघुकुल तिलक वियोग तिहारे।
मैं देखो जब नाई जानकी,
मनहुं विरह मरति मन मारे।"

3. **शब्द और अर्थ का सामंजस्य-** तुलसी के काव्य में शब्दार्थ का सुन्दर समन्वय है। लक्षणा शब्द शक्ति का एक सुन्दर प्रयोग देखिये-

"सत्य सराहि कहेउ बरू देना,
जानेहु लेइहि मांगि चबैना।"

4. **भाषा-** तुलसी ने अवधी और ब्रजभाषा में अपने काव्य की रचना की है। रामलला, नेहछु, बरबै रामायण, जानकी मंगल, पार्वती मंगल और रामचरित् मानस आदि रचनायें अवधी में लिखी गई हैं जबकि कृष्ण गीतावली, कवितावली और विनय पत्रिका आदि ब्रजभाषा में लिखी गई रचनायें हैं जबकि तुलसी ने भाषा के साधु प्रयोग का पूर्ण ध्यान रखा है। अवधी और ब्रज दोनों के व्याकरण के नियमों का पूर्ण ध्यान रखा है।

5. **छन्द योजना-** तुलसी का छन्दों पर अवाध अधिकार था। इन्होंने प्रधान रूप में दोहा-चौपाई छन्दों का प्रयोग किया है। वैसे तुलसी साहित्य में कवित्त, सवैया, छप्पय आदि अनेक प्रकार के छन्द मिलते हैं। विनय- पत्रिका में राग- रागनियों पर आधारित पद हैं।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि तुलसी काव्य में कला- पक्ष और भाव- पक्ष अपने अत्यन्त प्रौढ़ रूप में हैं जो उन्हें एक अप्रतिम, प्रतिभाशाली, क्रान्तिदर्शी कवि सिद्ध करते हैं।

तुलसी के काव्य की महत्ता

रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म जनश्रुति के अनुसार संवत् 1989 माना गया है। सर जार्ज ग्रियर्सन व आधुनिक शोधों के आधार पर भी यह स्पष्ट होता है। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। इनका विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। जनश्रुति के अनुसार तुलसी अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता- पिता द्वारा त्याग दिये गये थे। पांच वर्ष तक मुनिया नाम की दासी ने इनका लालन- पालन किया।

दासी की मृत्यु के पश्चात् उसी अवस्था में इनके दीक्षा गुरु बाबा नरहरिदास की इन पर दया- दृष्टि हुई। इन्हीं से तुलसी ने शूकर क्षेत्र या सोरों में रामकथा सुनी थी। शेष सनातन के पास काशी में 16- 17 वर्ष रहकर वेद, पुराण, उपनिषद् रामायण तथा भागवत् आदि का गम्भीर अध्ययन किया और अन्त में काशी में रहने लगे। काशी में तुलसी का मान बढ़ता गया। राजा टोडरमल, रहीम और मानसिंह तुलसी के अन्यत्र मित्र थे।

तुलसी की कृतित्व (रचनाएं)

पं. रामगुलाम द्विवेदी व आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थ में तुलसी के छोटे- बड़े बारह ग्रन्थों को ही प्रमाणिकता दी है। नागरी- प्रचरिणी सभा ने इन बारह ग्रन्थों को ही प्रामाणिक मानकर प्रकाशित किया है- दोहावली, कवित्त, रामायण, गीतावली, रामचरित् मानस, रामाज्ञा, प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामलला नहछु, पार्वती मंगल, जानकी वरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली। इन ग्रन्थों में प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से रामचरित् मानस और मुक्तक काव्य की दृष्टि से विनय पत्रिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

"तुलसीदास लोक मंगल के नायक कवि थे।" अथवा "तुलसी सच्चे अर्थों में लोकनायक थे।"

डॉ. हजारीप्रसाद ने तुलसीदास के विषय में विवेचन करते हुए एक स्थान पर लिखा है - "लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की

परम्परा, विरोधी संस्कृतियां, साधनायें, जातियां, आचार निष्ठा और विचार पद्धतियां प्रचलित थीं। विद्यापति के गीतों में समन्वय की चेष्टा है और तुलसी भी समन्वयकारी थे।"

तुलसी भक्त, कवि पण्डित, सुधारक, लोकनायक, समन्वयवादी और भविष्य सृष्टा- दृष्टा थे। उन्होंने अपने युग को परखा था। उस समय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक अभावों को तुलसी ने भली- भांति समझा था और उसी के अनुरूप उन अभावों को दूर करने के लिये उन्होंने उपाय भी सोचे थे। तुलसी ने यह माना कि युग के परिवर्तित होते ही युग धर्म बदल जाता है तो युग की मांग के अनुसार ही सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक गठन होना चाहिये। इसके लिये आवश्यकता इस बात की थी कि प्राचीन में जो श्रेयस्कर और सुन्दर है, उसका समन्वय हो, इसलिये तुलसी एक श्रेष्ठ समन्वयकारी कवि थे। राम की शक्ति और सौन्दर्य से समन्वित रूप की स्थापना करके उन्होंने अत्याचारी शासकों से त्रसित हिन्दू जन मानस को ढांढस बंधाया। तुलसी के राम सर्वशक्तिमान, दीनबंधु और दुष्ट दमनकारी थे। उनके इस रूप को ग्रहण करके ही जनता में अत्याचार का विरोध करने की शक्ति उत्पन्न हुई, चाहे ये अत्याचार धार्मिक हो या सामाजिक अथवा राजनैतिक, भारतीय जनता को तुलसी के आश्वासन पर पूर्ण विश्वास हो गया कि प्रभु शीघ्र ही भारत में अवतरित होंगे और मानव रूप में हमारे सम्मुख आकर हमारे कष्टों को दूर करेंगे -

'जब- जब होई धरम की हानी।
बाढ़हि असर अधम अभिमानी॥
तब- तब प्रभु धरि विविध सरीरा॥
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥"

तुलसी ने इन शब्दों द्वारा जनता के सम्मुख एक आदर्श स्थापित किया। मग्न हृदय से जनता को आश्वासन दिया। उन्होंने शोषण का, चाहे वह किसी प्रकार का हो सदैव विरोध किया।

तुलसी जगजीवन अहित, कबंहू कोउ हित जानि।
शोषक भानु कृपानु महि जलद एक धन दानि॥

तुलसी का आदर्श केवल धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित न था, वह राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी आरूढ़ था। तुलसी ने राम- राज्य की कल्पना की थी, उसमें शासक को भी अत्याचार करने का अधिक अवसर न था। तुलसी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है -

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

परन्तु उन्होंने दूसरी ओर ऐसे समाज की परिकल्पना की है जहां पर सुख शान्ति सर्वत्र है-

"दण्ड जवनि कर भेद, जहं नर्तक नृत्य समाज।
जीतहुं मनहि सुनिअस, रामचन्द्रन के राज॥"

तुलसी ने ऐसे रामराज्य की कल्पना की है, जिसमें आदर्श राज्य की कल्पना की गई है। राम- राज्य साम्राज्यवादी (एकतन्त्रीय) शासक न था वरन् वह प्रजातन्त्रीय शासक ही था। तुलसी के अनुसार राजा का धर्म प्रजा- पालन तथा प्रजा की सुख- समृद्धि का ध्यान रखना था। तुलसी ने जिस राम- राज्य की कल्पना की थी वह यह है -

(1) **"दैहिक दैविक भौतिक तापा।**
राम राज काहूं नहि व्यापा॥

(2) **"नहि दरिद्र कोउ दुःखी न दीना।**
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।"

इस प्रकार तुलसी ने जिस राम- राज्य की कल्पना की है, वह अभावों से रहित है। उसमें न तो कोई निर्धन है, न दुःखी और न अज्ञानी है, सब प्रेम- भाव से रहते हैं, कहीं कोई संघर्ष नहीं।

"सब नर करहि परस्पर प्रीति।
चलहि स्वधर्म निरत श्रूती नीति।"

यह वह आदर्श है जिसके कारण तुलसी का सर्वाधिक प्रचार हुआ। तुलसी ऐसे कवि थे जिन्हें अशिक्षित और निम्नकोटि के व्यक्तियों से लेकर परम साधकों और काशी के प्रकाण्ड विद्वानों तक का सहवास प्राप्त हुआ था। उनका ब्रजभाषा, अवधी भाषा तथा संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। लोक और शास्त्र के इस सम्मिलित और यथार्थ ज्ञान ने ही उनके काव्य को इतना व्यापक और लोकप्रिय बनाया है। तुलसी सच्चे अर्थों में क्रान्तिकारी थे, उनके युग में जो अन्य कवि थे, वह केवल नर काव्यों का सृजन कर रहे थे। आश्रयदाताओं की प्रशंसा में ही वह अपनी सम्पूर्ण काव्य शक्ति का उपयोग कर रहे थे। तुलसीदासजी इस प्रकार की झूठी प्रशंसाओं के विरोधी थे। उनकी विचारधारा थी -

"कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना।
सिर धुनि गिरा। लगि पछिताना॥"

तुलसीदासजी व्यावहारिक आदर्शवादी थे। उनका आदर्शवाद उन्हें जनकल्याण की भावना से प्रेरित करता है। इसलिए उनका साहित्य जनता के हित में लिखा गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती चली गयी।

तुलसी की लोकप्रियता का दूसरा प्रबल कारण उनका उदारवादी दृष्टिकोण है। उस युग के समाज के अन्तर्गत जो ऊंच- नीच की भावना कार्य कर रही थी, तुलसी ने उनका विरोध किया। ब्राह्मणों ने उपासना, मुक्ति, वेदाध्ययन, भक्ति आदि का द्वार अछूतों और विधर्मियों के लिए बन्द कर रखा था। तुलसी ने उन सबके लिए द्वार खोल दिये। तुलसी की भक्ति वर्ग, जाति, धर्म आदि के कारण किसी का बहिष्कार नहीं करती। जो अति अधर्मी समझे जाते हैं- उन व्याभीर, जमन, किरात, खस, स्वपच आदि के लिए भी उनका कहना है कि वे राम नाम लेकर मुक्त हो सकते हैं, यह उनके उदारवादी दृष्टिकोण का स्वरूप है।

तुलसीदासजी आदर्शवादी साहित्यकार हैं, परन्तु उनका आदर्श जनहित की कामना से प्रभावित था। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, "उत्तरकाण्ड में एक ओर राम राज्य की कल्पना, दूसरी ओर कलयुग की यथार्थता के द्वारा तुलसीदास ने अपने आदर्श के साथ वास्तविक परिस्थिति का चित्रण कर दिया है। किसी दूसरे कवि के चित्रों में इतनी तीव्र विषमता नहीं है।

तुलसी की दृष्टि बड़ी तीव्र थी, उन्हें लोकहित का बड़ा ध्यान था। उनका मत था, "जब तक लोक- मर्यादा का पालन नहीं होगा, तब तक जन- कल्याण असम्भव है।" इसी कारण तुलसी के काव्य में एक पंक्ति भी ऐसी नहीं मिलेगी, जिससे मर्यादा का उल्लंघन हो। तुलसी व्यक्तिगत एवं समष्टिगत कल्याण की भावना से ओत- प्रोत हैं।

तुलसी की लोकप्रियता के विषय में डॉ. प्रकाशचन्द गुप्त का कथन है- "तुलसी की दृष्टि व्यापक और सार्वभौमिक थी। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण स्वस्थ और जनवादी था। दृष्टि का यह व्यापक प्रसार हमें विश्व के दो चार ही लेखकों या कवियों से मिलता है। जीवन के रंग- बिरंगे, विचित्र रूप को उन्होंने उनकी समग्र व्यापकता में देखा। हर्ष, शोक, उल्लास, विषाद, जय- पराजय के क्षण उनके काव्य में हम चिरकाल तक सुरक्षित पायेंगे। मनुष्य का, प्रकृति का, समाज का व्यापक दर्शन साहित्य में पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुआ है।

'तुलसी की भक्ति पद्धति'

(1) तुलसी की भक्ति का स्वरूप - भक्ति के प्राचीन स्वरूप को लेकर चलने वाले भक्त वेदशास्त्रज्ञ- तत्वदर्शी आचार्यों द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाओं के अनुयायी थे। उनकी भक्ति का मूलाधार भगवान का लोक- धर्म- रक्षक और लोकरंजक स्वरूप था। भक्ति का यह स्वरूप नैराश्यमय नहीं वरन् इसमें शक्ति का बीज निहित है, जो किसी भी जाति को उठाकर खड़ा कर सकता है। तुलसी ने इसी भक्ति के सुधा रस से सींच कर मुरझाते हुए हिन्दू जीवन को फिर से हरा किया। इतना ही नहीं, तुलसी ने भगवान के लोक व्यापार मंगलमय रूप को दिखाकर आशा और शक्ति का अपूर्व संचार किया।

(2) तुलसी की भक्ति का प्रभाव- भक्ति की इसी धारा ने हिन्दू जनता को शक्ति दी और इसी भक्ति के सच्चे उद्गारों ने हमारी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान की। लोक मानस के समक्ष राम स्वरूप को उपस्थित कर तुलसी ने उनकी अखिल जीवन- वृत्ति व्यापिनी कला को अभिव्यक्त् करने वाली वाणी का स्फुरण किया और यह बतला दिया कि भगवान दूर नहीं। वह तुम्हारे जीवन में मिले हुए हैं। इस प्रकार तुलसी ने अपने 'मानस' द्वारा राम के चरित्र की जो शील- शक्ति सौन्दर्यमयी धारा प्रवाहित की उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति में पहुंचकर भगवान के स्वरूप को प्रतिबिम्बित कर दिया। रामचरित्र की व्यापकता ने तुलसी की वाणी को घर- घर पहुंचा दिया। इतना ही नहीं उत्तरापथ के समस्त हिन्दू जीवन को राममय ही बना दिया।

(3) भारतीय भक्ति पद्धति - भारत में ज्ञान- मार्ग, भक्ति- मार्ग अलग- अलग हैं। फिर भी भारतीय परम्परा वाला भक्त न तो पारमार्थिक ज्ञान का दावा करता है और न अलौकिक सिद्धि या रहस्य का ही।

(4) ज्ञान- मार्ग से भक्ति- मार्ग सरल- तुलसी के समय यद्यपि ज्ञान- मार्ग का बोल- बाला था किन्तु तुलसी ने भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा सरल बताकर भक्ति- मार्ग का प्रसार किया। उनके अनुसार भक्ति- मार्ग सर्वसुलभ है। यह स्वाभाविक भी है-

निगम अगम साहब सुगम, राम सौचिली चाह।
अबु असन अवलोकियत, सुलभ सबै जग माह॥

किन्तु जो मन, वाणी एवं कर्म के सरल हैं वही इस पर चल सकते हैं-

सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकन विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति॥

भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बताते हुए वे लिखते हैं -

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्वान।
ग्यानवंत अपि सो नर, पशु, बिनु पूंछ विषान॥

एक अन्य स्थल पर भी वे लिखते हैं -

जो अस भगति जानि परहरहीं। केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥

इस प्रकार मानसकार ने सर्वत्र ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

(5) तुलसी की भक्ति- पद्धति- तुलसी भक्त हैं अतएव वे लोक में भगवान का दर्शन करते हैं। शुक्ल जी के मतानुसार भक्ति हृदय का एक भाव है। इसलिए जगत में भासित होने वाला स्वरूप ही हमारे प्रेम या भक्ति का आलम्बन हो सकता है। तुलसी राम के भक्त थे, इसलिये सम्पूर्ण विश्व को उन्होंने 'राममय' ही देखा है -

सिया राम मय सब जानी।
करहुं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

सम्पूर्ण संसार को राममय बनाकर तुलसीदास जी निर्गुण एवं सगुण में भी अभेद उपस्थित कर देते हैं। उनके अनुसार निर्गुण ही भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर सगुण रूप में अवतरित होता है।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुनहिं होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जन हिम उपल विलग नहिं जैसे॥

तुलसी के अनुसार अयोध्यावासी दशरथनन्दन राम ही ब्रह्म हैं। वे निर्गुण भी हैं, सगुण भी हैं और गुणों के धाम भी हैं -

व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी।
चिदानन्द निरगुन गुनरासी॥

इतना ही नहीं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश उन्हीं की आज्ञानुसार सृष्टि की रचना करते हैं, उसका पालन करते हैं और उसका संहार भी करते हैं।

जाके बल विरंचि हरि ईसा।
पालत रहत सृजत दससीसा॥

यद्यपि ब्रह्म के अनेक नाम हैं किन्तु तुलसी को राम का नाम ही अधिक प्रिय है। इसीलिये नारद के माध्यम से तुलसी राम से वरदान मांगते हुए लिखते हैं कि -

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका।
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग मन बधिका॥

इतना ही नहीं, कुम्भज ऋषि के माध्यम से तुलसीदास राम से उनके सगुण रूप की ही भक्ति की याचना करते हैं-

यद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।
अस तब रूप बखनऊं जानउं। फिरि- फिरि सुगन ब्रह्म रति मानउं॥

(6) दास्यभाव की भक्ति- तुलसीदास इन्हीं सगुण साकार राम की भक्ति करते हैं। भक्ति मार्ग में ज्ञान की चरम उपलब्धि दैन्यभाव के आविर्भाव में है। एक भक्त के लिये सबसे बड़ा ज्ञान यही है कि वह अपने आराध्य को बड़े से बड़ा समझे और अपने को अधम से अधम। यही कारण कि तुलसी की भक्ति दास्यभाव की है। वे भगवान को अपना मालिक और अपने को उनका दास समझते हैं। उनकी मान्यता है, बिना सेव्य- सेवक भाव की भक्ति के मानव का उद्धार नहीं हो सकता-

सेवक- सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त विचारि॥
जो चेतन कहं जड़ करइ, जड़हिं करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनाथ कहि, भजहिं जीव ते धन्य॥

(7) **प्रेम की अनन्यता-** राम के प्रति तुलसी का प्रेम अनन्य है। राम के अतिरिक्त उनकी आस्था अन्य किसी पर भी नहीं। तुलसी का राम के प्रति यह प्रेम चातक और स्वाति का है। इसीलिए तुलसीदास जी लिखते हैं -

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥

भक्ति की अनन्यता में वे इतने तन्मय हैं कि सांसारिक नाते एवं रिश्तों को वे तिलांजलि देने में भी नहीं झिझकते। उनका स्पष्ट कथन है कि रामभक्ति में जो बाधक हैं उन्हें छोड़ देने में जीव को हिचकिचाना नहीं चाहिए -

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥

तुलसी सभी सांसारिक सम्बन्धों को तिलांजलि देकर स्वार्थरहित प्रेम करने का जीवमात्र को उपदेश देते हैं -

स्वारथ परमारथ रहित, सीता- राम सनेहु।
तुलसी सो फल चारि कौ, फल हमार मत एहु॥

(8) दैन्य की पराकाष्ठा - तुलसी ने दास्यभाव की जिस पद्धति का निरूपण किया है उसमें दैन्य भाव अर्थात् अपनी दीनता एवं हीनता के बोध की अनिवार्य आवश्यकता पर बल दिया है, क्योंकि इस प्रकार जब भक्त को अपनी हीनता का बोध हो जाता है तो उसका अहं मिट जाता है। अहं मिटने से ब्रह्म को प्राप्त करने का मार्ग सुगम हो जाता है। इसलिए तुलसीदास अपनी ही हीनता का बखान करते हुए लिखते हैं -

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जेहिं तन दिये ताहि बिसरायो ऐसो नमकहरामी॥

इसी प्रकार तुलसीदास पग- पग पर अपने को नीच, पतित एवं पातकी कहते चलते हैं। अधम एवं कुटिल कहते भी वे नहीं हिचकते। उनके राम ही एकमात्र पूर्ण ब्रह्म हैं। इसलिये वे उन्हीं से सभी प्रकार के सम्बन्धों को जोड़ने का प्रयास करते हैं -

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंजहारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों।
मो समान पातकि नहिं, पातकहर तोसों॥

(9) समर्पण की भावना- इस प्रकार तुलसीदास अपने को नीच एवं अधम कहते कहते नहीं अघाते और मन को अकारण ही फटकारते रहते हैं -

विषया परनारि निसा तरुनाई, सुपाई पर यो अनुरागहिं रे।
जमके पहरू दुःख रोग वियोग, विलोकत हूं न विरागहिं रे।
ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर महाभय भागहिं रे।

तुलसी विभिन्न माध्यमों से अपनी निन्दा करते जाते हैं और अपने मन को भयभीत भी करते जाते हैं ताकि वह सांसारिक प्रलोभनों से दूर रहे -

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चहु भाई रे।
नाहिं तो भव बेगारि महं परिहै, छूटत अति कठिनाई रे॥

इस प्रकार अपनी निन्दा करते हुए तथा मन को लौकिक बन्धनों का भय दिखाकर भक्त को पूर्णरूप से अपने को समर्पित कर देना चाहिये -

पाहि राम ! राम पाहि !
रामभद्र रामचन्द्र, सुजस सुवन सुनि आयौ हों सरन।

निष्कर्ष- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलसी ने भक्ति मार्ग की ज्ञान मार्ग से श्रेष्ठता प्रतिपादित की है और भक्ति को सर्वजन सुलभ बनाकर दास्य भाव से सगुण साकार राम की उपासना का सन्देश दिया है। संक्षेप में यही तुलसी की भक्ति पद्धति की विशेषताएं हैं।

तुलसी का साहित्य उनके युग का सच्चा प्रतिबिम्ब है।

कोई भी कवि हो, वह अपने समय से अप्रभावित नहीं रह सकता है। जब सामान्य मनुष्य अपनी समकालीन परिस्थितियों से प्रेरित और प्रभावित होता है तब कवि कलाकारों की तो बात ही अलग है, जो विशिष्ट संवेदना से युक्त होते हैं। तुलसी एक प्रतिभाशाली कवि हैं। उन्होंने अपने युग को अच्छी तरह समझा था, और उससे प्रभावित होकर काव्य रचना की थी। कवि परिस्थिति विशेष में उत्पन्न होता है, बढ़ता है, संस्कार ग्रहण करता है, प्रेरणा प्राप्त करता है, बनता है और उन परिस्थितियों को अपनी रचनाओं में प्रतिबिम्बित करता है, यह एक तथ्य है। इसके साथ यह भी ठीक है कि वह अपनी समसामयिक परिस्थितियों की प्रक्रिया बहुत कुछ उन्हें परिष्कृत करने और बनाने का भी कार्य करता है। तुलसी एक ऐसे कवि थे जिन्होंने युग का प्रतिनिधित्व भी किया और निर्माण भी किया। भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के अंतर्गत रामचरितमानस की रचना एक विशिष्ट घटना के रूप में मानी जा सकती है। तुलसी ने इस रचना के माध्यम से अपने समाज का सच्चा प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली जैसी रचनाओं में भी तुलसी के समाज को देखा जा सकता है। तुलसी की महत्ता, उनकी अपनी निजी है। डॉ.भागीरथ मिश्र ने लिखा है कि गोस्वामी तुलसीदास जी के शारीरिक, मानसिक और नैतिक किसी भी प्रकार के विकास में उनकी पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियां सहयोगी नहीं थीं। यहां परिस्थितियों ने उनकी प्रतिभा और महानता को प्रखर और जागरूक रखने के लिए अवश्य महत्वपूर्ण काम किया। तुलसी के समय राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक आदि जो भी परिस्थितियां थीं उन सभी का किसी न किसी रूप में उल्लेख तुलसीजी के साहित्य में हुआ है। तत्कालीन परिस्थितियों ने तुलसी के काव्य को पर्याप्त प्रभावित किया है।

राजनैतिक परिस्थिति- गोस्वामी तुलसीदासजी का प्रादुर्भाव काल पंद्रहवीं शताब्दी ईसवी का अंत और सोलहवीं सदी का प्रारंभ था। भारतीय इतिहास के आधार पर यह वह समय था जबकि पठानों का शासनकाल समाप्त हो रहा था और मुगलों का शासन प्रारंभ हो रहा था। पठानों और मुगलों के शासनकाल में महत्वपूर्ण अंश को तुलसी ने कुछ देखा और कुछ सुना था। अनेक राजकीय परिवर्तन हो रहे थे। राजा-प्रजा दोनों का ही जीवन असुरक्षित था। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति की संक्षिप्त स्थिति और विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(1) राजकीय परिवर्तन बड़ी तेजी से हो रहे थे।

(2) राज्य परिवर्तन में अधिकांश अधिकार लिप्सा और शक्ति ही प्रेरक थी। समाज में अथवा राजनीतिक क्षेत्र में न तो कोई नियम थे और न कोई आदर्श और मर्यादा थी। यही कारण है कि पिता-पुत्र का, भाई-भाई का और भतीजा अपने चाचा का या तो वध कर देता था अथवा उसे बंदी बनाकर राज्य पर अपना अधिकार जमा लेता था। स्थिति बिगड़ रही थी।

(3) राजा और शासन प्रायः अशिक्षित, विलासी, अभिमानी और कठोर हृदय के थे। जन-कल्याण की भावना उनके मन में उदित नहीं हुई थी।

(4) अकबर के पूर्ववर्ती राजाओं के अस्त-व्यस्त शासनकाल में न तो कोई सामाजिक विकास ही हो सका और न सांस्कृतिक उन्नति ही।

उपर्युक्त सभी परिस्थितियों ने तुलसी को गहराई से प्रभावित किया। प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय रघुवंशी राजाओं का आदर्श शासन उनके मन में जागृत हुआ। यह रघुवंशी राजा प्रजा के हितैषी, त्यागी, वीर और गुण संपन्न थे। तुलसीदास जी ने ऐसे अव्यवस्थित राजनैतिक वातावरण में रामचरितमानस के माध्यम से राजा दशरथ और राम के परिवार का आदर्श प्रस्तुत किया। राम राज्य की ऊंची भावना रखने वाले तुलसी को तत्कालीन राजाओं की अशिक्षा और क्रूरता बहुत अधिक खटकती थी। उन्होंने खीज भरे स्वर में कहा-

गौड़ गवांर निपोल भुवि यवन महा महिपाल।

साम न दाम न भेद कलि केवल दंड करार॥

अत: कह सकते हैं कि तुलसी के संवेदनशील मानस पर प्रभाव डालने के लिए तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियां महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकी हैं।

सामाजिक स्थिति- राजनीतिक स्थिति की भांति ही तुलसी के समय की सामाजिक स्थिति भी अत्यंत महत्वपूर्ण थी जिन्होंने उसके काव्य को प्रभावित किया। डॉ. उदयभानुसिंह ने लिखा है कि- "उस समय वर्ण-व्यवस्था थी, ऊंच-नीच का भेद खूब था, आश्रम-व्यवस्था नहीं थी, पर सन्यासी, साधु, भक्तों, योगियों आदि का आदर था, उनके प्रति सम्मान का भाव था। पारिवारिक जीवन में दिखावे की मर्यादा बंधन रूप में थी, उसका आंतरिक स्फुरण ही नहीं था। स्त्री को परिवार से बंधन अनेक थे, भय अनेक थे, पर स्वच्छन्दता और अधिकार कम। आर्थिक दृष्टि से वह पुरुष के ऊपर आश्रित थी। मुगलों और पठानों की क्रूर सौंदर्य-लिप्सा ने उसे वासनात्मक आकर्षण एवं विलासात्मक महत्व ही दे रखा था। उस समय जन-साधारण में तो नहीं, पर समृद्ध समाज में बहुपत्नीत्व का प्रचलन था। हिन्दू समाज में भी यह वर्जित न था, पर मुसलमानों के बीच तो यह अधिकांश रूप से देखने को मिलता था। बादशाह छोटे-छोटे शासक और पदाधिकारी गण एक से अधिक स्त्रियां रखते थे, जिसका दुष्परिणाम विलासिता और दुराचार था। उदात्त सामाजिक और देशोन्नति भावनाओं के स्थान पर विलासिता, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य का ही अधिकार था और शासक लोग धन और विलास लिप्सा से ही परिपूर्ण थे। इसका प्रभाव सामान्य जनों के चरित्र पर भी अवश्य पड़ा होगा, विशेष रूप से शासक वर्ग की जनता तो इससे अवश्य प्रभावित थी।"

अधिकांश जनता निर्धन और जीवन से उदास थी। प्राय: प्रजा का जीवन राजाओं और अधिकारी जनों की सुख समृद्धि को जुटाने में ही बीतता था। सब कुछ उस युग के शक्ति संपन्न लोगों के बहते विलास की महाधारा में बहकर मिलता जाता था। यद्यपि जमीन काफी उपजाऊ थी किन्तु विवशता और साधन हीनता के कारण उपज अच्छी नहीं होती थी। राजा, प्रजा के लिए नहीं होता था, अपितु राजा के लिए प्रजा होती थी। यद्यपि अकबर का शासनकाल काफी अच्छा था, फिर भी उसके समय में जो अकाल पड़े, उससे सारा सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। सन् 1556 और 1573-74 में पड़े हुए अकालों में अपने ही आदमियों को आदमी खा जाते थे। चारो ओर उजाड़ दिखाई देता था। समाज की व्यवस्था बिगड़ी हुई थी, हिन्दू समाज में वर्ण-व्यवस्था का ढांचा शिथिल हो गया था। कर्म-कौशल, त्याग और संगठन की भावना समाप्त हो गयी थी। अनेक इतिहासकारों ने इन सभी स्थितियों का वर्णन किया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी अपने रामचरितमानस और कवितावली में इन सभी स्थितियों का प्रभावशाली वर्णन किया है। जब इतिहासकार ऐसी स्थिति से द्रवित हो सकते थे तो फिर संवेदनशील और करुणा की प्रतिमूर्ति तुलसी का मानस इस स्थिति से कैसे अप्रभावित रह सकता था। रामचरितमानस के उत्तरकांड में समकालीन सामाजिक स्थिति का चित्रण तुलसीदासजी ने जिस प्रकार किया है वह काल्पनिक नहीं है अपितु इतिहास से प्रमाणित है। तुलसी का समकालीन चित्रण इस प्रकार है जिसमें यह उल्लेख आया है कि किसान को खेती करने के साधन उपलब्ध नहीं हैं। भिखारी को भिक्षा नहीं मिलती है। नौकर

को नौकरी नहीं मिलती है और वणिक का व्यापार नहीं चलता है। सभी लोग दरिद्रता रूपी रावण के बोझ से दबे हुए हैं। कवितावली में आई हुई ये पंक्तियां देखिए-

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान, सोचवस
कहै एक एकन सों कहां जाई का करी
वेद हूं पुरान कहीं, लोक हूं, बिलोकियत
सांकरे सबै पै राम रावरे कृपा करो
दारिद दसानन दबाई सुनी दीनबंधु
दुरित दहन देखि-'तुलसी' हहा करी।"

तुलसीदासजी के रामचरितमानस में भी युग के प्रभाव को देखा जा सकता है। मानस के उत्तरकांड में आया कलयुग वर्णन जन मन की मलिनता को स्पष्ट करता है। भागवत् में भी कलयुग का वर्णन आया है और रामचरित मानस में भी। यद्यपि तुलसी का कलयुग वर्णन भागवत् से प्रभावित है किन्तु फिर भी उसमें कुछ बातें इस प्रकार की हैं जो तत्कालीन स्थिति का चित्र प्रस्तुत करती हैं। तुलसी के कलयुग वर्णन में प्रमुख रूप से वर्णाश्रम की हीनता पर जोर दिया गया है। तुलसी का विश्वास था कि वर्णाश्रम व्यवस्था के नष्ट होने पर सामाजिक मर्यादाएं भी नष्ट हो जाती हैं और लोक चेतना कुंठित हो जाती है। ऐसी स्थिति में यदि राजा भी अत्याचारी हो तो समाज का सत्यानाश हो जाता है। तुलसी ने जब देखा कि उनके समय में समाज विकृति की ओर जा रहा है तो उन्होंने दुखी मन से रामचरित मानस में अपने समय को वाणी देते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा-

कलिमय ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद्ग्रंथ॥
दंभिन्ह निज मति कल्पित करि प्रगट कीन्ह बहु पंथ॥
बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन। कोउ नहीं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जाकहं जो भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूंठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना।
जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

x x x

मातु पिता बालकन बोलावहिं। उदर भरै सोव धर्म सिखावहिं।

x x x

सौभागिनी विभूषण हीना। विधवन कर सिंगार नवीना।
नाहि मुई घरसंपत्ति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी॥

वस्तुत: यह वर्णन तुलसीकृत उनके समकालीन अनुभव पर आधारित है। तुलसी के काव्य में अनेक स्थितियों का निरूपण कुछ इस ढंग से हुआ है कि वह युग का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। दासता की मनोवृत्ति बढ़ती जा रही है जिससे शिक्षा दीक्षा की प्रवृत्ति भी जग गयी थी। संपत्ति अपहरण होता रहता था, इसलिए तुलसीदासजी ने राजाओं को भूमि चोर की संज्ञा दी है। कृषकों के साथ होने वाला अन्याय और अत्याचारों पर प्रकाश डालते हुए तुलसीदासजी ने कवितावली में बहुत कुछ लिखा है। दोहावली के कर विषयक परिष्कृत नीति के बार-बार उल्लेख को शास्त्रों की

करगति दुर्नीति के संशोधन के लिए गोस्वामी द्वारा प्रदर्शित सुझाव ही मानना चाहिए। दुर्भिक्षों और उनकी ज्वाला से पीड़ित प्रजा की आर्थिक स्थिति का चित्रण भी गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी बहुत ही करुणामयी शैली में किया है। जिस भीषण महामारी से तत्कालीन समाज समाप्त हो गया था, उनका एक हृदय विदारक दृश्य विश्वेश्वरपुरी में उसके कारण मची त्राहि-त्राहि में देखा जा सकता है।

धार्मिक स्थिति- गोस्वामी तुलसीदासजी के पूर्व उत्तर भारत और दक्षिण की अपनी निजी धार्मिक परंपराएं वहां की राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों एवं धार्मिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप बन गई थीं। उत्तर भारत की धार्मिक परंपराएं दक्षिण से भिन्न थीं। दक्षिण में बौद्ध धर्म और इस्लाम धर्म दोनों का ही गहरा प्रभाव और प्रचार नहीं हो सका। अत: वहां की परिस्थितियों के अनुसार धार्मिक परंपराएं विकसित होती रहीं। उत्तर भारत में स्थिति इसके विपरीत रही। बौद्ध और जैन धर्म विभिन्न शाखाओं और उपशाखाओं में विभक्त हो गए थे उनमें भी साधना और सदाचार की कमी आ गयी थी। रामानंद की भक्ति पद्धति का जो सगुणोपासना का पक्ष था उसे तुलसीदासजी ने अपनाया था। कबीर का प्रमुख उद्देश्य हिन्दू-मुसलमान की एकता की स्थापना है। तुलसीदासजी के समय तक कबीर की प्रतिभा क्षीण हो चुकी थी और अनेक पंथों में उनकी वाणी का सार विभिन्न संप्रदायों में प्रवाहित हो रहा था। इसी से तुलसीदासजी ने बहु संप्रदायवाद का विरोध किया। कलयुग में सभी धार्मिक ग्रंथ और मान्यताएं इस प्रकार लुप्त होती जा रही थीं जिसका स्पष्ट चित्र तुलसीजी के काव्य में मिलता है। निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों में विवाद में पड़ी हुई जनता के सामने तुलसीदासजी ने स्पष्ट लिखा-

"निर्गुण रूप सुलभ अति सगुन जान कोउ-कोउ
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ

वास्तव में तुलसी का यही दृष्टिकोण था और वास्तव में उन पर उनकी गहरी आस्था थी। उन्होंने अपनी दार्शनिक मनोवृत्ति और व्यापक भक्ति का परिचय यह कहकर दिया था-

सीय राम मय सब जग जानी।
करो प्रणाम जोरि जुग पानी॥

तुलसीदासजी ने अपने प्रमुख ग्रंथ रामचरित मानस में अपने युग के प्रमुख प्रश्न (क्या दशरथ के पुत्र राम ही परब्रह्म हैं जिसका उत्तर कबीरादि ने निषेधात्मक दिया था) का विश्लेषण करके युग-युग व्यापी सामाजिक मर्यादा और आस्था को ध्यान में रखते हुए उसके वास्तविक हित के अनुकूल उत्तर दिया है। इसी में उनकी युग-युग व्यापी महत्ता छिपी है।

तुलसी ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि उनके समय में देव स्थानों और तीर्थों की दशा चिंताजनक थी। वे निश्चय ही अनेक छल छद्मों और अत्याचारों के अड्डे थे। तुलसीदासजी ने लिखा है कि-

सुर सदननि तीरथ पुरिन निपट कुचालि कुसाज
मनहु मवासे मारि कलि राजत सहित समाज

ब्राह्मण अपने सात्त्विक कर्मों को छोड़कर राग-द्वेष के कीचड़ में फंसे हुए थे। वे विद्या को बेचकर अपनी जीविका चलाते थे। विबाल जटा और नाखूनों से विकट वेष बनाए रहने वाले कृत्रिम योगियों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। तुलसीदासजी ने उनके संबंध में मानस के अंतर्गत स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि राजा तो पतित थे ही प्रजा भी पतित थी। उसमें भी पाखंड और पाप बढ़ता जा रहा था। विलासिता का वातावरण देश भर में व्याप्त था, लोगों में वासना और स्त्रैणता की प्रधानता थी। तुलसीदास ने विनयपत्रिका में लिखा है-

प्रजापतित पाखंड पापरत अपने-अपने रंग रइहै
साहित्य सत्य सुरीति गई घटि बढ़ी, कुरीति कपट कलइ है
सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसित, हुलसित खलइ है

कहने का तात्पर्य है कि सर्वत्र अधार्मिक वातावरण था। धर्म के प्रति उपेक्षा की भावना जागृत हो चुकी थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसीदासजी के काव्य में अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सभी स्थितियों का चित्रण बड़ी ईमानदारी से हुआ है।

साहित्यिक स्थिति- साहित्यिक दृष्टि से देखें तो तुलसी के युग में अनेक साहित्यिक पद्धतियां प्रचलित थीं। वीर काव्य पद्धति, सिद्धों, नाथों तथा निर्गुण संतों की साक्षी शैली, प्रेमाख्यान प्रबंध काव्यों की दोहा-चौपाई वाली शैली और कवित्त सवैयों की ललित शैली, पद-पद्धति, लोकगीत पद्धति आदि तुलसी के समय में प्रचलित थीं। इन सभी को तुलसीदासजी ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। वीर काव्य शैली का प्रयोग कवितावली के सुन्दर कांड, लंका कांड और रामचरितमानस के लंका कांड में हुआ है। वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न और दोहावली आदि में सिद्धों, नाथों तथा निर्गुण संत कवियों की साखी शैली का प्रयोग देखने को मिलता है। प्रेमाख्यान प्रबंध काव्यों की दोहा चौपाई शैली का प्रयोग तुलसी के रामचरितमानस और वैराग्य संदीपनी में मिलता है। कवित्त सवैयों की ललित शैली कवितावली में मिलती है। पद-शैली का प्रयोग गीतावली, विनयपत्रिका और कृष्ण गीतावली आदि में हुआ है। लोकगीत पद्धति का प्रयोग हमें तुलसी की पार्वती मंगल, जानकीमंगल, रामलला नहछू और कवितावली और गीतावली में मिलता है। इसके अतिरिक्त कवितावली में कहीं-कहीं झूलना नामक लोक छंद का प्रयोग भी बड़ी कुशलता के साथ किया गया है। बड़े ओज और मस्त गति से चलता हुआ निम्नांकित झूलना छंद देखिए-

मतभछ-मुकुट दशकंध साइसग्सइल
सृंग-विहरनि जन बज्र टांकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ
सेष संकुचित संकित पिनाकी।
चलत महि मुरु उच्छलिक सागर सकल
बिकल विधि बधिर दिसि बिदिस
रजनिचर-घरनि घर गर्म-अर्भक स्रवत
सुनत हनुमान की हांकी बाकी।

निष्कर्ष- उपर्युक्त् विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि तुलसीदासजी अपने युग के सहज प्रहरी थे। उन्होंने अपने समय को और उसमें सांस लेते सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और साहित्यिक जीवन को खुली आंखों से देखा था। जिस रूप में उन्होंने अपने समाज को देखा उसी रूप में उन्होंने उसे चित्रित करने में कोई संकोच नहीं किया। यह ठीक है कि तुलसी राम के परम भक्त थे, किन्तु यह भी ठीक है कि उन्होंने अपने भक्तिभाव को सुरक्षित रखते हुए भी सामाजिक विकृतियों और सांस्कृतिक अध:पतन को ही हृदयंगम किया था। इस प्रकार अपने युग से प्रभाव संकलित करके तुलसी ने अपने काव्य का सृजन किया। ऐसी स्थिति में यही कह सकते हैं कि तुलसीदासजी के युग ने उनको पर्याप्त प्रभावित किया था, यदि ऐसा न होता तो तुलसी की रचनाओं में तत्कालीन जीवन की झांकी कैसे मिल पाती?

महाकाव्य की दृष्टि से रामचरित मानस की समीक्षा।

उत्तर- तुलसीदास द्वारा लिखित रामचरितमानस हिन्दी साहित्य की अमर कृति है। इसमें कवि का मर्यादावाद आदर्श भी भूमिका पर प्रस्तुत हुआ है। यह वह ग्रंथ है, जिसमें भारतीय संस्कृति का उज्जवल रूप अनेक संदर्भों में उद्घाटित हुआ है। इस ग्रंथ का सर्वाधिक महत्व इस कारण है कि उसमें मार्मिक प्रसंगों का विधान है, चारित्रिक महानता है, सांस्कृतिक गरिमा और गुरुता है, सरस, मधुर संवादों की योजना है, सरस घटना संगठन है और उच्च कोटि की भावुकता और कलात्मकता है। इतने गुणों के कारण रामचरितमानस एक महाकाव्य ग्रंथ है। काव्य कौशल, सांस्कृतिक निरूपण, कथानक, चरित्र, सौन्दर्यानुभूति, ऋतुभेद, उद्देश्य, रस-निरूपण और कलात्मकता के कारण रामचरितमानस का महाकाव्यत्व असंदिग्ध है।

कथानक- रामचरितमानस में आया कथानक पूरी तरह व्यवस्थित और संगठित है। वह राम कथा पर आधारित एक प्रसिद्ध कथानक है। इस कथानक की योजना नाना पुराण निगमागम के आधार पर हुई है। इसमें राम के जीवन चरित्र को संपूर्णता के साथ ग्रहण नहीं किया गया है। यहां तो केवल राम जन्म से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा को ही प्राप्त हुआ है। समग्र कथा सात सोपानों में विभक्त है। इसमें राम जन्म से लेकर वनवास तक की घटनाएं कथ के प्रारंभिक भाग से संबंधित हैं। वन यात्रा से लेकर सीता हरण तक की घटनाएं कथा के मध्य भाग से संबंधित हैं और सीता हरण से लेकर रावण वध तक कथा का अवसान है। तुलसीदासजी ने कार्य की दृष्टि से इस कथा की योजना की है।

रामचरितमानस का मुख्य कार्य रावण वध और रामराज्य की स्थापना है। संपूर्ण कथा इसी कार्य की दृष्टि से अग्रसर होती हुई अंत में अपने अभीष्ट लक्ष्य पर जाकर समाप्त हो गयी है। रामचरितमानस में राम की कथा अधिकारित कथा है किन्तु बीच में ताड़िका वध, अहिल्या उद्धार, शबरी-आतिथ्य, सुग्रीव मैत्री, शूर्पणखा मिलन, मारीच-वध और सेतु-बंध आदि जितनी भी प्रासंगिक कथाएं हैं, वे सभी अधिकारिक कथा को विकसित और समृद्ध बनाती हैं। रामचरितमानस की कथा में नाटकोचित कार्यावस्थाएं और संधियां आकर्षक ढंग से नियोजित हुई हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि रामचरितमानस का कथानक संगठित नाटकीय, प्रभावोत्पादक और घटना वैचित्र्य से युक्त है। इसमें महाकाव्य के समस्त गुण विद्यमान हैं।

चरित्र-चित्रण- चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखें तो रामचरितमानस एक सफल महाकाव्य प्रतीत होता है। उसके नायक रघुवंश के सूर्य भगवानराम हैं। तुलसीदासजी ने राम के रूप में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की आदर्शमयी प्रतिमा प्रस्तुत की है। वस्तुत: तुलसी के राम न केवल आदर्श पुरुष हैं, अपितु एक महान व्यक्तित्व के धनी भी हैं। वे बुद्धिमान, धर्मज्ञ, यशस्वी, प्रजापालक, धर्मरक्षक, गोपालक, सत्यसंघ, लोकप्रिय, बलशाली, त्यागी, धैर्यवान, प्रियदर्शी, धर्मात्मा, उच्च आदर्शों के प्रतीक, शक्तिशाली और सौन्दर्य के अगाध भंडार हैं। तुलसीदासजी ने राम को मानव और ब्रह्म दोनों ही रूपों में प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी उर्वर कल्पना से मानव में देवत्व की, नर में नारायण की, अथवा व्यक्ति में ब्रह्म की जो स्थापना की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। राम धीरोदात्त मानव और मानव समाज के पोषक हैं। सही अर्थों में वे महाकाव्य के नायक होने के गुणों से युक्त हैं।

राम के अतिरिक्त रामचरितमानस का प्रति नायक रावण अमत्य प्रवृत्तियों का भंडार है, तथा अनाचार की साकार मूर्ति है। यूं उसमें वीरता, साहस की कमी नहीं है किन्तु कुप्रवृत्तियों की अधिकता के कारण वह एक असत पात्र है। इन दोनों पात्रों के अतिरिक्त भरत भक्ति की प्रतिमा हैं, त्याग के प्रतीक हैं, और आदर्श बंधु हैं। लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान और अंगद आदि सभी में सेवा, परोपकार व कर्तव्य परायणता के भाव विद्यमान हैं। सीता काव्य की नायिका है। वे आदर्श पत्नी, आदर्श नारी और आदर्श भारतीय कुलवधू हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि तुलसीदासजी ने

रामचरितमानस में सत और असत दोनों प्रकार के पात्रों का चित्रण बड़े ही कौशल के साथ किया है।

प्रकृति चित्रण- महाकाव्य में प्रकृति चित्रण की परंपरा मिलती है। तुलसी का रामचरितमानस प्रकृति सौन्दर्य का क्रीड़ा स्थल है। उसमें स्थान-स्थान पर वन, पर्वत, नदी, सरोवर और षटऋतुओं का मार्मिक वर्णन हुआ है। प्रकृति के विभिन्न वर्णन रामचरितमानस में प्राय: सभी कांडों में देखने को मिलते हैं। अयोध्या कांड का कामदगिरी वर्णन, अरण्य कांड का पंचवटी और पंपा सरोवर वर्णन, किष्किधा कांड का वर्षा और शरद ऋतुओं का वर्णन तथा लंका कांड का चंद्र वर्णन अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है। पंचवटी और पंपा सरोवर का वर्णन करते हुए कवि तुलसीदासजी ने कमलों, उन पर गूंजते हुए भ्रमरों, कलरव करते हुए जल कुक्कुटों और हंसों, विहार में लीन चक्रवाक, बक और खगों, किनारे पर स्थित मुनिगृहों, शोभा के आगाध लता विपटों, पल्लवित और कुसमित वृक्षों और फूलों, शीतल मंद सुगंधित एवं कोयल की मधुर धुनि से पूरित अंकित किया है। तुलसीदासजी ने वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन उपदेशात्मक शैली में किया है। उन्होंने लिखा है कि-

दामिन दमक रही नभ माही, खल की प्रति यथा थिर नाहीं॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा, संत हृदय जल गत मद मोहा॥
पंक ने रेणु सोह अस धरणी, नीति निगुण नृप कै जस करनी॥

इतना ही नहीं लंका कांड में चंद्रमा का वर्णन तुलसीदासजी ने आलंकारिक शैली में किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसी का प्रकृति वर्णन रामचरितमानस की महाकाव्योचित शैली में किया गया है। इस वर्णन में व्यापकता है, और प्रकृति के विविध रूपों की मनोहर झांकी ही है।

युग चित्रण- महाकाव्य अपने समकालीन युग और जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। जिस महाकाव्य में युग का चित्रण नहीं होता, वह सही अर्थों में महाकाव्य नहीं कहा जा सकता है। रामचरितमानस एक ऐसा ही महाकाव्य है जिसमें तुलसीदासजी ने अपने युग का चित्रण पूरी ईमानदारी से किया है। रामचरितमानस में तुलसीदासजी ने अपने समय के सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक धार्मिक और पारिवारिक जीवन का चित्रण तो किया ही है, उस समय में फैले धार्मिक विद्वेष, विलासिता और सामाजिक विकृतियों आदि का वर्णन भी किया है। मानस में राजा एवं बादशाहों के ठाट-बाट, हासविलास और मनोरंजन आदि का वर्णन किया गया है। मानस में वर्णित जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के संस्कारों में तत्कालीन कथाओं का भली-भांति ज्ञान हो सकता है। तुलसीदासजी ने उत्तरकांड में कलयुग की दुर्व्यवस्था का चित्रण करते हुए तत्कालीन सामाजिक जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि तुलसीदासजी ने मानस के उत्तरकांड में कलयुग का जो वर्णन किया है, वह उन्हीं के समय की तत्कालीन परिस्थिति थी। उस अंश को पढ़कर यह ज्ञात होता है कि कवि के मन में समाज की उच्छृंखलता के लिए कितना क्षोभ था। इसी क्षोभ की प्रतिक्रिया उनके लोक शिक्षक, समाज, चित्रण के आदर्श में है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तुलसी के मानस में तत्कालीन युग की संपूर्ण झांकी दिखाई देती है। अत: इस दृष्टि से भी रामचरितमानस एक सफल महाकाव्य है।

भाव एवं रस निरूपण- तुलसीदासजी का रामचरितमानस भाव और रस निरूपण की दृष्टि से भी महाकाव्योचित विशेषताओं से युक्त है। इसमें नव रसों का सजीवता के साथ चित्रण हुआ है। मानस का प्रत्येक सोपान विविध रसों से पूर्ण है। इस महाकाव्य में तुलसीदासजी की उर्वर कल्पना, उत्कृष्ट भावुकता और प्रतिभा का समुचित योग दिखाई देता है। श्रृंगार वर्णन विशेषकर संयोग श्रृंगार राम और सीता के पुष्प वाटिका मिलन में मिलता है और अशोक वाटिका में समय बिताती हुई विरहिणी सीता के वियोग वर्णन में विप्रलम्भ श्रृंगार की योजना हुई है। दशरथ-मरण के प्रसंग में रानियों का शोकातुर होकर रोना, करुण रस की व्यंजना करता है। धनुष यज्ञ के अवसर

पर लक्ष्मण की वीरोचित वाक्यावली में वीर रस की आकर्षक व्यंजना हुई है तो नारत-मोह के प्रसंग में हास्य रस का सुन्दर विधान हुआ है। शिवजी की बरात का चित्रण भयानक रस से युक्त है। ऐसे ही राम के विराट रूप-निरूपण में यदि अद्‌भुत रस की व्यंजना हुई है तो भक्ति निरूपण राम स्तुति, शिव-स्तुति, आदि में शांत रस को देखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यही है कि रामचरितमानस में विविध रसों की योजना हुई है। रसों के अतिरिक्त विविध संचारी भावों को भी तुलसी ने बड़ी ही कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है। निर्वेद, शंका, ग्लानि, श्रम, आलस्य, असूया और घृति आदि संचारी भावों को रामचरितमानस में देखा जा सकता है। प्रश्न यह है कि मानस में प्राय: सभी रस तो मिलते हैं किन्तु उनका प्रमुख रस कौन सा है ? इस संबंध में डॉ. शंभूनाथसिंह ने लिखा है कि "मानस में जो प्रधान रस है, वह अलौकिक श्रृंगार रस ही है और उसी को गौड़ीय अलंकारिकों ने भक्ति रस कहा है।" वस्तुत: अन्य सभी रसों की अपेक्षा मानस में भक्ति रस ही प्रचुरता से आया है। अत: इसे ही मानस का अंगी रस माना जा सकता है।

महान् उद्देश्य- कोई भी कृति निरुद्देश्य नहीं होती है। फिर महाकाव्य तो एक ऐसी कृति है जो बिना किसी उद्देश्य के लिखी ही नहीं जा सकती है। उद्देश्य की दृष्टि से मानस का अध्ययन करें तो तीन प्रमुख बातें सामने आती हैं-

(1) पहली बात तो यह है कि तुलसी ने आत्म प्रबोध अथवा अपने अंत:करण के सुख के मानव की रचना की है।

(2) दूसरा तथ्य यह सामने आता है कि रामचरित मानस गंगानदी के समान सभी का उपकार करने वाला प्रतीत होता है। 'कीरति भनति भूति भलिसोई, सुरसरि सम सबकर हित होई' कहकर तुलसीदासजी ने इसी भाव को व्यक्त किया है। इससे यह प्रकट होता है कि तुलसी ने रामचरित मानस की रचना लोक प्रमोद की आकांक्षा से की है। यह महत्वपूर्ण बात है।

(3) "प्रभु सुजस संगति भनिति मन होइय सुजन मन भावति" कहकर यह भी संकेत किया है कि राम के यश का वर्णन करने से ही कोई काव्य सज्जनों के मन को अच्छा लगने वाला बन पाता है। इससे यह प्रकट होता है कि तुलसीदासजी ने रामचरित की रचना राम भक्ति का प्रचार करने के लिए की है।

उपर्युक्त तीनों उद्देश्यों को ध्यान से देखें तो हमें इनमें कोई विरोध नहीं दिखलाई देता है। इन तीनों के मूल में एक ही लक्ष्य और एक ही भाव काम कर रहा है। वस्तुत: रामचरितमानस का उद्देश्य लोक मंगल है। इसी से प्रेरित होकर ऐसे लोकोपकारी काव्य की सृष्टि हो सकी है, जिस महाकाव्य का इतना महान उद्देश्य हो, उसे साधारण काव्य न मानकर महाकाव्य की संज्ञा देना उचित ही प्रतीत होता है। रामचरित मानस आज के युग में कल्याण का मार्ग दिखाने वाला महाकाव्य है।

शिल्प कौशल- रामचरित मानस तुलसी की अद्‌भुत प्रतिभा और कल्पना शक्ति का परिणाम है। यह कवि की उच्च कोटि की काव्य कला का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसकी सबसे बड़ी कलात्मकता उन मार्मिक स्थलों के चयन में दिखाई देती है जिनको काव्य में स्थान देकर तुलसीदासजी ने अपने शिल्प कौशल का परिचय दिया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन मार्मिक स्थलों में से जनक की वाटिका में राम सीता का परस्पर दर्शन, राम वन-गमन, दशरथ-मरण, भरत की आत्मज्ञानी, वन मार्ग से मिलने वाली स्त्री-पुरुषों की सहानुभूति, युद्ध और लक्ष्मण शक्ति लगना आदि को सर्वाधिक हृदय स्पर्शी प्रसंग माना है।

रामचरितमानस अवधी भाषा में लिखा गया है। इसमें उपयुक्त शब्द चयन व्यावहारिक पदावली, लोकोक्तियों और मुहावरों का सार्थक प्रयोग, आकर्षण सूक्ति विधान, प्रेषणीयता और प्रसंगानुसार एवं भावानुसार भाषागत विशेषताएं मिलती हैं। इनकी भाषा शैली अत्यंत सरल, सजीव और आकर्षक है। अपवाद स्वरूप जहां कहीं दार्शनिक विवेचन है अथवा भक्ति निरूपण है या राम

और शिव से संबोधित स्तोत विधान है, वहां भाषा क्लिष्ट, समास बहुला और संस्कृत के निकट पहुंच गयी है। रामचरितमानस की अलंकार योजना भी तुलसी की उत्कृष्ट काव्य कला की परिचायक है। उन्होंने जिन अलंकारों का प्रयोग किया है-उनमें रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टांत और अप्रस्तुत प्रशंसा आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसी के अलंकारों में भावों के अनुसार सौन्दर्य-वर्णन करने की अद्‌भुत शक्ति है। उनके प्रयोग में कहीं भी कोई वर्णन शिथिल नहीं हुआ है। मानस का छंद विधान भी तुलसी की श्रेष्ठ कलात्मकता का परिचय देता है। तुलसीदास ने रामचरितमानस के अंतर्गत मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का सही और सफल प्रयोग किया है। मात्रिक छंदों में चौपाई, सोरठा, दोहा, हरिगीतिका, तोमर, त्रिभंगी जैसे छंदों को अपनाया है। श्लोक वर्णित वृत्तों में अनुष्ठुप, इंद्रवज्रा, मालिनी, बसंततिलका, वंशस्थ और भुजंग प्रयात आदि छंदों का प्रयोग किया है।

निष्कर्ष- संक्षेप में कह सकते हैं कि तुलसी का रामचरितमानस एक श्रेष्ठ महाकाव्य है, उसमें कथानक, चरित्र, प्रकृति सौन्दर्य, युग-जीवन कलात्मकता और महान-उद्देश्य जैसी विशेषताएं आसानी से मिल जाती हैं। वह परंपरागत शैली में लिखा गया है। सही अर्थों में रामचरितमानस तुलसी की काव्य प्रतिभा का निरूपण करने वाला सांस्कृतिक महाकाव्य है। डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने ठीक ही लिखा है कि-"तुलसी का"रामचरितमानस" अद्‌भुत काव्य-सौष्ठव, सरस रचना शैली एवं सर्वांगपूर्ण काव्य कुशलता से परिपूर्ण है। यह काव्य तुलसी की काव्य मर्मज्ञता, कलात्मकता, सरलता, भावुकता, गंभीरता एवं रचना निपुणता का द्योतक है। इसमें तुलसी कवि और उपदेशक दोनों रूपों में विद्यमान हैं। "मानस" निर्बल, निरीह एवं निराश्रित जनता का संबल है, इसमें जगत से अधीर एवं विक्षुब्ध मानव को भक्तवत्सल एवं सर्वशक्ति संपन्न भगवान के समीप पहुंचाकर आश्वस्त करने की अपूर्व शक्ति है, इसमें लोक-जीवन की गहराई तक पहुंचने की अद्‌भुत क्षमता है और इसलिए यह काव्य "राम राज्य" के उन्नत आदर्श की प्रेरणा देता हुआ विश्व में सुख शांति के साथ-साथ लोकहित की प्रतिष्ठा कर रहा है।"

तुलसी की भाषा का निरूपण ।

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। यह वह माध्यम है जिसके द्वारा कवि अपने मनोगत भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। तुलसीदासजी का काव्य भाषा तथा शैली की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। काव्य भाषा में उचित शब्द प्रयोग, कथ्य के अनुकूल वाक्य-विन्यास, शब्दों का उपयुक्त चयन, अर्थ को ज्यादा प्रेषणीय बनाने के लिए लोकोक्तियों तथा मुहावरों का समुचित प्रयोग, नाद सौंदर्य और चित्रात्मकता तुलसी की भाषा की प्रमुख विशेषताएं हैं। मध्य युग का अन्य कोई कवि भाषा की इतनी बड़ी शक्ति लेकर काव्य के क्षेत्र में अवतीर्ण नहीं हुआ जितने कि तुलसीदासजी। वस्तुतः भाषा पर तुलसीदासजी का अद्‌भुत अधिकार था। उन्होंने अवधी, ब्रज जैसी भाषाओं में रचना की है। उनकी संपूर्ण रचनाओं में से श्रीकृष्ण गीतावली, कवितावली, विनय पत्रिका, दोहावली, गीतावली तथा वैराग्य संदीपनी ग्रंथ ब्रज भाषा में लिखे गये हैं एवं रामचरितमानस, राम लला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकीमंगल और रामाज्ञा प्रश्न अवधी भाषा के श्रृंगार हैं। तुलसी की इन दोनों भाषाओं के शब्द भंडार का अध्ययन करने के लिए उन्हें सुविधा की दृष्टि से पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है-संस्कृत शब्दावली, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश शब्दावली, विदेशी शब्दावली, तत्कालीन प्रांतीय शब्दावली और हिन्दी की अन्य बोलियों की शब्दावली।

संस्कृत शब्दावली- यद्यपि तुलसीदासजी ने अवधी और ब्रज भाषा में काव्य रचना की है पर उनकी रचनाओं में संस्कृत की तत्सम शब्दावली भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। इस शब्दावली के दो रूप हैं। एक रूप तो वह है जहां कवि ने ब्रज और अवधी के शब्दों का प्रयोग करते हुए संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया है और दूसरा वह रूप है जहां पूरे पद संस्कृत में लिखे गये हैं। जहां तुलसीदासजी ने पूरे के पूरे पदों को संस्कृत में लिखा है वहां ऐसा लगता है जैसे वे संस्कृत

के आचार्य हों। हर कांड के प्रारंभ में तुलसी ने ऐसी संस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ-

"वर्णनामर्थ संघानां रसनां छंदसामपि" अथवा "नमानीशमीशन निवाण रूपं।" इतना ही नहीं कहीं-कहीं संस्कृत की यह पदावली अत्यंत सरल है, तथा कहीं-कहीं अपेक्षाकृत कठिन हो गयी है।

कहने का अभिप्राय यह है कि तुलसीदासजी ने संस्कृत पदावली का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है। इसके अतिरिक्त तुलसीदासजी ने कुछ पदों का निर्माण हिन्दी संस्कृत की मिश्रित पदावली द्वारा किया है तथा उसमें भी संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है जैसे-'विनयपत्रिका' में 'श्री रामचंद्र कृपालु भज मन हरन भवभय दारुनं' या "जयति भरुदंजनामोद मंदिर नतग्रीवसुग्रीव दुखैक बंधो" आदि। तीसरे तुलसी की अन्य ब्रज तथा अवधी की रचनाओं में भी पर्याप्त संस्कृत के तत्सम शब्द मिल जाते हैं, जैसे "भद्रदाता समा", "नौमि श्रीराम सौमित्रि साक", "सुमिरामि नर भूपं रूप", "वल्लभं", "दुर्लभं", "करुनाकरं", "भुवनैकभत्ता, जयति वैराग्य विग्यान-वारांनिधे नौमिजनक सुतावरं, भक्ति वैराग्य विग्यान समादान-दम नाम आधीन साधन अनेक आदि। इस तरह तुलसी के काव्यों में संस्कृत पदावली का व्यवहार स्त्रोत स्तुतियों में तो मिलता ही है, उनके अलावा भी तुलसी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को सबसे अधिक मात्रा में अपनाया है।

पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि की शब्दावली- तुलसीदासजी के काव्यों में पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि की शब्दावली को भी पर्याप्त महत्व प्राप्त है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि "प्राय: वीर, रौद्र या भयानक रस का निरूपण करते समय तुलसी ने उक्त भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया है क्योंकि इन भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों के अंतर्गत द्वित्व वर्णों का प्राधान्य होने से उक्त रसों के लिए ये शब्द बड़े सहायक होते हैं। इसलिए तुलसी ने भट्टा, घट्टा, चमकहि, दमंकहि, कटककट्ट, दपट्टहिं खग्ग, अलुज्झि, जुज्फ, उर्वि, पब्बै, बिद्दरनि, उच्छलित, मर्दि, लक्ख, पक्खर, तिक्खन, अच्छ, कच्छ, विपच्छ, कुंभकरन्न, बोल्लहिं, डोल्लहि, रघुप्पति, दसरथ्य, लक्खन, परब्बत आदि का प्रयोग किया है। इन शब्दों के कारण नाद-सौंदर्य के साथ-साथ ओज गुण एवं रौद्र तथा वीर रस की व्यंजना में बड़ी मदद मिलती है।"

विदेशी भाषाओं के शब्द- तुलसीदासजी ने जिस शब्दावली को अपनाया है उसमें विदेशी शब्दों को भी पर्याप्त अनुराग प्रदान किया गया है। विदेशी शब्दों के अंतर्गत उर्दू तथा फारसी के शब्दों को भी लिया जा सकता है। ऐसे शब्दों के प्रयोग का कारण न सिर्फ तत्कालीन शासन व्यवस्था थी, वरन् यह भी था कि उस समय ये शब्द दैनिक जीवन में पर्याप्त काम में आते थे। ऐसी स्थिति में तुलसीदासजी ने यदि विदेशी शब्दों को अपना लिया और उन्हें अपनी अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए उचित समझा तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द प्रयोग देखिए-गरुर, गुमान, गनी, गरीब, साहेब, रहम, गरीब निवाज, गरीबी खसम, कलई, सीपर, सवील, जहान, कागज, बख्शीश, रुख, गरदन, ख्वार, शोर, हवाले, खलक, हल्क, कहरी, बहरी, दिरमानी, हबूब, फहम, हलाकी, मिसकीन आदि अनेक अरबी, फारसी एवं तुर्की शब्दों का प्रयोग किया है। इनमें से कुछ शब्दों में देशी प्रत्यय लगाकर भी इन विदेशी शब्दों का व्यवहार किया गया है। जैसे दग-गाई मिसकीनता, अलायक, सरीकता, हलाकी आदि।

प्रांतीय भाषाओं के शब्द- डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि तुलसी की रचनाओं में प्रांतीय भाषा की शब्दावली भी देखने को मिलती है। उनके शब्द हैं कि "तुलसी की रचनाओं में उत्तरी भारत में विभिन्न प्रांतों की भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे-दारु। नारि (गर्दन), म्हाको, मेला, सारयो, पूजि, ठोकि-ठोकि खये राजस्थानी के शब्द मिलते हैं और जून, लाधे (प्राप्त किया) मूकिये (छोड़िये), मोंगी (मीन) आदि शब्द गुजराती के मिलते हैं। ऐसे ही वैसा (बैठा), पारा

(सका), खटाई (निभती) आदि शब्द यदि बंगला के मिलते हैं, तो पंवारो, अवकलत आदि शब्द मराठी के भी मिल जाते हैं।"

हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द- तुलसी की भाषा में ब्रज तथा अवधी बोली की शब्दावली का व्यवहार तो पर्याप्त मात्रा में हुआ ही है और पर्याप्त सुंदरता के साथ हुआ है। किन्तु इनके अतिरिक्त हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द भी मिल जाते हैं। ऐसे शब्दों में सरल (सड़ा हुआ), दिहल (दिया) और घायल (दौड़ा), सूतल (सोया) राउर, रावरी, तहवां, लोइ, लोई (लोग) आदि भोजपुरी बोली के शब्द आते हैं, तेरी, मेरी तुम्हारा, हमारा देखो, तपु किया, शरण आया, सोर मचा, लीजिये, कीजिए, गई, देना आदि खड़ी बोली के शब्द प्रयुक्त हुए हैं तथा सुआर, बागत (घूमत हुए) आदि बघेली तथा छत्तीसगढ़ी के शब्द भी मिलते हैं।

पूरबी हिन्दी बोली तथा छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों के कुछ शब्द भी गोस्वामी जी ने प्रयुक्त किये हैं। बघेली के 'सुआर' का संकेत पहले ही आ गया है। एक दूसरा शब्द "बागत" लीजिए। बघेल में इसका अर्थ होता है-"घूमते हुए"। गोस्वामीजी ने इसी अर्थ का प्रयोग कई प्रसंगों में किया है। "मानस" में प्रयुक्त 'कुराई' (गढ्ढा) इस समय भी मध्यप्रदेश में प्रचलित है।

भोजपुरी के प्रति भी गोस्वामीजी तटस्थ नहीं थे। फलतः उन्होंने इसे भी सम्मानित किया। 'मानस' हृदय में डुबकी लगाकर यह भी कृतकृत्य हो गयी है। देखिए-'सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कपि गगन पथ घायल।' 'रौरे और राउर' (आप, आपका) का प्रयोग तो बराबर हुआ है। राम के दरबार में जाने वाली 'पत्रिका' में भी भोजपुरी के 'सरल' (सड़ा हुआ) एवं 'दिहल' के प्रयोग हुए हैं। इसके साथ ही बंगला के कुछ शब्द भी देखिए-'सकाल' (सबेरा), और 'थांको' (ठहराना) का प्रयोग भी बाबाजी ने किया है। देखिए-'अवधेस के द्वारे सकारे गई' रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होई।

देशज शब्दावली- गोस्वामीजी की भाषा के विशाल कोश में कुछ देशज शब्दों की उपनिधि भी सम्मानपूर्वक रक्षित है। इसी से उनकी रचनाओं में "डोंगरे", "डांग", "गोड़", "पेट", "खोरी", "टाटे", "हिसिषा", "डहकि", "बिसूरना", "लवाई", "ढहोरों", "ढारई", "मीट", "अवढर", "डावर", "कांकर", "जोइनि", "गुडी", "डंसाई", "हेरी", "लुकाई", "झारि", "ठट्टा", "ठग", "टहल", "धमोई", "झोपड़ी" आदि अनेक देशज शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ये शब्द भी बोलचाल में बराबर चलते हैं।

गोस्वामीजी ने ठेठ और तद्भव शब्दों को प्रचलनशीलता के अतिरिक्त इस कारण से भी प्रयुक्त किया है कि उनके द्वारा कहीं-कहीं किसी वस्तु स्थिति, अवसर या व्यक्ति की बड़ी ही नैसर्गिक अभिव्यक्ति होती है। कथन की सत्यता निम्न रेखांकित शब्दों से हो जाएगी-

पानि कठौता मरि लेइ आवा।

× × ×

कंद मूल फलः भरि भरि दोना।

× × ×

आजु दीन्हि विधि बनि भलि मूरी।

× × ×

शब्द शक्तियां- तुलसीदासजी ने अपनी भाषा को अधिक से अधिक आकर्षक तथा प्रेषणीयता से युक्त बनाने के लिए शब्द शक्तियों का प्रयोग भी किया है। लक्षणा और व्यंजना के प्रयोग में भी तुलसीदासजी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। उदाहरण के लिए-लक्षणा के ये प्रयोग देखिए-'करत गगन को गेंडुआ','जारिकै हीयो','जाहिगें चाटि दिवारी को दीयो','बयो लुनियतु','जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को' आदि पदों में लक्षणा का प्रयोग हुआ है। इसके साथ ही तुलसी में व्यंजना शक्ति

का प्रयोग भी अत्यधिक मात्रा मे मिलता है। जैसे-'जेई वाटिका बसति तहं खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन' अथवा 'स्वांस समीर भेंट भई भौरेहु','तेहि मग पग न धरयो तिहुं पौन' कहकर सीता की विरह विदग्ध दशा की सुंदर व्यंजना की गयी है। ऐसे ही ससि ते सीतल मोको लागै माई री तरनि कहकर तुलसी ने गोपियों की विरहावस्था की मार्मिक व्यंजना की है।

लोकोक्तियां और मुहावरे- लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग भी तुलसी की भाषा की सफलता का द्योतक है। कहीं-कहीं तो इन्होंने इनका प्रयोग बहुतायत से किया है। ध्यान देने की बात यह है कि तुलसी ने इनके प्रयोग के लिए ज्यादा प्रयत्न नहीं किया है। जहां भी ऐसे प्रयोग आये हैं वहां वे भाषा की प्रेषणीय शक्ति को बढ़ाते हैं। स्पष्टीकरण के लिए-'धोबी कैसो कूकर, न घर को न घाट को','घान को गांव पयार ते जानिय','खाती दीप मालिका ठठाइत सूप हैं','आपने चना चबाह हाथ चाटियत हैं','त्यों-त्यों होइगी गरुई ज्यों-ज्यों कामिरि भीजै','दूध को जरयो पियत फूंकि-फूंकि मह्यो हौ','जस काछिय तस चाहिय नांचा','तसि पूजा चाहिए जस देवता','सूझ जुआरिहि आपन दाऊ','बाजु सुराग कि गांडर तांती','रहत न आरत के चित-चेतु', आदि लोकोक्तियों का प्रयोग मिलता है तथा 'जैहें बारह बाट','कहब जीभ करि दूजि','ठग के से लाडू खाये','पानी भरी खाल है','मुंह लाइ मूंडहि चढ़ी','मीजौ गुरु पीठ','हमहू कहब अब ठकुरसुहाती','गालु बड़ तौरे','खेत के से धोखे','छोटे बदन कहहुं बड़ी बातां','जीवन पाउंन पाछै धारहीं','पुतरो बांधि हैं','पिपीलिकनि पंख लागो','तज्यौ दूध माखी ज्यों','कोढ़ में की खाज','भौतबा भौर को हौ','बूझयो राग बाजी नीति','पाके छत जनु लाग अंगारू','डासत ही गई बीत निसा' आदि अनेक मुहावरों का सुंदर एवं सजीव प्रयोग हुआ है।

अन्य विशेषताएं- तुलसी की भाषा का अध्ययन करने के बाद अब कुछ ऐसी विशेषताओं का उल्लेख भी जरूरी प्रतीत होता है, जिनके कारण उनकी भाषा अधिक मार्मिक, अधिक प्रभावशाली और ज्यादा अर्थयुक्त हो गयी है। ऐसी विशेषताओं में भावानुकूल शब्दों, वर्ण-मैत्री के आधार पर अर्थ चमत्कार की सृष्टि, सहज वाक्य-विन्यास, शब्द चयन की सटीकता, नाद-सौंदर्य और चित्रमयता को लिया जा सकता है। तुलसीदासजी ने जहां विषय की अनुकूल भाषा को समृद्ध किया है वहीं भावानुकूल शब्द सौष्ठव पर भी पर्याप्त ध्यान दिया है। गीतावली में कोमल भावों को ही प्रधानता दी गई है। अत: वहां माधुर्य गुणयुक्त पदावली का प्रयोग अधिक हुआ है। ओज गुणयुक्त पदावली, वीर, रौद्र और वीभत्स रसों के अनुकूल पड़ती है। कवितावली ओज गुण से युक्त रचना है। प्रसाद गुण प्राय: सभी रसों का उपकारक है। मानस में प्रसाद गुण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। यद्यपि यह सही है कि रामचरित मानस में सभी भाषाओं के गुण मिलते हैं। इसका कारण यही है कि इस काव्य में सभी रसों की निष्पत्ति हुई है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने तुलसी की पद रचना विषयक एक अन्य विशेषता की ओर भी ध्यान दिलाया है। वे वर्ण-मैत्री के आधार पर अर्थ चमत्कार उत्पन्न करने की बात कहते हैं। उदाहरणार्थ ये पंक्तियां देखिए-

जौ पटतरिए तीय महु सीया। जग अस जुबति कहां कमनीया॥
गिरा मुखर तुन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥

सहज वाक्य विन्यास- **अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद के भूपति लै निकरो।**

-कवितावली

शब्द चयन- **फटिक सिला मृदु विसाल, संकुल सुरतरु तमाल**
ललित लता जाल हरति छबि बितान की।

-गीतावली

नाद सौंदर्य- **कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।**

-मानस

चित्रमयता- **सुभग सरासन नायक जीरे।**

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कह सकते हैं कि तुलसीदासजी का भाषा पर अचूक अधिकार था। वे अपने काव्य में जहां एक ओर संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग करने में सफल हुए हैं, वहीं दूसरी ओर विभिन्न बोलियों के शब्दों का प्रयोग करके उन्होंने अपनी बहुज्ञता तथा प्रतिभा का परिचय भी दिया है। डॉ. राजपति दीक्षित ने उचित ही लिखा है कि-"सांस्कृतिक समन्वय के अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने युग की दोनों प्रधान भाषाओं की परिधि को बृहत करके उनमें यथा संभव निकटता तथा सामंजस्य स्थापना का कार्य भी बड़ी कुशलता से किया। दोनों भाषाओं को अपना रूप संवारने और संकीर्णता को छोड़ने के निमित्त उनमें परस्पर स्पृहरणीय आदान-प्रदान कराया। इसी से उनकी उत्कृष्ट ब्रजभाषा की रचनाओं में जैसी पूरबी प्रयोग भले तरह आहत हुए हैं वैसे ही अवधी की सर्वोत्कृष्ट कृति 'मानस' में ब्रजभाषा, उसकी विभाषा तथा बोलियों तक के शब्द संस्कृत किये गये हैं। ऐसा करके भी उन्होंने दोनों भाषाओं की मौलिक सत्ता पर, उनकी एकरूपता पर किसी भी प्रकार का कुठाराघात नहीं किया है, यह भी हमें नहीं भूलना चाहिए।"

आधुनिक संदर्भ में रामचरित मानस की प्रासंगिकता और उसके महत्व का मूल्यांकन

रामचरितमानस रूपी विश्व काव्य में तुलसी की भक्तिपरक, सांस्कृतिक तथा आदर्श से युक्त दृष्टि का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। आधुनिक संदर्भ में रामचरितमानस की प्रासंगिकता क्या है। इस संदर्भ में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान तो ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि रामचरितमानस आज से 400 वर्ष पहले लिखा जाने पर भी आधुनिक युग में अपना महत्व रखता है। इसके विपरीत कुछ विद्वान ऐसे हैं, जो यह कहते हैं कि रामचरितमानस की आधुनिक परिवेश के संदर्भ में चर्चा करना अनुचित है क्योंकि कथाकाल, कृति का रचनाकाल तथा आधुनिककाल तीनों की कड़ियां समांतर रखी जाएं तो प्रत्येक कड़ी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होगी। कथाकाल त्रेतायुग के संदर्भों को व्यक्त करता है। इसका रचनाकाल मुस्लिम शासकों के अधीन जीवन बिताने वाले पराधीन भारतवासियों के दु:खदर्द की तस्वीर प्रस्तुत करता है और आधुनिक काल नयी चेतना को ग्रहण करता हुआ प्रतीत होता है।

आधुनिक परिवेश- आधुनिक परिवेश से अभिप्राय हमारे आजकल के परिवेश से है। रामचरितमानस जिस युग की रचना है और जिन स्थितियों, मन:स्थितियों, जीवन पद्धतियों और विचारधाराओं को प्रस्तुत करता है वे आज क्रमश: विलुप्त होती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में रामचरितमानस की प्रासंगिकता अथवा आधुनिक संदर्भों में उसकी उपयोगिता का प्रश्न एक सीमा तक कम महत्वपूर्ण हो जाता है। इतने पर भी यह सच है कि आधुनिक युग में हम जिन विकृत, विषम तथा पाश्चात्य प्रभाव से उत्पन्न भौतिक सभ्यता की छाया में अपना जीवन बिता रहे हैं, उससे हम न सिर्फ खोखले हो गये हैं वरन् अपनी संस्कृति से भी हाथ धो बैठे हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में आवश्यकता इस बात की है कि हम पुन: किसी ऐसे सांस्कृतिक दृष्टिकोण को ग्रहण करें जो आधुनिक विकृतियों के बीच भी हमें सही रास्ता दिखा सके। कहने की आवश्यकता नहीं कि रामचरितमानस एक ऐसा ही ग्रंथ है जो आधुनिक संदर्भों में निरंतर विघटित होते जाते मान-मूल्यों को फिर से नयी शक्ति प्रदान करता दिखाई देता है। आज समाज में आदर्श झूठे माने जाने लगे

हैं। संस्कृति व्यर्थ का बोझ बन गयी है। हमारी आस्थाएं डगमगाने लगी हैं, विषमता का दौर इतनी तेजी से घूमता दिखाई दे रहा है कि हम न सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर टूट गये हैं, अपितु सामाजिक और पारिवारिक स्तर पर भी निराश होकर खालीपन का अनुभव कर रहे हैं। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि किसी भी काल और किसी भी परिस्थिति में मनुष्य आस्था का संबल छोड़कर अपना जीवन नहीं चला सकता है। फिर आज हम अपने आस्थावादी दृष्टिकोण को भूलकर अपनी जीवन यात्रा को कैसे पूरी कर पाएंगे? इसमें संदेह है। आधुनिक जीवन की ये विशेषताएं तभी समताओं में बदल सकती हैं जबकि हम अपनी संस्कृति, अपने आदर्शों तथा अपने स्वस्थ मान मूल्यों को पुनः ग्रहण करें।

रामचरितमानस एक ऐसा ही ग्रंथ है जो आधुनिक युग की विषमताओं तथा रिक्तताओं के बीच हमें नैतिक, मानसिक, भौतिक और आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करता है। यह वह ग्रंथ है, जो हमें अस्वीकार से स्वीकार, अनास्था से आस्था, मिथ्या विश्वासों से सत्य प्रतीतियों तथा विघटन से संगठन की ओर ले जाता है। मानस की आधुनिक संदर्भों में इससे अधिक प्रासंगिकता और उपादेयता क्या हो सकती है? आज भी गोस्वामीजी के हृदय से निकला यह रत्न हमारे जीवन को नयी दिशा प्रदान करता है। इसी से यदि हम यह कहें कि रामचरितमानस तत्कालीन युग का दर्पण भी है और आधुनिक युग की दीपक भी तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आदर्श और अनुकरणीय चरित्र- रामचरितमानस में आदर्श तथा अनुकरणीय चरित्रों की व्यंजना हुई है। इसमें आए पुरुष पात्र अगर शक्ति, शील, सौंदर्य, आत्मीयता और मानवता के प्रतिनिधि पात्र हैं तो त्याग, महिमा, परिव्रत तथा धर्म की साकार प्रतिमाओं के रूप में नारी पात्रों को लिया जा सकता है। तुलसीदासजी ने मानस में दो तरह के चरित्रों की अवतारणा की है। एक चरित्र तो वे हैं जो सात्विक वृत्तियों से युक्त हैं तथा सत्य के पथ पर आरूढ़ हैं। इन चरित्रों का सबसे बड़ा संबल इनका त्याग और उज्ज्वल चरित्र है। ऐसे चरित्रों में राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को लिया जा सकता है। इसके विपरीत इसी श्रेणी में वे चरित्र भी आते हैं जो सेवा भाव, त्याग तथा बंधुत्व व मैत्री के प्रतीक हैं। ऐसे चरित्रों में हनुमानजी, अंगद और सुग्रीव आदि को लिया जा सकता है। मानस में कुछ ऐसे चरित्र भी हैं जो राक्षसी वृत्तियों के बाहर तथा असत प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। ऐसे चरित्रों में रावण, कुंभकरण, मेघनाद आदि प्रसिद्ध हैं। तुलसीदासजी ने इन दोनों ही वर्गों के चरित्रों में संघर्ष दिखाकर असत पर सत की अथवा रावणत्व पर रामत्व की विजय चित्रित की है। इस चित्रण से कवि ने यह संदेश दिया है कि विषम से विषम परिस्थितियों में भी मनुष्य को सत्य का रास्ता नहीं छोड़ना चाहिए। भले ही थोड़ी देर के लिए असत् की विजय हो जाए, किन्तु अंत में सात्विक वृत्तियां ही विजय प्रदान करती हैं। राम का चरित्र एक ऐसा चरित्र है जो नर होकर भी नारायण और नारायण होकर भी नर की विशेषताओं से युक्त है। तुलसीदासजी ने राम की अनेक स्थितियों का चित्रण किया है। वस्तुतः तुलसीदास ने हलाहल विष का पान कर अमृत वितरित किया है।

राम के जीवन के कई प्रसंग ऐसे हैं जो आधुनिक युग में अपना महत्व प्रकट करते हैं। उनके बनवास का प्रसंग आधुनिक शब्दावली में 'पैलेस-कांसप्रेसी' का उदाहरण भले ही हो, किन्तु तत्कालीन राष्ट्रीय वातावरण में समन्वय और संतुलन की भावना का द्योतक भी है। राम ने आर्य और आर्यतर संस्कृति को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया। राम के जीवन का यह रूप आज के भारतीय जीवन के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनेक ऐसे प्रसंग भी रामचरितमानस में आए हैं जो हमारे आधुनिक जीवन में पर्याप्त प्रतीत होते हैं।

उपयोगी प्रसंग- रामचरित मानस मानव मूल्यों का काव्य है, संस्कृति का पालना है और हमारे जीवन को स्वस्थ दिशा प्रदान करने वाला ग्रंथ है। इसमें ऐसे कई उपयोगी प्रसंग आए हैं जो

आधुनिक युग की भौतिक, कृत्रिम और विनाशकारी परिस्थितियों में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। राम का वन-गमन, पिता की आज्ञा का पालन भर नहीं है, उससे अधर्म का विनाश करने की भावना भी विद्यमान है। बड़ों के प्रति सम्मान भावना, बराबर वालों के प्रति स्नेह और बंधु-बांधवों के प्रति भाई-चारे की भावना का जो रूप मानस में आया है, उसकी हमें आवश्यकता है। आज के युग में जहां प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे को खा लेना चाहता है तथा अपने स्वार्थ की पूर्ति में अंधा होकर भाई-भाई का वध करना चाहता है, वहां रामचरितमानस में अभिव्यक्त निस्वार्थ भावना और भ्रातृत्व भावना हमारा दिशा निर्देश कर सकती है। इसी प्रकार मित्रता का जो आदर्श रामचरितमानस में प्रस्तुत किया गया है वह भी आधुनिक युग में पर्याप्त महत्व रखता है। जब तुलसीदासजी कहते हैं "जे न मित्र दुख होई दुखारी, तिनहि बिलोकत पातक भारी।" अथवा "निज दुख गिरि सम रज कर जाना, मित्र के दुःख रज मेरु समाना।" तो निश्चय ही वे मित्रता का आदर्श उपस्थित करते हैं। ऐसी मित्रता की आवश्यकता हमें आज भी है। सेवक तथा दास का जो संबंध अथवा कहें कि भक्त और भगवान का जो संबंध रामचरितमानस में निरूपित हुआ है, वह भी आज की आवश्यकता प्रतीत होता है। ऐसा कोई युग नहीं रहा जबकि दुष्ट लोग नहीं रहे हों किन्तु ऐसा भी युग नहीं हुआ जबकि दुष्टों का दमन नहीं हुआ हो। इतना ही नहीं यह भी सच है कि दुष्टों का दमन सदैव श्रेष्ठ और आदर्श व्यक्तियों द्वारा ही किया गया है। ऐसा करने के लिए हमें स्वस्थ मूल्यों को ग्रहण करना पड़ा है। रामचरितमानस भी हमें ऐसा संकेत देता है। दुष्ट का वध हर परिस्थिति में अनिवार्य होता है, उसे क्षमा करना सांप को दूध पिलाने के बराबर है। तुलसीदासजी ने मानस के द्वारा यही संदेश दिया है। इसके अतिरिक्त रामचरितमानस में कुछ ऐसे प्रसंगों का विधान भी हुआ है कि जो हमें हमारी संस्कृति को और हमारे जीवन को सीधा प्रभावित करते हैं। ऐसे प्रसंगों में चित्रकूट का मिलन प्रसंग, राम का वन गमन प्रसंग, सीता हरण प्रसंग, राम का राज्याभिषेक, सुग्रीव और राम की मित्रता और ऐसे ही अनेक प्रसंग, मानस में आये हैं, जो हमें परिस्थिति के अनुकूल आचरण करने और सत्य के मार्ग पर दृढ़ रहने का संदेश देते हैं इन्हीं प्रसंगों में यह भी सांकेतित है कि मनुष्य को चाहिए कि वह कर्तव्य, त्याग, आत्मीयता, धर्म तथा सत्य को अपनाता हुआ अपनी जीवन यात्रा पूरी करे। इस तरह स्पष्ट है कि रामचरितमानस में अनेक ऐसे प्रसंग आए हैं जो हमारे आधुनिक जीवन में भी अत्यंत उपयोगी हैं।

राजनैतिक दृष्टि और रामचरितमानस- स्वतंत्र भारत के राजनैतिक जीवन में रामराज्य का उल्लेख पर्याप्त महत्व रखता है। आजादी के पूर्व महात्मा गांधी ने भी रामराज्य का स्वप्न देखा था। तुलसीदास ने भी अपने ग्रंथ मानस में रामराज्य का वर्णन किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आज से 400 वर्ष पहले जिस राम राज्य की कल्पना तुलसीदासजी ने की थी, उसी की कल्पना हमें गांधी की विचारधारा में भी मिलती है। आधुनिक राजनैतिक दृष्टि से रामचरितमानस महत्वपूर्ण है। उसमें परिवार, समाज, नीति, शिक्षा तथा राष्ट्र आदि जीवन के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। यह ठीक है कि गोस्वामीजी ने राम राज्य की कल्पना दशरथ के पुत्र के रूप में की है, पर उसमें गोस्वामीजी का चिंतन भी निहित है। यह चिंतन आधुनिक समाजवादी व्यवस्था के मेल में है। आज का भारतीय जीवन स्वतंत्र अवश्य है, किन्तु राम राज्य का कोई स्वरूप अभी तक नहीं उभर पाया है। यह तभी संभव है जबकि मानस में बताये गये अभाव, प्रतिशोध, हिंसा रक्तपात और शोषण आदि को खत्म कर दिया जाये तथा हर नागरिक अपने-अपने कर्तव्य का पालन करे। वस्तुतः राम राज्य ऐसा आदर्श जनतंत्र है, जहां पारस्परिक मतभेद सहर्ष स्वीकार कर लिये जाते हैं। इतना ही नहीं राम राज्य की धारणा लौकिक सुख, साधन और वैचारिक स्वतंत्रता के आदर्श की धारणा भी है। इसके अंतर्गत न तो वर्ग संघर्ष है और न ही शोषण। राम राज्य का जो आदर्श मानस में आया है, वह वर्गभेद और हिंसात्मक साधनों को मिटाकर साधन और साध्य की पवित्रता में विश्वास करता है।

कर्मयोग का प्रतिपादन- रामचरितमानस में व्यापक जीवन धर्म की प्रतिष्ठा की गयी है। मानस के अनुसार कर्मयोग जीवन का दृढ़ संकल्प है। आज हमें कर्म की जरूरत है। कर्म से विरक्त रहकर हम न तो जीवन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं तथा न अपने जीवन में धर्म का निर्वाह ही। रामचरितमानस से जिस कर्मयोग का प्रतिपादन किया गया है, वह आधुनिक जीवन में भी पर्याप्त उपादेय प्रतीत होता है। संसार की उपेक्षा न करने की प्रेरणा दी गई है। आधुनिक युग में जब स्वार्थ का बोलबाला है तो मानस में प्रतिपादित व्यापक जीवन धर्म ही हमारी मदद कर सकता है। आदर्श जीवन में मानस धर्म के अनुसार लोक और परलोक, संग्रह और त्याग, भोग और वैराग्य दोनों का समन्वय है। वस्तुत: मानस में जिस धर्म का प्रतिपादन किया गया है वह कर्म में शून्य नहीं है, अत: जीवन को दीप्त बनाने की क्षमता उसमें विद्यमान है। वर्तमान जीवन के संदर्भ में मनुष्य का जीवन अगर कोई दृढ़ आधार प्राप्त कर सकता है तो वह आधार मानस में प्रतिपादित कर्मयुक्त धर्म से ही संभव है। आज के जीवन में सत्य, नियम और त्याग की आवश्यकता है। उन्हीं गुणों से युक्त होकर राष्ट्र का जीवन अमर हो सकता है, हमारे चरित्र की रक्षा हो सकती है और वर्तमान जीवन में जो अराजकता व्याप्त है, वह भी इसी धर्म के अनुपालन से दूर हो सकती है।

लोक मर्यादा की भावना- रामचरितमानस में जिस लोक मर्यादा को महत्व दिया गया है, उसकी हमें आधुनिक जीवन में पर्याप्त आवश्यकता है। माता-पिता, पुत्र-पिता, माता-पुत्र, गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक और पत्नी-पति आदि के आदर्श एवं अनुकरणीय संबंधों का चित्रण मानस में मिलता है। यही वे संबंध हैं जिनके आधार पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक मूल्यों की स्थापना होती है। इन्हीं मूल्यों को अपनाकर हम आधुनिक जीवन में उन्नति कर सकते हैं। रावण की लंका को अगर भौतिक समृद्धि का प्रतीक मान लिया जाए तो राम तत्व आत्मबल का प्रतीक है। संसार में इन दोनों शक्तियों का महत्व है। आज भी ये दोनों तत्व समाज में विद्यमान हैं। रावण के भौतिकवादी दृष्टिकोण को पराजित करने के लिए आज भी हमें राम तत्व की उतनी ही जरूरत है जितनी पहले रही होगी।

समन्वय परक दृष्टिकोण- आधुनिक भारत में अनेक प्रकार के विरोध तथा वैषम्य दिखाई देते हैं। इन सभी को समन्वयात्मक दृष्टिकोण से ही खत्म किया जा सकता है। तुलसीदासजी का वर्णन उनकी समन्वयात्मकता की भूमिका पर लिया गया है। उसमें सामाजिक, पारिवारिक, जातिगत, संप्रदायगत, दार्शनिक और इसी तरह के कई समन्वयों की ओर संकेत किया गया है। व्यक्ति और समाज के जिस समन्वय की हमें आज आवश्यकता है वह मानस में विद्यमान है। भाषागत समन्वय भी हमें आज अपेक्षित है। रामचरितमानस में इस भाषागत समन्वय को भली-भांति देखा जा सकता है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने ठीक ही लिखा है कि "यद्यपि तुलसी का मानस पारमार्थिक दृष्टि से लिखा गया है और वह तत्व ज्ञान का निरूपण करने वाला ग्रंथ है जिस पर नीति तथा भक्ति, यहां तक कि स्वयं रामकथा निर्भर है। राम मात्र सत्ता है, तथा रामायण प्रवर्तमान सत्ता है और उसका विषय उपनिषदों जैसा रहा है जो महाकाव्यात्मक पद्धति और पौराणिक शैली में व्यक्त हुआ है तो भी वह लौकिक जीवन से असंपृक्त नहीं है। वह भारत की भक्त प्रवण जनता के गले का कंठ-हार है, लेकिन वह संतप्त जीवन को शीतलता प्रदान करने का सर्वोत्तम साधन भी है।"

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि रामचरित मानस आधुनिक संदर्भों में पर्याप्त उपयोगिता लिये हुए है। इसमें अनेक चरित्र हैं, जो आधुनिक जीवन में अनुकरणीय हो सकते हैं, अनेक ऐसे आदर्श हैं जो हमारा दिशा निर्देश कर सकते हैं, अनेक मानवीय संबंध हैं जिनके सहारे हम अपने जीवन को सही दिशा दे सकते हैं, कई ऐसी धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक मान्यताएं हैं जिनके आलोक में हमारा आज का तमसावृत्त जीवन प्रकाश की ओर अग्रसर हो सकता

है और अनेक ऐसे संकेत और संदेश हैं जिनके सहारे हम अपने जीवन को पवित्र से पवित्र उदात्त से उदात्त और सुदृढ़ से सुदृढ व शस्त से प्रशस्ततर बना सकते हैं। ऐसी स्थिति में रामचरितमानस की उपादेयता आधुनिक संदर्भों में भी पर्याप्त दिखाई देती है। इस ग्रंथ में प्रतिपादित जीवन मूल्य हमें कर्म का संदेश देते हैं, नीति का उपदेश देते हैं और करणीय व अकरणीय कार्यों का ज्ञान कराते हैं। इतना ही नहीं इस ग्रंथ में मित्रता का आदर्श, भ्रातृत्व का संबंध, सत्संगति की महिमा तथा साधु और असाधु पुरुषों से मिलने वाले हानि लाभ का उल्लेख भी किया गया है। ऐसे उल्लेखों से हम भली-भांति समझ सकते हैं कि हमें जीवन में क्या करणीय और क्या वरणीय है। वस्तुत: रामचरितमानस न केवल आज हमें उपादेय प्रतीत होता है, अपितु आगे आने वाले वर्षों में भी अत्यंत उपयोगी लगता रहेगा इसमें कोई संदेह नहीं है। इसका कारण यही है कि रामचरितमानस जिस भाव भूमि पर खड़ा है वह लोकमंगल, मानवतावाद, प्रजातांत्रिक दृष्टकोण, नीतिपरक, आदर्शों और अविस्मरणीय चरित्रों की भूमि है। ऐसी स्थिति में रामचरितमानस की उपादेयता से वही इंकार कर सकता है जिसमें विश्वास की कमी है, निष्क्रियता जिसकी धरोहर है तथा अधर्म, संदेह, स्वार्थ और छलना भरे संबंध ही जिसके जीवन के मूल मंत्र हैं।

'रामचरितमानस' के आधार पर तुलसी के ज्ञान और भक्ति विवेचन

तुलसीदास विश्व के श्रेष्ठतम कवियों में से हैं। अपने ग्रंथों के माध्यम से उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को भी संप्रेषित किया है। अनुभव की अद्वितीयता तथा भाषा की सरलता की दृष्टि से रामचरितमानस उनके कवि व्यक्तित्व को राष्ट्रीय व्यक्तित्व में बदल देता है। उसकी विनम्रता ही उनकी महानता का प्रमाण है। अपने समकालीन साहित्य के प्रति अति सजग तुलसी लोक जीवन से प्राप्त अनुभवों को सामान्यीकृत करके जनता के सलाहकार बन गये हैं। मानस की कथा या उसका कथ्य सात कांडों में विभाजित करके संप्रेषित किया गया है। सभी कांडों की अपनी-अपनी महत्ता है पर सभी में एक स्वर सर्वत्र मिलता है तथा वह है भक्ति का स्वर। तुलसी भक्त थे-सच्चे सगुणोपासक भक्त थे। यों उनकी संत प्रकृति उनके ज्ञानी, उपदेशक और लोक मंगल का विधान करने वाली विशेषताओं को भी संकेतित करती है। ऐसी स्थिति में कई विद्वानों ने उन्हें ज्ञानी भक्त कहा है।

मानस में ज्ञान और भक्ति का निरूपण- "रामचरितमानस का उत्तर कांड ज्ञान तथा भक्ति के निरूपण को अधिकाधिक सफलता से प्रस्तुत कर सका है। सामान्यत: तो तुलसी ने ज्ञान और भक्ति दोनों को ही महत्व दिया है, पर इन दोनों को मोक्ष की दाता तथा सांसारिक कष्टों की निवारिका शक्तियां माना है। ऐसा मानकर उन्होंने दोनों में कोई अंतर स्वीकार नहीं किया है।" ज्ञानहि भगतिहि नहिं कछु भेदा। अभय हरहि भव संभव खेदा" कहकर तुलसी ने दोनों की उपयोगिता तथा महत्ता को स्वीकार किया है।

ज्ञान का निरूपण- 'मानस' का उत्तर कांड अनेक कारणों से महत्वपूर्ण है। इसमें ज्ञान का निरूपण भी बड़े कौशल के साथ किया गया है। ज्ञान, विज्ञान, योग और वैराग्य पुरुष वर्ग में आते हैं जबकि भक्ति स्त्री वर्ग में आती है। पुरुष स्वभावत: प्रबल, प्रतापी तथा शक्तिमान होता है जबकि नारी स्वभावत: जड़ और निर्बल होती है। यही कारण है कि विरागी, त्यागी और धीर बुद्धि मनुष्य स्त्री का त्याग कर सकते हैं, पर जो कामों, विषयों में लीन और भगवान् के विमुख होते हैं वे नारी को त्याग नहीं सकते हैं। माया और भक्ति दोनों ही स्त्री रूपा हैं। अत: भक्ति को माया नहीं मोहती है। भक्ति ईश्वर को प्रिय है। अत: माया भक्ति के समस्त संकोच करती रहती है। अत: जो ज्ञानी तथा विरागी होते हैं वे प्राय: भक्ति की याचना किया करते हैं। माया से मुक्ति अनिवार्य है और इस मुक्ति के दो ही प्रमुख साधन हैं-ज्ञान और भक्ति।

प्रश्न यह है कि ज्ञान क्या है? जो भी हो इतना निश्चित है कि ज्ञान प्राप्ति सहज साधन न होकर कठिन साधना है। तुलसीदास ने ज्ञान-दीपक के अंतर्गत ज्ञान के समस्त अंगों का वर्णन किया है। ज्ञान का दीपक जब जल जाता है तो अज्ञान का घनीभूत अंधकार नष्ट हो जाता है तथा व्यक्ति का हृदय पवित्र, कोमल और दिव्यभावों से भर जाता है। तुलसी ने इस ज्ञान दीपक का वर्णन इस तरह किया है-

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरि कृपा हृदय बस आई॥
जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥
तेइ तृन हरित जरै जब गाई। भाववच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
जोइ निवृत्ति पात्र विस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥
पोष मरुत तब छमां जुडावै। धृति सम जामनु देई जमावै॥
मुदिता मतै विचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेई नवनीता। विमल विराग सुभग सुपुनीता॥
जौग अगिनि करि प्रकट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्ध सिरावै ग्यान घृत ममतामल जरि जाइ॥
तब विज्ञान रूपिनी बुद्धि विसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ।
तीन अवस्था तीनि गुण तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय संवारि पुनि बाती करैं सुगाढ़ि॥
ऐहि विधि लेसै दीप तेज रासि विज्ञानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि अज्ञान और अविज्ञा के विनाश के लिए ज्ञानदीपक का जलना या जलाना अनिवार्य होता है। ज्ञान वह साधन है जिसके सहारे मनुष्य अज्ञान की ग्रंथि के बंधन से मुक्त हो जाता है। मनुष्य की यह मुक्ति माया को सहन नहीं होती है। अत: वह मानव-मुक्ति के मार्ग में विविध विघ्न डालती है, पहले तो माया कई श्रद्धियों से मनुष्य को भ्रमित करती है। तुलसी ने लिखा है कि "ये ऋद्धि-सिद्धि कल बल और छल करके ज्ञान-दीपक के पास जाती हैं और अपने अंचल की वायु से दीपक को बुझा देती है। अगर बुद्धि परम सयानी हुई तो वह अनहित समझ कर उनकी तरफ दृष्टि नहीं करती। अगर उस माया जन्य विघ्न से बुद्धि को बाधा न हुई तो फिर देवता विघ्न डाला करते हैं। समस्त इंद्रियों के द्वार इस हृदय रूपी घर के झरोखे हैं तथा हर झरोखे पर इंद्रियों के देवता धरना दिये बैठे रहते हैं। ये देवता जब विषय रूपी हवा झौंका आता हुआ देखते हैं, तब झट हठपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं और उससे विज्ञान-दीपक बुझ जाता है, उस समय न गांठ छूटती है और न प्रकाश रहता, अपितु विषय रूपी पवन से बुद्धि भी व्याकुल हो जाती है। इन इंद्रिय देवताओं को ज्ञान अच्छा नहीं लगता। जब विषयों की समीर बुद्धि को बेचैन कर देती है तब भला ज्ञान-दीपक को कौन फिर से जला सकता है? ऐसी स्थिति में जीवन अज्ञानी होकर अनेक तरह के सांसारिक कष्ट भोगने लगता है। इसी कारण माया को अत्यंत दुस्तर कहा गया है।"

इस विवेचन से निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं-

1. ज्ञान के संबंध में कहना, समझना तो कठिन है ही, उसकी साधना तो और भी कठिन है। कारण घुणाक्षर न्याय से यदि किंचित् सफलता मिल भी जाये तो पुन: अनेकानेक विघ्न आकर सताते रहते हैं-

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥

2. ज्ञान का मार्ग न केवल कठिन है अपितु कृपाण की धार के समान है। इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती है। इतने पर भी जो व्यक्ति इस ज्ञान के मार्ग को निर्विघ्न साध लेता है वही अंतत: केवल्य पद को या मुक्ति रूपी पद को प्राप्त कर लेता है-

'ग्यान को पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। संत पुरान निगम आगम बद॥

3. ज्ञान के इस निरूपण में तुलसी ने ज्ञान-मार्ग की जटिलता और दुरूहता का अत्यंत रोचक तथा मार्मिक वर्णन किया है और यह प्रमाणित किया है कि ज्ञान मोक्ष का साधक तो है पर कठिनता का द्योतक भी है।

4. माया ज्ञानी को शीघ्र ग्रस लेती है। ज्ञानी माया को जीत लेने का प्रयत्न करता है तथा माया भी बाधा डालने में अपना बल दिखाती है।

5. जीवात्मा दीपक के बुझ जाने में अविधा के तम में घिर जाता है, और अपनी मुक्ति नहीं कर पाता है। माया के प्रचंड प्रभाव से मान, मद और पाशविक प्रवृत्तियां बढ़ती जाती हैं तथा ज्ञान का प्रकाश धुंधला पड़ता जाता है।

6. ज्ञान-दीपक की तैयारी का विधान भी अत्यंत जटिल है। यदि वह साध भी लिया तो "इंद्रिय द्वार झरोखा नाना" की स्थिति आ जाती है।

इस तरह स्पष्ट है कि ज्ञान का मार्ग अत्यंत जटिल और दुरूह है। मोक्ष के लिए ज्ञान की तुलना में भक्ति अधिक सुगम और सरल है। अत: तुलसी ने इसे ही वरणीय और आचरणीय बतलाया है।

भक्ति निरूपण- तुलसीदास ने ज्ञान की तुलना में भक्ति को अधिक सुगम, सरल तथा व्यावहारिक बतलाया है। उनकी मान्यता है कि भगवान की शक्ति ही वह साधन है जिससे बिना प्रयत्न और प्रयास किये हुए ही संसार की मूल अविद्या का नाश हो जाता है। भोजन का उदाहरण देते हुए तुलसी ने कहा है-

भगति करन बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा॥
भोजन करिअ तृपित हित लागी। जिमि सो असन पचवह जठरागी॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न लाहि सोहाई॥

तुलसीदास ने जिस भक्ति को महत्व दिया है वह 'सेवक सेव्य' भाव की है और चिंतामणि के समान है। कारण राम-भक्ति रूपी चिंतामणि जिसके हृदय में निवास करती है उसके हृदय में दिन-रात ऐसा परम प्रकाश रहता है कि फिर उसे दीपक, घृत और वर्तिका किसी की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है-

सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि॥
भजेहु राम पद पंकज अस सिद्धांत विचारि॥

भक्ति रूपी चिंतामणि के प्रभाव से मोह की दरिद्रता पास नहीं आती है। लोभ की वायु से इस भक्ति-मार्ग का प्रकाश बुझ नहीं पाता है क्योंकि मणि का प्रकाश इतना प्रबल होता है कि शेष प्रकाश स्वत: ही निष्प्रभ हो जाते हैं। अविद्या का प्रबल अंधकार मिट जाता है तथा मद आदि कीड़े भी इसके पास नहीं आते हैं। कवि ने कहा है कि जिसके पास यह भक्ति चिंतामणि रहती है उसे कोई भी दु:ख नहीं भोगना पड़ता है।

तुलसीदास ने भक्ति-चिंतामणि के प्रभाव तथा महत्व को तो प्रतिपादित किया ही है, यह भी संकेत दिया है कि इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? उन्होंने कहा है कि भक्ति रूपी चिंतामणि को राम कृपा से पाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य उपायों की चर्चा करते हुए तुलसी ने कहा है कि "वेद-पुराण पवित्र पर्वत है, नाना तरह की राम-कथाएं उन पर्वतों की सुंदर खाने हैं। सज्जन इन खानों के मर्म को जानने वाले हैं। उनकी बुद्धि ही कुदाली है। ज्ञान और वैराग्य इसके दो नेत्र हैं। जो प्राणी भाव सहित इसे खोदता है वह निश्चय ही सब सुखों की खान इस भक्ति चिंतामणि को प्राप्त कर लेता है।" कवि के शब्द हैं-

"सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भट भेरे॥
पावन पर्वत वेद पुराना। राम-कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान विराग नयन उरगारी॥
भाव सहित जो खोदइ पानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥

तुलसी की धारणा है कि समस्त साधनों का फल राम-भक्ति ही है। राम भक्ति का मार्ग अत्यंत सरल, सुखदायक और फलदायक है जबकि ज्ञान का मार्ग अत्यंत जटिल व विविध बाधाओं से युक्त है। ज्ञान-साधना में ध्यान लगाने का वैसा ठोस आधार भी नहीं है जैसा कि भक्ति में है। भक्ति स्वतंत्र है-विविध सुखों की खान है। इसे पाने के लिए सत्संग जरूरी है और संतों का संपर्क पुण्यों से मिलता है। राम की भक्ति ही श्रेष्ठ है तथा शंकर के भजन के बिना कोई मनुष्य राम भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। इस भक्ति को प्राप्त करना सरल है। इसके लिए स्वभाव की सरलता, मन की पवित्रता, संतोष, शुभाचरण, मैत्री और धैर्य की जरूरत होती है। राम की भक्ति से ही निर्वाण पद प्राप्त होता है-

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान॥
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूंछ विषान॥

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि तुलसीदास ने 'मानस' के 'उत्तर कांड' में ज्ञान और भक्ति का विशद विवेचन किया है। यह विवेचन यह प्रमाणित करता है कि ज्ञान और भक्ति दोनों ही मुक्ति दिलाने वाले साधन हैं पर ज्ञान का मार्ग कठिन, अव्यावहारिक और विविध विधि-निषेधों और जटिलताओं से युक्त है जबकि भक्ति का मार्ग सरल, व्यावहारिक और उपयोगी है। अत: ज्ञान और भक्ति में तत्वत: कोई विशेष अंतर न मानते हुए भी तुलसी ने दोनों की पृथक सत्ता स्वीकार की है तथा ज्ञान की तुलना में भक्ति को श्रेष्ठ प्रमाणित किया है।

बिहारी के दोहे श्रृंगार-नीति-भक्ति तीनों भाव धारा में पगे हुए हैं।

उत्तर - बिहारी की कविता कबीर, सूर तुलसी की भांति ही लोकप्रिय है। बिहारी के श्रृंगार, नीति और भक्ति के दोहों का प्रयोग लोक उक्तियों के रूप में होता है। वे जीवन दर्शन और लोक अनुभव से भरे हुए हैं। बिहारी ने दोहा जैसे छोटे छंद में लोक जीवन का अनुभव गागर में सागर की तरह भर दिया है। जिस बात को अनेक कवि बड़े-बड़े छन्दों में भी सफलता से नहीं कह सके, उसे बिहारी

दोहे की दो पंक्तियों में कह गये। उनका कथन पाठकों के हृदय पर नावक के तीर के समान मार्मिक चोट करता है -

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर॥

नावक के तीर का अर्थ गांसी के उन बाणों से से है, जो अपने लक्ष्य वेध में मार्मिक चोट करते हैं। गांसी के तीर छोटे होते हैं और एक ऐसी नलिका के द्वारा चलाये जाते हैं कि लक्ष्य चूकने की सम्भावना नहीं रहती। बिहारी के दोहे भी छन्दों में सबसे छोटे होते हुए भी अनुभूति और कलात्मक गठन के कारण मार्मिक प्रभाव डालते हैं। वे हृदय पर स्थायी कसक छोड़ देते हैं। 'सतसई' के दोहे काव्य जौहरी द्वारा चुने हुए हीरे हैं, जिनमें भाव-तीक्ष्णता और अर्थ गम्भीरता फूट-फूट कर भरी हुई है -

सतसैया के दौहरे, चुने जौहरी हीर।
भाव भरे तीछन खरे, अर्थ भरे गम्भीर॥

बिहारी के दोहों में 'नूतन पदे-पदे' का सौन्दर्य है। इस सौन्दर्य का अंकन टीकाकार और आलोचक बराबर करते आ रहे हैं, परन्तु उसकी सौन्दर्य जनित नूतनता बढ़ती ही जाती है। इस परिवर्तित सौन्दर्य के कारण ही बिहारी सतसई के सम्बन्ध में खींचा हुआ सौन्दर्य चित्र फीका लगने लगता है -

लिखन बैठि जाकी सबिहि, गहि-गहि गर्व गरूर ।
भये न केते जगत केते, चतुर चितरे क्रूर॥

अन्य कवियों की कविता भी सौन्दर्य पूर्ण है, किंतु बिहारी की कविता कामिनी का सौन्दर्य तो कुछ और अनोखा है-

अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरूनि समान।
वह चितवनि औरैं कछु छिहि बस होत सुजान॥

मनोवैज्ञानिकता तीक्ष्णता और सूक्ष्म निरीक्षण- बिहारी रीति कालीन कवि थे। रीतिकालीन कविता में साज-श्रृंगार और शास्त्रोचितता पर विशेष बल दिया जाता था। बिहारी ने अपनी रचनाओं को युगानुकूल संवारा ही नहीं अपितु उनमें नवीन सौन्दर्य की भी उद्भावना की। उनके दोहे भाव, अनुभूति, छन्द, अलंकार और भाषा के संतुलित एवं समन्वित प्रभाव से नावक के तीर की तरह हृदय पर चोट करते हैं। उनके दोहे सूक्ष्म निरीक्षण से भरे हुए हैं। जेठ दोपहरी में छाया किस प्रकार छोटी हो जाती है, इस पर भी बिहारी की पैनी दृष्टि पड़ती है -

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन मांह।
देखि दुपहरी जेठ की, छाहों चाहति छांह॥

बिहारी किशोर और किशोरियों के हृदय के पारखी थे। उनकी प्रत्येक चेष्टा तक उनकी पहुंच है। अपने इसी गुण के कारण वे जो कुछ कहते हैं, वह हृदय में गहराई से प्रवेश कर जाता है। नायक नायिका के केश सुलझा रहा है। इससे नायिका में जो सात्विक भाव होता है, उसे भी बिहारी की सूक्ष्म दृष्टि देख लेती है -

रह्यो गुह्यो बेनी लखयो, गुहिबो को त्योनार।
लागे नीर चुचान जे, नीठि सुखाये बार॥

नायिका और नायक देव-दर्शन को नंगे पैर जा रहे हैं। नायक सीधे रास्ते को छोड़कर कंकरीली पथ पर चल रहा है। नायक यह इसलिए करता है, क्योंकि कंकड़ी के पैरों में चुभने से

छबीली छैल जो नाक मोड़ कर सीधी करती है, उसमें उसे आनन्द आता है, तभी तो वह भूल-भूल कर कंकरीले पथ पर चलता है। बिहारी की पैनी दृष्टि यह सभी कुछ देख लेती है -

नाक मोरि सीबी करें, जिती छबीली छैल।
त्यों-त्यों भूलि गहै बहै, प्यो कंकरीली गैल॥

बिहारी अपने सूक्ष्म निरीक्षण और कल्पना की समाहार शक्ति से दोहे की दो पंक्तियों में ही ऐसा 'गागर में सागर' भर देते हैं कि पाठक देखकर चकित रह जाता है। निम्न उदाहरण में गोवर्धन धारण का पूरा घटनाक्रम है। कृष्ण ब्रज रक्षा के लिए गोवर्धन धारण करते हैं। किन्तु किशोरी राधा को देखते ही उन्हे सात्विक भाव पैदा होता है। इससे पर्वत डगमगाने लगता है। यह कम्पन राधा को देखने में हुआ है। वहां सभी गुरूजन उपस्थित हैं, अत: श्रीकृष्ण मन में लज्जित हो जाते हैं। बिहारी इस लम्बी-चौड़ी घटना को दोहे की सीमा में बांध देते हैं, साथ ही कृष्ण के मन के भाव जान लेते हैं -

डिगती पानि डिगुलाल गिरि, सखि सब ब्रज बेहाल।
कम्प किसोरी के दरस, खरे सकाने लाल॥

बिहारी की उपदेश पूर्ण अन्योक्ति हृदय को बेध देती है। महाराज जयसिंह नवोढा रानी के प्रेम-पाश में पड़कर सारा राजकाज छोड़ बैठते हैं। उनके मन्त्री तक उनसे कहने का साहस नहीं कर सकते थे। बिहारी का निम्न दोहा जादू का सा असर करता है, वह उसकी मोह-निन्द्रा को तोड़ देता है - **नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु यहि काल।**
अली-कली ही सौ बिध्यो, आगे कौन हवाल॥

इस उक्ति का प्रभाव कितना अचूक है। महाराज जयसिंह की तरह ही यह पाठकों के हृदय की गहराई में प्रवेश कर जाता है।

बिहारी के दोहों में प्रभाव तथा अनुकूलता असीम है। उनके दोहे नई सूझ और सूक्ष्म-निरीक्षण एवं जीवन के मार्मिक तत्वों के नयनाभिराम गुलदस्ते हैं। उनकी अन्योक्तियों में जीवन का गहरा अनुभव समाया हुआ है। सांसारिकता में पड़ा हुआ मनुष्य जाल में फंसे हुए हरिण के समान है। हरिण जाल से निकलने के लिए जितना ही उछलता कूदता है, उतना ही अधिक फंसता जाता है। मनुष्य भी मायाजाल से मुक्ति पाने के लिए जितना ही हाथ-पैर फेंकता है, उतना ही उसमें लिप्त होता जाता है -

को छुट्यो यहि जाल परि, कन कुरंग अकुलात।
ज्यों-ज्यों सुरझि भाग्यो चहत, त्यों-त्यों उरझत जात॥

बिहारी ने नपे-तुले शब्दों और आकर्षक भाषा में जीवन और लोकानुमत के मासिक तथ्य को अभिव्यक्त कर दिया है। उनके दोहों में इतनी अधिक तीव्रता है कि वे सामान्य व्यक्ति पर भी अपने प्रभाव की अमिट छाप छोड़ देते हैं। बिहारी के काव्य में नीति, भक्ति, श्रृंगार, समाज, लोक आदि का ज्ञान बड़े ही प्रभावकारी ढंग से अभिव्यक्त हुआ है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बिहारी ने अपने दोहों में गागर में सागर भर दिया है। वे अर्थ - गम्भीर्य, भाव व्यंजकता, सुसंगठन, कसावट, अलंकार, भावों की तीव्रता एवं पैनेपन तथा प्रभावोत्पादकता के समन्वित प्रभाव के कारण हृदय में नावक के तीर की तरह चुभकर स्थायी भाव छोड़ देते हैं।

मुक्तक के क्षेत्र में बिहारी अद्वितीय हैं।

रीतिकालीन कवियों में सर्वाधिक लोकप्रिय कवि बिहारी सर्वश्रेष्ठ मुक्तककार हैं। उन्होंने दोहा जैसे छोटे से छंद में विविध भाव भर दिये हैं। श्री वियोगी हरि लिखते हैं-'इनका (बिहारी का) एक-एक दोहा टकसाली तथा अनमोल रत्न है। ये रत्न क्षीरसागर के रत्नों से कहीं अधिक चोखे और अनोखे हैं।'

बिहारी ने श्रेष्ठ मुक्तकों की रचना की। मुक्तक रचना के लिए कवि की सरस प्रसंगों तथा सरस पदावली का चयन करना होता है।

गागर में सागर- बिहारी के लिए प्रसिद्ध है कि उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। इसका अभिप्राय है कि बिहारी ने कम शब्दों में अधिक बात कही है।

विशेषताएं- मुक्तक काव्य की दृष्टि से या गागर में सागर भरने की दृष्टि से बिहारी की निम्नलिखित विशेषताएं देखी जा सकती हैं-

(i) **सरल, प्रसंग एवं सरस पदावली-** बिहारी ने अनेक सरस प्रसंगों की अवधारणा की है, साथ ही सरस पदावली में अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। नायिका किस तरह बालों के नीचे अंगुली डालकर नंदकुमार को देखती है, देखिए-

कंज नयनि अंजनु दिये बैठी, ब्यौरति बार।

(ii) **कल्पना की समाहार शक्ति-** बिहारी की कल्पना एक से एक अनूठी है। नखशिख वर्णन, प्रकृति चित्रण, संयोग-वियोग और भक्ति-नीति के वर्णनों में कवि की यह शक्ति स्पष्ट देखी जा सकती है। नायिका के झांकने की कवि ने कितनी सुंदर कल्पना की है-

सटपटाति सी ससि-मुखी पट घूंघट मुख ढांकि।
पावक-झर सी झमकि कै गई झरोखा झांकि॥

(iii) **समास शैली-** समास शैली के प्रयोग में कवि बिहारी कुशल हैं। उन्होंने बहुत कम शब्दों में गहन तथा सूक्ष्म भावों को बहुत सरलता से प्रस्तुत कर दिया है-

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भर भौन में करत है, नैननु ही सो बात॥

(iv) **उक्ति वैचित्र्य-** बिहारी की उक्ति वैचित्र्य प्रशंसनीय है। उन्होंने लक्षणा, व्यंजना और वक्रोक्ति अलंकार की सहायता से काव्य में चमत्कार तथा प्रभाव उत्पन्न किया है। उन्होंने अभिप्रेत अर्थ की प्रतीति के लिए शब्द के लक्ष्य अर्थ पर बल दिया है। यथा-

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरति चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हियै नई वह रीति॥

(v) **सूक्तियों एवं अन्योक्तियां-** बिहारी की सूक्तियां तथा अन्योक्तियां दर्शनीय हैं। इनमें उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का वर्णन किया है। बिहारी की अन्योक्तियां अपनी मार्मिक व्यंजकता में बेजोड़ है। यथा-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल।
अली कली ही सो बिंध्यौ आगे कौन हवाल॥

(vi) **उपालंभ एवं व्यंग्य-** बिहारी के उपालंभ और व्यंग्य सराहनीय हैं। प्रभु के उद्धार न करने पर तुरंत कह उठते हैं कि हे जगत गुरु ! हे जग नायक आपको भी शायद संसार की हवा लग गई है-

कब को टेरतु दीन रट होत न स्याम सहाय।
तुमहूं लागी जगद गुरु ! जगनायक ! जगबाय॥

(vii) **विभावों और अनुभावों की सुंदर योजना-** बिहारी ने विविध भावों, विभागों तथा अनुभावों की सुंदर योजना की है। भौंहे चढ़ाना, कटाक्ष करना, धीरे-धीरे मुस्कराना, सौह (शपथ) खाना, छिपकर प्रिय को देखना और नेत्रों से बात करना आदि कवि ने सुंदर चित्रण किया है। यथा-

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौह करे, भौहनु हंसे दैन कहै नटि जा॥

(viii) **सूक्ष्म कलात्मक उपलब्धि-** अनुभूति की गंभीरता, भाषाशैली की सरसता तथा अलंकारों के विविध प्रयोग कवि की सूक्ष्म कलात्मक उपलब्धि है। अभिलाषा, शंका, लज्जा तथा औत्सुक्य आदि विविध भावों की एक साथ अभिव्यक्ति और अलंकारों का समन्वित प्रयोग दृष्टव्य है। काव्यलिंग असंगति और विरोधाभास का समन्वित एक उदाहरण देखिए-

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहीं कोय।
ज्यौं-ज्यौं डूबे स्याम रंग त्यौं-त्यौं उज्जवल होय॥

निष्कर्ष

इस प्रकार बिहारी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से वास्तव में गागर में सागर भर दिया है। उन्होंने सरस प्रसंगों का चयन करके कल्पना की समाहार शक्ति, समास शैली, उक्ति वैचित्र्य, व्यंग्य और उपालंभ के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। उनके दोहे वास्तव में नायक के तीर हैं, जो देखने में छोटे लगते हैं, परंतु घाव गंभीर करते हैं। डॉ. हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में कह सकते हैं-'जिस कवि की कला ने जनसाधारण से लेकर राजा महाराजा तक सामान्य हिंदी ज्ञान रखने वालों से लेकर संस्कृति के प्रकांड पंडितों तक, ब्रज क्षेत्र से लेकर गुजराती, मराठी आदि प्रांतीय भाषाओं के क्षेत्र तक देश से लेकर विदेश तक आलोचकों को रस से आप्लावित किया हो, वह कोई सामान्य सृष्टा नहीं हो सकता। निःसंदेह बिहारी हिन्दू के सर्वश्रेष्ठ मुक्तकार हैं तथा भारत के यशस्वी महाकवि और विश्व के आदरणीय कलाकार के रूप में सदैव याद किये जायेंगे।'

बिहारी के संयोग श्रृंगार की विशेषताएं

बिहारी के काव्य की आत्मा श्रृंगार है। श्रृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का विस्तार निरूपण हुआ है। संयोग श्रृंगार के चित्रण में बिहारी ने मौलिक उद्‌भावनाएं भी की हैं। संयोग क्रीड़ाओं के यथार्थ वर्णन के आग्रह में कहीं-कहीं वे मर्यादा का भी अतिक्रमण कर गये हैं। श्रृंगार रस की व्यंजना ध्वनि के माध्यम से हुई है। वियोग ऊहात्मक पद्धति में होने के कारण कहीं-कहीं अस्वाभाविक हो गया है। बिहारी ने यद्यपि लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे, किन्तु उनकी दृष्टि रीति परम्परा में अस्वीकृत मान्यताओं पर अवश्य रही है।

भाव व्यंजना की दृष्टि से बिहारी सतसई बहुत सफल है। आचार्य शुक्ल का कथन है - बिहारी की रस व्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभवों के विधान में दिखाई पड़ता है। अनुभावों और भावों की ऐसी सुन्दर योजना कोई श्रृंगारी कवि नहीं कर सका। बिहारी एक ही दोहे में अनेक शारीरिक हावों और अनुभावों की योजना कर देते हैं। निम्न दोहे में होव भारी सजीव मूर्तियां हैं :-

बतरस लालच लाल की , मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनि हंसै, देन कहै नटि जाइ।
नासा मोरि नचाई दृग, करी ककी को सौंह।
काटे सी कसकै हियै, गड़ी कटीली भौंह॥

बिहारी के श्रृंगारिक दोहों में संचारी भावों की व्यंजना भी ऐसी मर्मस्पर्शिणी है कि वे सहृदयों को आकर्षित कर लेते हैं। यहां स्मरण संचारी की बड़ी स्वाभाविक और मार्मिक व्यंजना हुई है -

"मन है जात अजों वहै, वाजमुना के तीर।"

बिहारी सतसई में वीर, हास्य और शान्त रस के दोहे भी हैं। इनमें शान्त रस के दोहे सर्वाधिक हैं। इनकी संख्या सौ से अधिक है। बिहारी का भक्ति निरूपण कोई दार्शनिक मतवाद या साम्प्रदायिक आधार नहीं है। भक्ति सम्बन्धी दोहे सामान्य भक्ति वर्णन के ही रूप में हैं। परन्तु कुछ दोहों में भक्ति हृदय के दैन्य और मार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति बहुत सुन्दर हुई है-

हरि कीजतु विनती यहै, तुमसे बार हजार।
जिहिं-तिहिं भांति डरयौ परयौ रह्यो दरबार॥
कीजै चिन सौई तरौ, सब पतितनु के साथ।
मेरे गनु, औगुन गगन, गनौ न गोपीनाथ॥

मिर्जा राजा जयसिंह की प्रशंसा में बिहारी ने जो दोहे लिखे, उनमें स्थायी भाव उत्साह की व्यंजना हुई है। अतः उनको वीर रस के अन्तर्गत माना जा सकता है -

यौं दल काढ़े बालक तैं, तैं जयसिंह भुवाल।
उदार अघासुर कैं परैं, ज्यौं हरि गाइ गुवाल॥

इन दोहों में वीर रस की पूर्ण सामग्री नहीं है। ये भाव दशा तक ही पहुंच पाते हैं।

'बिहारी सतसई' में कुछ दोहे हास्य रस के भी हैं, परन्तु हास्य उच्च कोटि को नहीं पहुंच पाया है। अग्र दोहे में हास्य रस संचारी भाव बनकर रह गया है -

परतिय दोषु पुरान सुनि, लखि मुलकी सुखदानि।
कसु करि राखि मिश्र हूं, मुंह आई मुसकानि॥

बिहारी के दोहों में तैंतीसों संचारी भाव मिल जाते हैं। निम्न उदाहरणों में उत्साह, पुलक और हर्ष संचारी भाव हैं -

मृगनैनी दृग का फरक, उर उछाह तन फूल।
बिनही प्रिय आपम उमंगि, पलटन लगी दुकूल॥

भाव-संधि, भाव शांति, भावोदय और भाव-शबलता के प्रचुर उदाहरण बिहारी सतसई में मिल जाते हैं। निम्न दोहे में भाव संधि है। चार और क्रीड़ा इन दो भावों की संधि है। ऐसे उदाहरण रीतिकारों के ग्रन्थों में भी कम मिलेंगे।

करे चाह सौं चटकि कै, खरैं उडोहै नैन।
आज नवाएं तरफरत , करत खुंदी सी नैन॥

निम्न दोहे में एक साथ ही कई भाव उत्पन्न हो रहे हैं। नायक और नायिका दोनों ही पक्षों में भाव शवलता है -

कहत नटत, रीझत खिझत, मिलन-खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सों बात॥

भाव व्यंजना या रस-व्यंजना के अतिरिक्त बिहारी ने वस्तु व्यंजना का भी सहारा लिया है। शोभा या कान्ति, सुकुमारता, विरह-ताप, विरह में क्षीणता वर्णन में कहीं-कहीं वस्तु व्यंजना अत्युक्ति की करामात बनकर रह गई है।

बिहारी की भाव व्यंजना के सम्बन्ध में प्रो. विश्वनाथ प्रसाद के शब्दों में निष्कर्ष निम्न प्रकार दिया जा सकता है - बिहारी की वस्तु व्यंजना अधिकतर रूढ़ि के सहारे पर की गई है और जहां उसमें ऊहा अधिक है, वहां वह खिलवाड़ के रूप में ही है। पर भाव व्यंजना के सम्बन्ध में यह नहीं

कहा जा सकता। भाव की व्यंजना अपनी प्रकृति पर चलती है और उसमें रस-मग्न करने की क्षमता अधिक है।

बिहारी की भाषा शैली

बिहारी की भाषा कोमल, सरस, रसीली और श्रृंगार से शोभित नायिका के समान मन को मुग्ध और चमत्कृत कर देने की शक्ति रखती है। उनका शब्द चयन विषय और प्रसंग के पूर्ण अनुकूल है। उनके काव्य में न तो कहीं भरती का एक भी शब्द मिलता है और न कहीं उन्होंने तुक मिलाने के लिए शब्दों को तोड़ा मरोड़ा ही है। बिहारी थोड़े-से-थोड़े शब्दों में अधिक बात कह देने में अपना सानी नहीं रखते। वह एक-एक शब्द को खराद तराश कर उसे नगीने के समान अपने दोहे में जड़ देने की कला में अत्यन्त कुशल हैं।

उनकी भाषा मूल रूप से ब्रजभाषा है परन्तु उन्होंने अरबी, फारसी तथा बुन्देलखंडी के शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग इतनी कुशलता के साथ किया है कि वे कहीं भी क्लिष्ट नहीं बन सके हैं। हमें स्थान-स्थान पर उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों की सजीवता, मुग्धता और पटुता के दर्शन होते हैं। भाषा की ऐसी सुघड़ता, विलक्षणता और चातुर्य रीतिकाल के अन्य किसी भी कवि की कविता में नहीं मिलता। बिहारी की भाषा, सारे काव्य दोषों से मुक्त है। इनकी भाषा इतनी प्रांजल, शक्तिवान और प्रवाहमयी है कि दोहे का भाव स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है।

बिहारी की शैली समास - पद्धति की है, जिससे भाषा में चुस्ती और शक्ति आ गयी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'समाहार-शक्ति' कहा है। बिहारी ने विषमता मूलक व्यापारों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। प्रेम के क्षेत्र में असंगति का उदाहरण देते हुए उन्होंने अपनी समास पद्धति का विलक्षण शक्ति और प्रभाव प्रदर्शन किया है। देखिए -

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हिए, दई, नई यह रीति॥

यहां उन्होंने दृगों का आपस में उलझना, कुटुम्बों का टूटना, हृदयों का मिलना, दुष्टों के हृदय में गांठ पड़ना आदि क्रियाओं का, जो परस्पर विरोधी हैं, प्रेम हो जाने पर क्या होता है दिखाया है। बिहारी अपनी भाषा द्वारा ऐसा ही चमत्कार उत्पन्न कर देने में अत्यन्त कुशल हैं। समस्त रीतिकाल में घनानन्द को छोड़कर दूसरा कोई भी कवि ऐसा नहीं मिलता जिसका भाषा पर इतना अबाध अधिकार रहा हो। अत: हम बिहारी को हिन्दी का अत्यन्त उच्च कोटि का महाकवि मान सकते हैं।

(I) बिहारी के काव्य का भाव-पक्ष

बिहारी मुख्यत: श्रृंगार के कवि हैं। यद्यपि वीरता, नीति, भक्ति संबंधी दोहे भी उन्होंने लिखे हैं लेकिन नायिका सौन्दर्य और उसके अनुभावों का वर्णन उनका प्रिय विषय रहा है। श्रृंगार के

संयोग और वियोग दोनों पक्षों में उनका मन 'संयोग वर्णन'में अधिक है। शिवकुमार शर्मा के शब्दों में-

"वे अनुराग के कवि हैं और उनकी वृत्ति अनुराग के मिलन पक्ष में खूब रमी है। संयोग पक्ष की कोई ऐसी स्थिति नहीं, जो बिहारी की दृष्टि से बची हो। रूप दर्शन से आकर्षण होता है। रूप के ये वर्णन नायिका के हैं, इस दृष्टि से नायिका के आकर्षण का वर्णन स्वाभाविक था पर बिहारी ने ऐसा नहीं किया। नायिका ही कवि की दृष्टि-बिन्दु है।"

(1) रूप वर्णन- बिहारी ने नायिका का रूप वर्णन किया है जो नख-शिख वर्णन के अंतर्गत आता है, उसमें उसके अंगांग, वेशभूषा का वर्णन आदि समाविष्ट है। इनका नेत्र वर्णन, मुख सौन्दर्य वर्णन, वेशभूषा वर्णन बहुत प्रसिद्ध हैं। नेत्र वर्णन का सुप्रसिद्ध उदाहरण दृष्टव्य है-

(अ) **नेत्र वर्णन-** **"रस सिंगार मंजन किए, कंजन भंजन दैन।**
अंजन रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन॥"

श्रृंगार रस में नहाए नेत्र सुन्दरता में कमलों का भी मान-मर्दन करते हैं। वे अंजन के अभाव में सहज कजरारे हैं और इतने चंचल हैं कि अपनी चंचलता के कारण खंजन को भी नीचा दिखाते हैं।

(ब) **वेशभूषा (कंचुकी) वर्णन-**
"दुरत न कुच विष कंछुकी चुपरी सादी सेद।
कवि अंकन के अरथ लौं, प्रकट दिखाई देत॥"

सुगंधित, सादी और श्वेत कंचुकी में नायिका के स्तन छिपाए नहीं छिपते। कविता के अर्थ के समान स्पष्ट दिखाई देते हैं।

(2) प्रेम वर्णन- नायक-नायिका के प्रेम वर्णन में कवि ने इसकी पूरी सामग्री परोस दी। नायक को देखने झरोखे पर जाती लज्जाशील नायिका का यह चित्र देखिए-

(अ) **चेष्टा-** **"सटपटाति सी ससि मुखी मुख घूंघट पर ढांकि।**
पवक-झर सी झमकिकै गई झरोखा झाकि॥"

नायिका की अभिलाषा दशा का चित्रण है। वह लपककर झरोखे से नायक की छवि देख जाती है, इसलिए सटपटाती है। लज्जा के कारण झांकने में हिचकिचाती भी है। यहां अनुभावों की संपर्क योजना है। त्रास, बीड़ा, उत्सुकता आदि संचारी भाव हैं। यह उदाहरण सरल काव्य का उदाहरण है-

(ब) **प्रेम क्रीड़ा-** **"बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।**
सौंह करे भौहनु हँसे, देन कहे नट जाए॥"

पर स्वर हास-परिहास से भी प्रेम का प्रसार होता है। राधा बात करने के लालच से मोहन की मुरलिया छिपा देती है। मांगने पर कसम खाना, भौंहों से हंसना, मांगने पर इंकार करना आदि चेष्टाओं, भंगिमाओं से मोहन को रिझाने की चेष्टाएं करते हुए प्रियतम से बात करने का अवसर बढ़ा देती है।

(3) वियोग वर्णन- विरह के अनेक हृदयकारी चित्र बिहारी ने उकेरे हैं पर उनकी अधिकांश उक्तियां उहात्मक एवं अतिश्योक्तिपूर्ण हो गई हैं परंतु भाव-प्रवण चित्रों की भी कमी नहीं। इन पदों में विरह वर्णन स्वाभाविक, प्रभावोत्पादक और मनोवैज्ञानिक बन पड़ा है। पिया की पाती पाकर प्रसन्न प्रोषित पातिका नायिका की चेष्टाएं देखिए-

(अ) **पिया की पाती-** **"करलै चूमि चढ़ाई सिर उर लगाई भुज भेंटि।**

लहि पाती प्रिय की लखति बांचति धरति समेटि ॥"

कभी वह उस पत्र को चूमकर अपने सिर पर चढ़ाती है, कभी अपने हृदय से लगाती है, कभी उसे अपने कोमल बाहुपास में बांधती है और कभी वह उसे पढ़ने लगती है और कभी उसे संभालकर रख लेती है।

(ब) **भाव प्रवणता-** **"कागद पर लिखत न बनै कहन संदेश लजात।**
कहि है सब तेरौ हियो मेरे हिय की बात ॥"

'तेरा हृदय मेरे हृदय की सारी बातों को कह देगा।' इस पंक्ति में कितनी स्वाभाविक एवं भाव प्रवणता है। वह क्या-क्या लिखे और क्या-क्या छोड़ दे। अत: विरह व्यथा की अथक अथाह कथा की थाह प्रियतम का हृदय स्वयं पा लेगा।

(4) भक्ति एवं नीति- बिहारी के काव्य में भक्ति एवं नीति आदि विषयों पर भी संक्षेप में किन गहराई से प्रकाश डाला गया है। निम्नांकित उदाहरण उनकी भाव प्रवणता की झलक दिखाने को पर्याप्त है-

(अ) **भक्ति-** **सीस मुकुट कटि काछिनी, उर बैजंती माल।**
रहि वानिक मो मन वसहु, सदा बिहारी लाल ॥'

(ब) **नीति-** **'समै-समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय।'**

बिहारी ने जीवन और जगत के इतने विषयों पर इतना लिखा है कि इनके नाम गिनाने और बिना उदाहरण परिचय देने में ही एक ग्रंथ की रचना हो जाए। हम संक्षेप में कह सकते हैं कि बिहारी ने लगभग सभी रसों पर कलम चलाई है पर श्रृंगार उनका प्रिय रस है। प्रिय विषय प्रेम-सौन्दर्य, श्रृंगार-नायिका भेद वर्णन आदि रहे हैं। दिनकर उनके भाव-पक्ष पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-"बिहारी के दोहों में न तो कोई बड़ी अनुभूति है न कोई ऊंची बात, सिर्फ लड़कियों की कुछ अदाएं हैं। मगर कवि ने उन्हें ऐसे ढंग से विचित्र किया है कि आज तक रसिकों का मन कचोट खाकर रह जाता है।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अन्य रीतिकालीन कवियों की तुलना में बिहारी का भाव-उच्च कोटि का है।

(II) कलापक्ष या कला-सौन्दर्य

बिहारी का कलापक्ष भाषा, शैली, शब्द-गुण, छन्द व अलंकार योजना आदि सभी दृष्टियों से सम्पन्न है।

1. **भाषा-** महाकवि बिहारी की भाषा में वे सभी गुण विद्यमान हैं, जिनकी काव्य भाषा के लिये आवश्यकता होती है। शब्दों का प्रयोग बड़े ही अनूठे ढंग से किया गया है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ उर्दू, फारसी के शब्दों का प्रयोग मिलता है। ब्रजभाषा के साथ-साथ बुन्देली के शब्दों को भी इन्होंने अपनाया है। बिहारी के कटु आलोचक मिश्र-बन्धु ने भी उनकी भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, 'कुछ बातों पर ध्यान देने से विदित होता है कि बिहारीलाल की भाषा बहुत मनोहर है। इन्होंने सभी स्थानों पर लहलाप्रात, मलमलात, जगमगात आदि ऐसे बढ़िया और सजीव शब्द रखे हैं कि दोहा चमचमा उठता है।'

2. **शैली-** बिहारी अपनी सामाजिक शैली के लिये प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावाभिव्यक्ति कर दोहों में अद्‌भुत् कसावट और जड़ावट ला दी है। उनमें गागर में सागर भर देने की अनुपम कला है। उनकी इस सफलता का कारण उनके द्वारा सामान्य

प्रसंगों की स्वीकृति है। बिहारी ने प्रेम के दैनिक जीवन से ऐसे आकर्षक चित्र लिये हैं, जिनके दो-तीन शब्दों को पढ़ते ही पाठक विषय-सामग्री के साथ हो लेता है और पर्याप्त अर्थ समझ लेता है।

3. **माधुर्य गुण-** बिहारी की कविता माधुर्य गुण से पूरित है। उनकी कविता में कोमलकान्त पदावली संजोयी गयी है। फलत: उनके दोहे माधुर्य-गुण से लबालब भरे हुये हैं और ऐसा लगता है कि जैसे वे माधुर्य की पिचकारी-सी चलाते हैं। एक उदाहरण देखिये-

'अधर धरत हरि के परत, ओंठ दीठ पट जोति।'
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्र-धनुष रंग होति॥

4. **लाक्षणिकता और मुहावरे-** लाक्षणिकता भाषा का श्रेष्ठ गुण माना जाता है। कवि इसमें अपनी बात सीधे रूप में न कहकर कुछ भिन्न रूप में व्यक्त करता है। उनकी लाक्षणिक भाषा का प्रयोग देखिये-

'तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरसराग, रति-रंग।
अनबूड़े, बूड़े, तरे, जे बूड़े सब अंग॥'

5. **ध्वन्यात्मकता-** बिहारी के काव्य में ध्वन्यात्मकता का गुण विद्यमान है। ध्वन्यात्मक भाषा के प्रयोग में ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शब्दों में से कोई ध्वनि उत्पन्न हो रही है। यह शब्द-ध्वनि तीन प्रकार की प्राप्त होती है- (अ) रणनात्मक शब्द ध्वनि, (ब) अनुकरणात्मक शब्द ध्वनि, (स) व्यंजक शब्द ध्वनि। रणनात्मक शब्द ध्वनि का एक चित्र देखिये-

'रनित भृंग घंटावली झरति दान मधु नीरु।'
मंद-मंद आवत चल्यौ कुंजरु कुंज समीरु॥'

6. **चित्रोपमता-** बिहारी की भाषा चित्रोपम है। वे अपनी भाषा के द्वारा पाठक के सामने शब्द-चित्र खड़े कर देते हैं। राधा कृष्ण की मुरली छिपाकर रख देती है, क्योंकि वे कृष्ण से बात करना चाहती हैं। इस दोहे में बिहारी का शब्द चित्र देखिये-

'बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करें, भौंहनि हंसे, दैन कहैं नटि जाइ॥'

7. **छन्द-योजना** - कविवर बिहारी द्वारा प्रयुक्त छन्द-दोहा और सोरठा हैं। उन्होंने दोहे रूपी स्तवक में सारी भाव-सुषमा को भर दिया है। इनकी भाषा की समास-पद्धति और विचारों की समाहार शक्ति दोनों ही उत्कृष्ट रूप से दोहे छन्द के लिये सहायक सिद्ध हुयी हैं। इस प्रकार से इन्होंने मुक्त काव्यानुकूल छन्दों का प्रयोग किया है।

8. **अलंकार योजना-** बिहारी रीतिकालीन कवि थे। उनके अलंकार भावों के उत्कर्ष में सहायक होकर ही आये हैं। उन्होंने उनका प्रयोग चमत्कार-प्रदर्शन मात्र के लिये नहीं किया है। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'बिहारी ने अर्थ की रमणीयता का ध्यान बराबर रखा है इसीलिए उनके अलंकार रसोद्रेक में सहायक होकर आये हैं।'

बिहारी के काव्य में शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक और श्लेष का प्रचुर प्रयोग हुआ है। यमक का एक उदाहरण देखिये-

'तौ पर वारौं उरबसी, सुनु राधिके सुजान।
तूं मोहन के उरवसी, है ह्वै उरवसी समान॥'

बिहारी की उत्प्रेक्षायें बहुत मार्मिक हैं। उत्प्रेक्षा योजना में वही कवि सफल हो सकता है, जिसकी निरीक्षण शक्ति तीव्र हो, जिसकी कल्पना उन्मुक्त विचरण करना जानती हो। इस दृष्टि से उत्प्रेक्षा का निम्न उदाहरण देखिये-

'सोहत ओढ़े पीत पट, श्याम सलोने गात।
मनुहूं नील मणि सैल पर आतप परयौ प्रभात॥'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बिहारी अलंकार योजना के धनी थे। पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बिहारी की अलंकार-योजना की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि, 'बिहारी अलंकार-शास्त्र में प्रवीण थे। कहीं-कहीं अलंकारों का ऐसा चमत्कार है, जो लक्षण-ग्रंथ लिखने वालों को नसीब नहीं है। अलंकारों की सफाई बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि सिद्ध करती है।'

उपर्युक्त विवचन से सुस्पष्ट है कि बिहारी के काव्य में भावपक्ष और कला-पक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है और वे उच्चकोटि के सिद्धहस्त कवि थे।

सगुण भक्ति काव्यधारा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास की अनन्यतम घटना है। यह आंदोलन न केवल दो तीन शताब्दियों तक सीमित रहा, अपितु इसने पूरे भारतीय जनमानस को कई शताब्दियों तक प्रभावित किया है। इस आंदोलन के पूर्व भारत में शैवधर्म की प्रधानता थी अधिकांश राजवंश शैव धर्मानुयायी थे। किन्तु आठवीं शताब्दी तक आते-आते शैवों का प्रभाव कम पड़ने लगता है और वैष्णव भक्ति आंदोलन जोर पकड़ने लगता है। दक्षिण भारत में अनेक आचार्यों ने भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का प्रवर्तन करना प्रारम्भ किया, जिनमें सगुण धर्म का प्रचार करने में चार महान आचार्यों का महतीय योगदान है। उनके नाम इस प्रकार हैं रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्बार्क स्वामी। इनके पश्चात् कुछ आचार्य और हुये जिन्होंने वैष्णव धर्म को व्यापक बनाया। इनमें रामानन्द, चैतन्य और वल्लभाचार्य प्रमुख हैं। रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत, मध्वाचार्य ने अद्वैत, विष्णुस्वामी ने शुद्धाद्वैत और निम्बार्क ने द्वैताद्वैत की स्थापना की। इन आचार्यों ने द्वैत सगुण भक्ति धारा को निजी अनुभूतियों एवं शास्त्रीय दार्शनिकता से संवलित किया। इन आचार्यों ने सगुण भक्ति के उस रूप की प्रतिष्ठा की जिनमें मानव हृदय विश्राम भी पाता है और कलात्मक सौंदर्य से मुग्ध और तृप्त भी होता है।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति की दो धारायें प्रवाहित हुईं- निर्गुण और सगुण। इन दोनों धाराओं में मध्यकालीन सगुण सम्प्रदाय वैष्णव धर्म से पोषण प्राप्त करता है। इस सम्प्रदाय की दोनों शाखाओं रामभक्ति धारा तथा कृष्णभक्ति धारा में ईश्वर सगुण है। इन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्ति में से भक्ति को ही उपजीवा के रूप में ग्रहण किया।

सगुण सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि में वैष्णव धर्म और भक्ति का समृद्ध साहित्य है। इस साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ हैं- भगवत् गीता, विष्णु और भागवतपुराण, पांच रात्रि संहितायें, नारद भक्ति सूत्र और शांडिल्य भक्ति सूत्र।

इस धारा की कतिपय विशेषतायें इस प्रकार हैं- (1)ईश्वर का सगुण रूप, (2)अवतार की भावना, (3)लीला रहस्य, (4)रूपोपासना, (5)शंकर के अद्वैतवाद का विरोध, (6)भक्ति क्षेत्र में जाति भेद की अमान्यता, (7)गुरु की महत्ता, (8) भक्ति, (9) जीवन।

सगुण भक्ति धारा की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए प्रोफेसर बृजलाल गोस्वामी ने एक स्थान पर लिखा है, "इस प्रकार मध्यकालीन सगुण काव्य में हिन्दी साहित्य ने उत्कर्ष के चरम बिन्दु को छू लिया है। इसमें मनुष्य की समस्त वृत्तियों के प्रसादन की शक्ति है। इसमें सौन्दर्य धर्म का घातक अथवा द्वेषी बनकर नहीं आता। सौन्दर्य भी भगवान की ही विभूति है। इस साहित्य के

साधकों ने अन्तर और बाह्य वैषम्य की लीला को एक रस कर दिया है। हमें लीला तत्व पर ध्यान मनन पूर्वक करना चाहिए और इसकी गंभीरता की थाह लेनी चाहिए। सगुण भक्ति धारा की तीनों शाखाओं में साम्य एवं वैषम्य समानतायें निम्नानुसार हैं-

समानतायें

1- सगुणोपासना- राम काव्य और कृष्णकाव्य दोनों में ही साकारोपासना का विधान किया गया है। सगुण भगवान के सुगम और फिर भी अगम चरित्र को सुनकर भक्त लोग उसमें अनुरक्त होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड में कहा भी है-

सगुण रूप सुलभ अति, निर्गुण जानि नहिं कोई
सुगम अगम नाना चरित, सुनि-सुनि मन भ्रम होई॥

सूरदास ने भी निर्गुण ब्रह्म की अग्राह्यता एवं सगुणब्रह्म की सरलता की ओर इंगित करते हुए कहा- **रूप, रेख गुण, जाति, जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकित धावे।**
सब विधि अगम विचारहिं ताते, सूर सगुण लीला पद गावे॥

इस प्रकार निरगुनियों के जो भगवान अगुण, अलख और अजहर हैं वही भगवान भक्त के प्रेमवश सगुण रूप धारण करते हैं। इस प्रकार दोनों प्रकार के कवियों ने भगवान के सगुण रूप उपासना को अधिक महत्व दिया है।

2- नाम रूप कीर्तन- सगुण और निर्गुण दोनों ही धारा के कवियों ने भगवान के नाम रूप का स्मरण बड़े ही मनोयोग के साथ किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने बालकाण्ड में भगवान राम के नाम की महिमा का उल्लेख विस्तार से किया है-

नाम रूप गति अकथ कहानी, समुझत सुखद न परति बखानी।
अगुम सगुन विच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।

कृष्णभक्ति धारा के कवियों ने भगवान के नाम जप का महत्व प्रतिपादित किया है।

3- भक्ति का रूप- भक्ति के दो रूप हैं, रागानुगा और वैधी। तुलसीदास ने कहा है कि भगवान अखंड ज्ञान स्वरूप है और जीव मायावश अज्ञानी। गोस्वामी जी के शब्दों में -

ईश्वर अंस जीव अविनाशी, चेतना अमल सहज सुख राशी।
सो मायावास भयउ गोसाई, बंधउ कीर मर्कट की नाई॥

जो भक्त भगवान के प्रति रागात्मक सम्बन्ध रखते हैं उनकी भक्ति को रागानुगा भक्ति कहते हैं। वैधी भक्ति में भक्त की कर्त्तव्य बुद्धि सदैव जागृत रहती है और वह अन्त तक विधि नियमों का पालन करता रहता है। सगुण धारा के दोनों पक्ष राम-भक्ति तथा कृष्णभक्ति के कवियों ने रागानुगा भक्ति का ही सहारा लिया है। हालांकि गोस्वामीजी की भक्ति भाव की है।

4- मोक्ष- सगुण भक्तों की भक्ति का चरम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। भक्त लोग भगवान की भक्ति में लीन होकर अन्त में मोक्ष प्राप्ति करते हैं। उनकी सगुण भक्ति के अनुसार भगवान सगुण अवतार लेकर भक्तों के दुःख दूर करते हैं तथा अन्त में भक्ति से प्रसन्न होकर गोलोकवास बैकुण्ठवास देते हैं। यही इनकी भक्ति की चरम परिणति है।

विभिन्नतायें

(1)रामकाव्य में दास्य भावना की भक्ति को प्रमुखता प्राप्त है तथा उसमें वर्णाश्रम धर्म, कर्मकाण्ड व वेद मर्यादा आदि पर पूर्ण आस्था प्रकट की गई है लेकिन वहीं कृष्णकाव्य में संख्य व

माधुर्य भाव की भक्ति को प्रधानता दी गई है। बल्लाभाचार्य के पुष्टि मार्ग में ब्रह्म व जीव में कोई मर्यादा नहीं है अत: कृष्णभक्त कवि के सखा ही हैं और पुष्टिमार्ग के अनुसार जीव की सफलता कृष्ण लीला में तादात्म्य से ही मानी गई है। इस प्रकार रामकाव्य में यदि लोकरक्षण की भावना की प्रधानता प्राप्त है तो कृष्ण काव्य में लोकरंजन की प्रमुखता है।

(2) कृष्ण काव्य की अपेक्षा रामकाव्य में जनसंपर्क भावना अधिक है, क्योंकि स्वान्त: सुखाय होते हुये भी वह सर्वसुखाय है। इसलिए तुलसी के रामचरित मानस के पात्र अलौकिक होते हुए भी लौकिक प्रतीत होते हैं, तथा वह हमें जीवन की प्रत्येक विकट परिस्थिति में प्रेरणा व स्फूर्ति देता है, इसीलिए उसका प्रचार सर्वत्र है। ठीक इसके विपरीत कृष्णकाव्य पर युग मानस की छाप नाममात्र की है। कृष्णभक्ति शाखा के कवि अपनी भक्ति भावना और आध्यात्म भावना में इतने समन्वित थे कि उन्होंने समाज की ओर तनिक भी ध्यान न दिया और न यह सोचा कि उनकी श्रृंगार रस पूर्ण उक्तियों का समाज और साहित्य पर क्या अनिष्टकारी प्रभाव पड़ेगा।

(3) कृष्ण-काव्य में केवल बृजभाषा ही प्रयुक्त हुई है, इसके विपरीत राम-काव्य बृजभाषा और अवधी दोनों में लिखा गया है। साथ ही अवधी के साहित्यिक रूप की जैसी विशुद्ध, परिमार्जित, कोमलकांत पदावली तुलसी की रचनाओं में मिलती है, वैसी कृष्णकाव्य में कदाचित ही दृष्टिगोचर होती हो।

(4) रामकाव्य और कृष्णकाव्य में भक्ति भावना की दृष्टि से भी विभिन्नता है। रामकाव्य में दास्यभाव की भक्ति है जबकि कृष्णकाव्य में सख्य और माधुर्य भाव की। रामकाव्य समन्वय के दृष्टिकोण को लेकर चला है। भाव, भाषा, छन्द तथा इष्टदेव सब क्षेत्रों में समन्वय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकाव्य और कृष्णकाव्य मूलत: सगुणवादी होते हुये भी बहुत सी बातों में परस्पर भिन्न हैं। दोनों के काव्य को देखकर यह अवश्य कहा जा सकता है कि सगुणवादी कवि केवल चिन्तनशील भक्त ही नहीं, बल्कि कवि भी हैं। इनके काव्यों में आलंकारिकता, कला तथा कवित्व का सुन्दर सामन्जस्य मिलता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस धारा में कवियों ने "भक्तिरस" की स्थापना में सर्वाधिक योग दिया है। यदि वैष्णव भक्ति का उदय न हुआ होता तो भक्ति को रस के रूप में स्वीकृति मिलना असम्भव था। साथ ही इतना बड़ा और श्रेष्ठ साहित्य अस्तित्व में न आया होता। राम और कृष्ण के रूप, गुण,शील का जैसा साहित्यिक वर्णन सगुण भक्त कवियों द्वारा हुआ, वैसा न तो पहले हुआ था और न बाद में हो सका। भारतीय साहित्य में सौन्दर्य और माधुर्य का मणिकांचन संयोग इसी सगुण भक्ति साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। फलत: इस साहित्य को हम भारतीय वाड्मय की एक श्रेष्ठ निधि के रूप में गौरवास्पद धरोहर समझते हैं।

रीतिकाल की पृष्ठभूमि और उसके आविर्भाव की परिस्थितियां

रीतिकाल में यद्यपि भक्ति, नीति, वीरता आदि अनेक विषयों पर कविताएं लिखी गईं, किन्तु प्रधानता श्रृंगारिक रचनाओं की रही। वस्तुत: इस श्रृंगाराधिक्य के मूल में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियां कार्य कर रही थीं। जैसा कि डॉ. चौहान ने लिखा है, "राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों ने रीतियुग के काव्य के श्रृंगारपरक, शौर्यपरक एवं प्रेमपरक आदि वर्ण्य-विषयों की पृष्ठभूमि तैयार की। समस्त रीतियुग के काव्य के-चाहे वह रीतिबद्ध धारा का काव्य हो, चाहे रीतिमुक्त धारा का काव्य हो- यही तीन वर्ण्य-विषय थे। दरबार के चमक-दमकपूर्ण

वातावरण ने तथा आश्रयदाता और उसके दरबारियों को फड़काने वाली कलात्मक बारीकियों की प्रवृत्ति ने ऊहात्मक कथन, वचन विदग्धता, उक्ति-वैचित्र्य, वक्रोक्ति आदि की कला-प्रवृत्तियों को जन्म दिया। पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति बहुज्ञता प्रदर्शन के रूप में उभरी और कला-पक्ष में कथन-भंगिमा के अनेक रूपों वचन विदग्धता, उक्ति वैचित्र्य, वक्रोक्ति आदि रूपों में उभरी। उसके विविध कला-रूपों में जो तराश-खराश की बारीकी और पच्चीकारी, कटाव और खम उभारने की प्रवृत्ति थी, उसने उसमें शब्द-चयन और शब्दालंकारों के सौन्दर्य उत्पन्न करने की प्रवृत्ति को जन्म दिया। नारी अंगों के सौन्दर्य वर्णन में उसके अंगों की गोलाइयों और उभारों को चित्रित करने की प्रवृत्ति के मूल में मूर्ति एवं चित्रकला की तराश-खराश, कटाव औ खम तथा गोलाइयां उभारने की प्रवृत्ति का प्रभाव है।-ये प्रवृत्तियां समस्त रीतियुगीन काव्य की प्रवत्तियां हैं जो केशव से लेकर बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर, घनानंद, बोधा आदि सभी में परिलक्षित होती हैं।"

राजनीतिक परिस्थिति- हिन्दी साहित्य में रीतिकाल सं.1700 से 1900 तक स्वीकार किया जाता है। इस संपूर्ण कालावधि में निरंकुश राजतंत्र का बोलबाला रहा। मुगल सम्राट शाहजहां भारत का सम्राट था। शाहजहां का राज्य-विस्तार दक्षिण में अहमद नगर, गोलकुंडा, बीजापुर आदि रियासतों तक, उत्तर में कंधार तक और पश्चिम में सिन्ध से लेकर पूर्व में सिलहट तक था। राज्य में सुख, शांति, वैभव-विलास सभी कुछ था। किन्तु परिवर्तन-चक्र में पड़कर स्थिति बदली। धीरे-धीरे शाहजहां के समय में दक्षिण में उपद्रव शुरू हुए और उसकी मृत्यु की अफ़वाह उड़ी। उसके पुत्रों में सिंहासन के लिए युद्ध प्रारंभ हो गया। छल-प्रपंच की धूलि उड़ाती राजनीति का दामन रक्त-रंजित हो उठा। दारा और औरंगजेब के मध्य संघर्ष बढ़ा। एक ओर कुशल राजनीतिज्ञ और कट्टर सुन्नी औरंगजेब था और दूसरी ओर ज्ञानी, सहिष्णु और दयालु दारा था। संघर्ष में औरंगजेब को विजय मिली, परंतु उसके अत्याचारों से यत्र-तत्र विद्रोह भी होने लगे। औरंगजेब का भारतीय आकाश में एक धूमकेतु की भांति उदय हुआ, जो न खुद सुख-चैन से रह सका और न उसने जनता को ही सुख-चैन से रहने दिया। इस प्रकार रीतियुग का उदय सुख-शांति, वैभव-विलास में हुआ तथा उसकी परिणति विप्लव, अव्यवस्था और अध:पतन में हुई।

औरंगजेब के उत्तराधिकारी सर्वथा अयोग्य, अकर्मण्य, विलासी एवं पंगु सिद्ध हुए। देसी नरेशों के महल भी विलास में मुगल-हरमों की होड़ ले रहे थे। ऐशोआराम का जीवन, वैभव प्रदर्शन, रसिकता और विलास का उद्दाम नर्तन, ये सब उस काल की विशेषताएं थीं। 'यथा राजा तथा प्रजा'के अनुसार जनता भी सामंतीय वातावरण और उसकी विशेषताओं के प्रति आकृष्ट थी। इन्हीं परिस्थितियों का प्रभाव उस युग के साहित्य पर पड़ा।

सामाजिक परिस्थिति- भारतीय समाज को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) उच्च वर्ग, इसमें बादशाह, शाही घराने, सामंत गण, बड़े व्यापारी, छोटे राजा तथा उच्च पदाधिकारी आते थे। यह वर्ग वैभवशाली होने के कारण विलासी, अपव्ययी और सुरा सुन्दरी में डूबा रहने वाला था।

(2) निम्न वर्ग, इसमें साधारण जनता आती थी, जिसे दोनों समय की रोटी जुटाने के लिए कठोर श्रम करना पड़ता था और इनके ही खून-पसीने की कमाई पर उच्च-वर्ग ऐश करता था।

(3) कलाकार वर्ग, जिन्हें उच्च वर्ग द्वारा आश्रय मिला था और इनका कार्य उच्च वर्ग का मनोरंजन करना था। उच्च वर्ग की स्थिति बिगड़ने पर इन्हें जीविका के लिए दर-दर की ठोकरें भी खानी पड़ीं।

रीतियुगीन समाज का एक दूसरा विभाजन शासक और शासित वर्ग में भी किया गया है। शासक वर्ग प्रभुत्व संपन्न था और उसी की प्रवृत्तियों का चित्रण कला और साहित्य में हुआ। शासित वर्ग तो नितांत उपेक्षित था।

रीतियुग में नारी विलास का साधन मानी जाती थी। नारी-जीवन की सार्थकता पुरुष को रिझाकर उसकी विलास-क्रीड़ा का साधन बनने में समझी जाती थी। राज महलों में रूप खरीदा जाता था और उसका जी भर कर भोग किया जाता था। राजा और प्रजा विलास की मदिरा पीकर उन्मत्त हो रहे थे और वीरता अपने लिए कोई स्थान न देखकर धीरे-धीरे वहां से पलायन कर रही थी। विलासियों के अत्याचार और व्यभिचार से बचने के लिए समाज में सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा और बाल-विवाह को प्रश्रय मिल रहा था। जन-साधारण में अंध-विश्वास तथा रूढ़ियां घर कर गई थीं। जनता प्राय: अशिक्षित थी।

आर्थिक परिस्थिति- रीतियुग में राजन्य वर्ग और सामंत वर्ग अवश्य ही संपन्न था, किन्तु साधारण जनता अभावों की चक्की में पिस रही थी। निम्न-वर्ग को तरह-तरह के कर देने पड़ते थे और पेट भरने के लिए भोजन भी वह बड़ी मुश्किल से जुटा पाता था। लक्ष्मी का प्रभुत्व सरस्वती पर स्थापित था। सोने और चांदी के टुकड़ों पर कला बिक रही थी। कृषकों की दशा भी बहुत गिरी हुई थी और यदि कभी अकाल आदि के कारण फसल नष्ट हो जाती थी तो कृषकों को उसकी क्षति-पूर्ति करनी होती थी।

धार्मिक परिस्थिति- रीतिकालीन भारत में चार धर्म प्रधान थे-हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई। धार्मिक और नैतिक दृष्टि से समाज पतनोन्मुखी था। भारतीय धर्म-साधना में श्रृंगारिकता को लेकर चलने वालों में नाथ, वज्रयान और शाक्त संप्रदायों को लिया जा सकता था। इन संप्रदायों में मांस, मदिरा और रमणी के प्रति विशेष आग्रह था। हिन्दू मंदिरों में दासी प्रथा भी प्रचलित हो उठी थी। इन सबने मिलकर धर्म-क्षेत्र में विलासिता और कामुकता को जन्म दे दिया था। फलत: पवित्र धार्मिक स्थान व्यभिचार के अड्डे बन चुके थे। हिन्दू धर्म में शंकर, रामानुज, वल्लभ आदि के संप्रदाय प्रचलित थे। वल्लभ संप्रदाय की सात गद्दियां थीं, जिनमें वैभव और विलास का तांडव-नर्तन होने लगा था। बंगाल का चैतन्य संप्रदाय भी इस दिशा में किसी से पीछे न था। कृष्ण-भक्ति में राधा-कृष्ण के बहाने प्रेम-व्यापार और विलास को प्रश्रय मिल चुका था। रामभक्ति धारा का स्वरूप भी परिवर्तित होने लगा था और राम-सीता किसी छैल-छबीले नायक-नायिका से कम न रह गए थे। हिन्दू धर्म में चैतन्य संप्रदाय के कारण परकीया भावना को भक्ति में जो महत्व मिल रहा था, उसने भक्ति के क्षेत्र में नायिका-भेद को स्थान दिया। रीतिकालीन साहित्य पर ये समस्त प्रभाव दृष्टिगत होते हैं।

रीतिकालीन भारत का दूसरा प्रमुख धर्म मुसलमान धर्म था। यह राजधर्म था। मुसलमान धर्म स्वीकार करने पर लोगों को धन और नौकरी मिलती थी, न स्वीकारने पर उन्हें 'जजिया'नामक कर देना पड़ता था। हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे को म्लेच्छ और काफिर कहते थे और घृणा करते थे।

रीतिकाल का तीसरा धर्म सिक्ख धर्म था। सिक्खों का उदय हिन्दू-मुसलमानों में एकता उत्पन्न करने के लिए हुआ था, किन्तु औरंगजेब की नीतियों के कारण वे मुसलमानों के विरोधी हो गए थे। उन्होंने अनेक बार मुसलमानों से संघर्ष किया और बलिदान भी किए।

इस काल का चौथा धर्म ईसाई धर्म था, जो कि रीतिकाल के उत्तरार्ध में क्रमश: अपना विकास कर रहा था।

रीतिकाल में धर्म की दशा अव्यवस्थित और विपन्न थी और धर्म में अंधविश्वास और पाखंड का बोलबाला था।

साहित्यिक परिस्थितियां- रीतिकाल अलंकरण और चमक-दमक का काल था। जन सामान्य से लेकर राज दरबार तक इस प्रवृत्ति से परिचित और परिचालित थे। मन और मस्तिष्क की यह रंगीनी उस युग के साहित्य में रूपायित हो उठी है, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य का विषय केवल नारी, अलंकार श्रृंगार एवं शारीरिक सौन्दर्य ही रह गया। शुक्ल जी ने इस संबंध में लिखा है कि, "हिन्दी काव्य इस समय से पूर्व पूर्णता को पहुंच चुका था। सभी क्षेत्रों में चरम विकास इससे पूर्व ही हो चुका था, इसलिए यह काल हास का काल रहा।"डॉ. शिवलाल जोशी ने भी लिखा है, "इस युग के समस्त भौतिक साधन श्रृंगार तथा विलास के उपकरण जुटाने में लगे हुए थे। समाज की दृष्टि जीवन के ऊपरी स्तर पर ही केन्द्रित थी। जीवन की आध्यात्मिक गंभीरता का उसमें सर्वथा अभाव था। यही कारण है कि इस युग की कला तथा उसके साहित्य में एक दिव्य तथा आनंदमय जीवन आभासित नहीं हुआ है, जो अजंता तथा एलोरा के मंदिरों के चित्रों में है अथवा उस युग के साहित्य में है।"

रीतियुग का साहित्य युगीन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण बौद्धिकता, अलंकरण और विलास का आधिक्य रखता है। बौद्धिकता की अतिशयता के कारण साहित्य में वक्रोक्ति, उक्ति-वैचित्र्य और नजाकत के दर्शन होते हैं।

कलात्मक परिस्थितियां- रीतिकाल की कला में भी अन्य क्षेत्रों के समान प्रदर्शन का प्राधान्य था। सामंतीय वातावरण होने के कारण श्रृंगार और वासना इसकी आत्मा था। मौलिक प्रतिभा की अपेक्षा परंपरा पालन के प्रति विशेष आग्रह था। अत: इस काल की कला में सप्राणता का अभाव रहा। मुगल-सम्राटों में स्थापत्य-कला का सबसे अधिक प्रेमी शाहजहां था। उसकी बनवाई हुई इमारतों में दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, मोती मस्जिद, जामा मस्जिद तथा ताजमहल अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

रीतिकालीन भारत में यत्र-तत्र हिन्दू कारीगर मूर्तियों का निर्माण करते थे। मुसलमानों के मूर्तिपूजा विरोधी होने के कारण इस क्षेत्र में उनके योगदान का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। श्री रायकृष्ण दास ने अपनी 'भारतीय मूर्तिकला' में इस संबंध में विचार करते हुए लिखा है, "13वीं शताब्दी के बाद उत्तर भारत की मूर्तिकला में कोई जान नहीं रह जाती। मुसलमान विजेता मूर्ति के विरोधी थे, फलत: उनके प्रभाववश यहां के प्रस्तर-शिल्प के केवल उस अंश में कला रह गई जिसमें ज्यामितिक आकृतियों व फल-बूटे की रचना होती थी। मूर्तियों के प्रति राज्याश्रय के अभाव में ऊंचे दर्जे की कारीगरी ने अपनी सारी प्रतिभा अलंकरणों के विकास में लगाई।" रीतिकाल में कला की दृष्टि से सर्वाधिक हास और पतन मूर्तिकला का ही हुआ है।

रीतियुग में चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ। जहांगीर के काल में हिन्दू चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष पर थी और उसमें अद्‌भुत स्वाभाविकता एवं सजीवता व्याप्त थी। शाहजहां यद्यपि वास्तुकला का प्रेमी था, फिर भी उसके समय में चित्रकला को यथेष्ट आश्रय तथा प्रोत्साहन मिला था। औरंगजेब के काल में अन्य कलाओं की भांति चित्रकला का भी पतन हुआ, क्योंकि वह कला को विलास का साधन मानकर उसको धार्मिक भावना का विरोधी मानता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकालीन चित्रकला में बारीकी, अलंकरण तथा यांत्रिक सौंदर्य का बाहुल्य था।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकाल में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितयां हासोन्मुख थीं। कला का मूल्य चांदी के चंद टुकड़ों द्वारा आंका जा रहा था। सुरा और सुन्दरी में ही जीवन की चरितार्थता समझने वाले रसिक राजा-महाराजाओं को विलासोत्तेजक, अलंकृत और उक्ति-चमत्कार से युक्त उक्तियों की आवश्यकता थी और वही इस युग के कवियों ने किया भी।

रीतिकाल का सामान्य परिचय

रीतिकाल को आचार्यों ने श्रृंगार काल के नाम से संबोधित किया है। रीतिकाल की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(1) **श्रृंगार रस की प्रधानता-** श्रृंगारकाल की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें तीन तरह के कवियों की प्रमुखता रही है-रीतिबद्ध, रीतिमुक्त तथा रीतिसिद्ध। इन तीनों धाराओं का अध्ययन करने से विदित होता है कि श्रृंगार की भावना इनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। श्रृंगार रस को इस युग में रसराज के रूप में व्यक्त किया गया है-

नवहु रस को भाव कहुं, तिनके भिन्न विचार।
सबको केषवदास हरि, नायक है सिंगार॥

(2) **दरबारी संस्कृति तथा काम-वासना का उद्दीपन-** रीतिबद्ध कविता का प्रेरणा स्रोत प्राय: दरबारी संस्कृति थी। इसके अंतर्गत श्रृंगारी-भावना वासना को व्यक्त करने हेतु ही प्रयुक्त हुई है। रीतिबद्ध कवियों के आश्रयदाता सामंत, राजा तथा महाराजा आदि उच्च वर्ग के लोग मुगलों से विरासत में मिली विलासिता में डूबे हुए थे अत: उनकी प्रेरणा से रचे हुए काव्य में स्वभावतया ही लौकिक प्रेम एवं उसके व्यंजन बाह्य सौंदर्य के वर्णन बहुत अधिक हैं। इन श्रृंगारी भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम कृष्ण राधा की मधुर भाव की भक्ति बनी तथा राधा-कृष्ण साधारण नायक-नायिका के रूप में चित्रित किये जाने लगे।

(3) **श्रृंगार रस का निरूपण-** युग के नैतिक आदर्शों की अनुमति होने के कारण श्रृंगारकाल में काम प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति हेतु पूर्ण स्वच्छन्दता थी। आध्यात्मिक आवरण में ही श्रृंगारिक कविता न होती थी, बल्कि स्वतंत्र रूप से भी होती थी। कवि लोग राजाओं की कुत्सित प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने हेतु नग्न श्रृंगार का चित्रण करते थे। लेकिन इस निर्बाध वासना तुष्टि का एक दुष्परिणाम भी हुआ, वह यह कि काम जीवन का अंतरंग साधक तत्व न रहकर बहिरंग साध्य बन गया। अत: इस काल की रीतिबद्ध कविता की श्रृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर वासना की झलक ही मिलती है।

(1) **पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहूँ पास।**
नित प्रति पून्यौ ही रहत, आनन ओप उजास॥

(2) **चमक-तमक, हाँसी ससक, लपक-लपक लपटानि।**
ए जिहिं रति, सो रति मुकति, और मुकति अति हानि॥

शुद्ध राधा कृष्ण प्रेम का वर्णन है, पर यह वर्णन साहित्यिक न हो विषयगत सौंदर्य का वर्णन किया, राधा कृष्ण का नाम, तो मात्र एक आलंबन के रूप में लिया गया। इन कवियों की, पहुँच विषयगत सौंदर्य पर गहरी थी। जैसे-बिहारी की सूक्ष्म निगाह उस सौंदर्य को पकड़ लेती थी उसी तरह, मतिराम, देव, पद्माकर जैसे रस सिद्ध कवि भी किसी से पीछे नहीं रहे। उदाहरण के

लिए विद्यापतिजी ने नेत्रों की चंचलता का कितना सुंदर वर्णन किया है, जो प्राचीन साहित्य में मिलना दुर्लभ है-

पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल, तहाँ-तहाँ ताल में होत त्रिवेनी।

-पद्माकर

धार मैं धाय धँसी निरधार ह्वै, जाय फँसी उकसी न उधेरी।
री गहराय गिरी गहरी, गहि फेरी फिरी न घिरी नहिं घेरी॥
ऊधौ कछू अपनौ बस ना, रस-लालच चितै भई चेरी।
बेगि ही बूढ़ि गई पखियाँ, अखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी॥

-देव

(4) **गार्हस्थिक श्रृंगार-परकीया प्रेम-वर्णन का अभाव-** रीतिबद्ध श्रृंगारी कविता में नागरिकता का समावेश तो हुआ, लेकिन दरबारी वेश्या-विलास अथवा बाजारू रूप-सौंदर्य की बू नहीं आई। राजाओं के दरबार में वेश्यायें रहती थीं पर उनके आश्रित कवि स्वकीया नायिका के प्रेम का ही गायन करते थे। परकीया प्रेम-वर्णन का उनके काव्य में इसी कारण अभाव ही रहा। उन्होंने प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या आदि उदात्त पक्षों का निरूपण न करके विलासोन्मुख जीवन तथा श्रृंगार के बाह्य पक्ष-शारीरिक आकर्षण-तक ही सीमित रहकर रूप को मादक बनाने वाले उपकरणों को महत्व दिया। नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन, ऋतु-वर्णन, अलंकार-निरूपण सर्वत्र उनकी प्रवृत्ति रसिकता को बढ़ावा देने की है।

रीतिमुक्त धारा का प्रेम-भाव वासना रहित है : प्रेम के उदात्त रूप का अंकन-

इस कविता में श्रृंगारी-भावना में हृद्गत प्रेम के उद्गार हैं जिनमें बड़ी शुचिता है। इनमें शारीरिक वासना की गंध नहीं है, बल्कि हृदय की पुकार है। इन्होंने भी कृष्ण की मधुर भाव की भक्ति का आश्रय लिया किन्तु वह कुछ भक्तिकालीन कवियों की भाँति ही उन्मुक्त है। इस दिशा में ये कवि रीतिबद्ध कवियों से बिल्कुल पृथक को जाते हैं। पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इन दो श्रेणियों के कवियों का पार्थक्य इस तरह दर्शाया है-"प्रेमोन्माद के अभिव्यंजक इन कर्ताओं के लिए राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण की लीलायें काव्य-सामग्री का काम देती रही हैं। व्यक्तिबद्ध प्रेम की एकनिष्ठता के कारण जब उन्हें भक्ति-पक्ष त्यागना पड़ा है तब ये कृष्ण की क्रीड़ाशील प्रवृत्ति के उपासक बनकर उनके भक्त हो गये हैं। भारतीय परंपरा में उन्मुक्त प्रेम के लौकिक आलंबन का विधान न पाकर ये श्रीकृष्ण का अलौकिक आलंबन ग्रहण करते थे। अतः अंत में इनकी मुक्तक रचना का भक्ति में पर्यवसान हो जाता था।"

श्रृंगार के दोनों पक्ष-संभोग और विप्रलंभ-

श्रृंगारकालीन काव्य में हमें श्रृंगार के दोनों पक्ष-संभोग तथा विप्रलंभ श्रृंगार का निरूपण मिलता है।

(1) रीतिबद्ध विहारी में श्रृंगार का संयोग-पक्ष प्रधान है।

मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँह चूम्यो ढिग जाइ।
हँस्यौ, खिसानी, गल गह्यौ रही गरै लपटाइ।
दीप उजेरैं हू पतिहिं हरत वसनु रति काज।
रही लिपटी छवि की छटनु नैकी छुटी न लाज।

-बिहारी सतसई

तो रीतिमुक्त घनानंद ने विप्रलंभ को उत्कर्ष प्रदान किया है-

वह कैसो संयोग न जानि परै, लु वियोग न क्यौंहूँ बिछोहत है।
झूठि बतिय्यन के पत्यानतें ह्वै के, अब न घिरत 'घनआनंद' निदान कौं।
अधर लगे हैं आनि, करकै पयान प्रान, चाहत चलन ये संदेसौ ले सुजान कौं।

-घनानंद कवित्त

रीतिबद्ध कवियों ने भी विप्रलंभ का वर्णन किया है पर वह अनुभूतिजन्य न होकर चमत्कार-प्रधान है। उसमें ऊहात्मकता का प्राधान्य है। कहीं-कहीं स्वाभाविक विरह-व्यंजना भी हुई है, जैसे-

करके मीड़े कुसुम लौं, गई विरह कुम्हलाय।
सदा-समीपिनि सखिनहूँ, नीठि-पिछानी जाय॥

-बिहारी सतसई

बिहारी के वर्णन में अव्युक्ति विरह के दोहे में देखने को मिलेगी। सच्ची अनुभूति तो है पर गांभीर्य नहीं है। ऐसा लगता है कि कवि किसी खिलवाड़ में लगा हुआ है। जैसे-

इति आवत चलि जात उत, चली छः-सातक हाथ।
चढ़ी हिंड़ौरे सी रहे, लगी उसासन साथ॥ (सतसई से)

एक अन्य स्थान पर जाड़ों की रात होते हुए भी गीले वस्त्रों को धारण करने के बाद भी नायिका के पास सखियाँ नहीं जा पा रही हैं क्योंकि नायिका के शरीर से विरहानुभूति की लपटें छूट रही हैं। जैसे-

आड़े दे आले बसन, जाड़े हूँ की राति।
साहस कै-कै नेह बस, सखी सबै ढिंग जात॥ (सतसई से)

रीतिमुक्त कवि घनानंद ने नायिका के विरह का वर्णन निम्न तरह चित्रित किया है। प्रिय से मिले हुए बहुत दिन हो गये हैं तथा मिलने के लिए प्रेयसी उत्कंठित हो उठी है कोई संदेश भी नहीं मिला। अत: अब तो वह अपने प्राणों को ही संदेश वाहक बनाकर अपना संदेश प्रिय तक भेज रही है-

बहुत दिनानि की अवधि आस पास परे,
खरे अवरनि भरे हैं उडिजात कौं,
कहि-कहि आवन संदेसौ मन भावन कौं,
गहि-गहि राखत हौं दै, दै सनमान कौं।

(2) **नारी सौंदर्य चित्रण**- रीति कालीन काव्य में नारी के रूप-सौंदर्य चित्रण को बहुत महत्व दिया है। संस्कृत के महाकवि माघ ने स्त्री सौंदर्य का वर्णन 'शिशुपाल वध' महाकाव्य में लिखा है। जो क्षण-क्षण नवीनता को प्राप्त करे वही रूप को रमणीयता है-

क्षणे-क्षणे मन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः॥

विहारीजी ने नायिका रूप वर्णन किया है वह एकदम सटीक बैठता है। देखिये उदाहरण-

लिखन बैठि जाकी सबो, गहि-गहि राख गजर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे क्रूर॥

मतिराम जी का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वो त्यौं-त्यौं खरी विकसे सी निकाई॥

अत: रीतिकाल में नारी सौंदर्य वर्णन इस काल के सभी कवियों ने किया है।

(3) **अलंकारों का प्रयोग-** इस काल की कविता में अलंकारों का प्रयोग ज्यादा हुआ है। इसी विशेषता को देखते हुए मिश्र बंधुओं ने इस काल का नाम अलंकृत काल सुझाया था। उदाहरण के तौर पर विरोधाभास एवं असंगति अलंकार का चमत्कार देखिये-

द्रग उरझत टूटत कुटुम्ब, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥

इन कवियों का ऐसा मानना था कि श्रृंगारयुक्त कविता का कलेवर सजाने हेतु अलंकार आवश्यक (उपयुक्त) है। हिन्दी का भक्तकालीन काव्य अगर आध्यात्मिक उच्चता का परिचायक है तो रीतिकालीन श्रृंगारी काव्य कलात्मक उत्कर्ष का पुष्ट प्रमाण है।

रीतिकाव्य

रीति युग सम्वत् 1700 से लेकर संवत् 1900 तक के बीच का युग है। इस युग को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने श्रृंगार काल, डॉ. रमाशंकर शुक्ल "रसाल" ने कला काल और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल कहा है। मिश्र बंधुओं ने उत्तर मध्यकाल में अलंकारों की प्रवृत्ति के आधिक्य को देखकर उसे अलंकार काल कहा था लेकिन इन तमाम नामों में रीतिकाल नाम ही अधिक प्रचलित है।

नामकरण

"रीति" शब्द नया नहीं है। संस्कृत काव्य शास्त्र के प्रमुख पाँच सम्प्रदायों में रीति सम्प्रदाय भी है। संस्कृत में "रीति" शब्द विशिष्ट पद रचना, कवि प्रस्थान हेतु काव्य मार्ग आदि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है किन्तु हिन्दी में ठीक वही अर्थ नहीं ग्रहण किया गया। यहां रीति का अर्थ विस्तार हो गया है। हिन्दी में प्राय: जिन लक्षण ग्रन्थों में काव्य रचना सम्बन्धी नियमों और सिद्धातों का विवेचन किया गया है उन्हें रीति ग्रन्थ कहते हैं। आचार्य शुक्ल ने इसी व्यापक अर्थ में रीतिकाल नाम रखा है।

इस नामकरण की भी कुछ सीमाएँ हैं। रीतिकाल संबोधन से ऐसे कवियों का बोध होता है जिनमें कवित्व और आचार्यत्व का सम्मिलन हो। जो स्वतंत्र रूप से काव्य रचना न करके लक्षण उदाहरण के सीमा से बंधकर काव्य रचना करते हैं। लेकिन इन आचार्य कवियों के अतिरिक्त कवियों का एक ऐसा भी वर्ग था जो रीति की परिपाटी से बंधा नहीं था, जिसका प्रयोजन केवल कविता करना था, कविता सिखाना नहीं। जो शास्त्र और काव्य दोनों परम्पराओं से मुक्त थे। ऐसे कवियों को शुक्लजी ने "रीतिकाल के अन्य कवि" नामक स्वतंत्र प्रकरण के अन्तर्गत रखा है।

नामकरण के मूल में मुख्य विवाद रीतिकाल और श्रृंगार काल के नाम को लेकर है। आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल ने लक्षण-लक्ष्य के व्यापक अर्थ में "रीति" शब्द को ग्रहण करते हुए इस युग को रीतिकाल कहा। भक्तिकाल में प्रभूत साहित्य की रचना हो जाने के पश्चात् 17 वीं शताब्दी तक आते-आते हिन्दी साहित्य काफी प्रौढ़ता प्राप्त कर चुका था। काव्य कृतियों की प्रभूत रचना के पश्चात हिन्दी में कुछ कवियों का ध्यान काव्यांग निरूपण की ओर गया और उन्होंने रस,अलंकार, छन्द, नायिका भेद आदि का लक्षण विवेचन भी किया। काव्य रचना के साथ ही उसकी अन्तरात्मा का

अनुसंधान अथवा कवि कर्म के साथ आचार्य कर्म की दुहरी प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर शुक्लजी ने रीतिकाल नाम रखा।

रीतिकाल की सामान्य विशेषताएँ

रीतिकालीन कवियों के प्रमुख वर्ण्य विषय प्राय: एक से थे। जिनमें राज्य विलास, राज्य प्रशंसा, दरबारी कला विनोद, मुगलकालीन वैभव, अष्टयाम संयोग, वियोग वर्णन, ऋतु वर्णन, किसी सिद्धान्त के लक्ष्य लक्षणों का वर्णन, श्रृंगार के अनेक पक्षों के स्थूल एवं मनोवैज्ञानिक चित्रों की अवतारणा आदि विषय प्राय: सभी कवियों के किसी ने किसी रूप में वर्ण्य हुआ करते थे। इस काल की सामान्य विशषताओं को इस प्रकार देखा जा सकता है-

1. **श्रृंगारिकता-** यह प्रवृत्ति रीतिकाल में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। नायिका-भेद और नारी-सौन्दर्य को अत्यधिक प्रश्रय देने के कारण रीतिकालीन साहित्य का प्रमुख रस श्रृंगार था। श्रृंगार को इस युग में रस राज की संज्ञा दी गई थी। श्रृगार के दो भेद हैं- संयोग और वियोग। रीतियुग में श्रृंगार के इन दोनों अंगों का चरम सौन्दर्य देखा जा सकता है। दर्शन, श्रवण और संलाप संयोग श्रृंगार में पाये जाते हैं। संयोग पक्ष के रूप चित्रण में रीतिकालीन कवि के विशेष सिद्धान्त हैं। इस युग की श्रृंगारिकता के सम्बन्ध में डॉ. भागीरथ मिश्र ने कहा है, श्रृंगारिकता के प्रति उनका दृष्टिकोण मुख्यत: भोग परक था, इसीलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर वे नहीं जा सके। प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, आदि उदात्त पक्ष भी उनकी दृष्टि में बहुत कम आये हैं। उनका विलासोन्मुख जीवन और दर्शन सामान्यत: प्रेम या श्रृंगार के बाह्य पक्ष शारीरिक आकर्षण तक ही सीमित रहकर रूप को मादक बनाने वाले उपकरण ही जुटाता रहा। यह प्रवृत्ति नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, ऋतु वर्णन, अलंकार निरूपण सभी जगह देखी जा सकती है।

2. **ऋतु वर्णन-** रीतिकालीन काव्य की एक प्रवृत्ति ऋतु वर्णन की रही है। रीतिकालीन कवियों ने अधिकतर ऋतु वर्णन उद्दीपन के ही रूप में किया है। ऋतु वर्णन के साथ-साथ ऋतु विशेष में होने वाली क्रीड़ाओं, मनोविनोदों, वस्त्राभूषणों, उल्लासों की भरपूर व्यंजना कवियों ने की है। इनके अतिरिक्त कवियों ने ऋतु विशेष में होने वाले तीज त्यौहारों के भी संश्लिष्ट चित्र खींचे हैं।

3. **नायिका भेद वर्णन-** रीतिकालीन कवियों को भारतीय कामशास्त्र से बड़ी प्रेरणा मिली थी। कामशास्त्र में अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन है। युग की श्रृंगारी मनोवृति ने वहाँ से प्रेरणा पाकर तथा युग के सम्राटों, राजाओं और नवाबों के हरम में रहने वाली कोटि-कोटि सुन्दरियों की लीलाओं, काल चेष्टाओं, आदि से प्रभावित होकर साहित्य मे नायिका-भेद के रूप में उनकी अवतारणा की थी।

4. **नख-शिख वर्णन-** रीतिकालीन कवियों के सामने नारी का एक ही रूप था और वह था, विलासिनी प्रेमिका का। नारी उनके लिये एक मात्र भोग विलास का उपकरण थी, सौन्दर्य वर्णन में रीतिकालीन कवियों ने नारी के उत्तेजक रूप और अंगों का वर्णन अधिक किया है, जिससे उनकी वासना वृत्ति की तृप्ति होती थी। इस एकांकी दृष्टिकोण के कारण वह नारी-जीवन के सामाजिक महत्व, उसके श्रद्धामय रूप और उसकी मातृशक्ति को नहीं देख सका।

5. **अलंकरण की प्रवृत्ति-** रीतिकालीन कवि अपनी अलंकार योजना के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग दोनों दृष्टियों से किया है। अलंकार अलंकरण या चमत्कार प्रियता के लिये तथा अलंकार रस विधान के लिए। इस अलंकारिकता का एक अन्य कारण था- अलंकार

शास्त्र के अनुसार अपनी कविता कामिनी को साँचों में ढालना। अलंकार शास्त्र के ज्ञान के बिना उस समय के कवि को सम्मान मिलना कठिन था, इसलिए अलंकारिकता इस युग में खूब फूली-फली, और यहाँ तक कि अलंकार साधन से साध्य बन गये और कविता-कामिनी की शोभा बढ़ाने की अपेक्षा उसके सौन्दर्य के विघातक बन गए। इस काल की कविता की अलंकारिता को देखकर ही मिश्र बन्धुओं ने इस काल का नाम "अलंकृत काल" रखा तथा डॉ. रमाशंकर शुक्ल "रसाल" ने इस काल का नामकरण "कलाकाल" किया है। इस काल में संस्कृत साहित्य के पुष्ट अलंकार शास्त्र की लोकप्रियता भी आश्रयदाताओं की चमत्कारी मनोवृत्ति के कारण बढ़ गई। इस काल के रीतिबद्ध कवि आचार्यत्व का भी दावा करते थे। अलंकार के ग्रन्थों में केशव की "कवि प्रिया", महाराजा जसवन्तसिंह का "भाषा भूषण", "मतिराम का ललित ललाम" और महाराजा रामसिंह का अलंकार दर्पण प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार रस सम्बन्धी ग्रन्थों में केशव की "रसिक-प्रिया- मतिराम का "रसराज" महाराजा रामसिंह का "रस निवास" और "रस विनोद" तथा देव का "भाव-विलास" प्रसिद्ध हैं।

6. **बृजभाषा की प्रधानता-** बृजभाषा इस युग की प्रमुख साहित्यिक भाषा है। यह काल बृजभाषा का चरमोन्नति काल है। इस समय बृजभाषा में विशेष निखार, माधुर्य और प्रांजलता का समावेश हुआ और भाषा में इतनी प्रौढ़ता आई कि भारतेंदु काल तक कविता के क्षेत्र में इसका एकमात्र आधिपत्य रहा और आगे के समय में भी इसके प्रति मोह बना रहा।

7. **लक्षण ग्रन्थों का निर्माण-** रीतिकाल से कवि कर्म और आचार्य कर्म एक साथ चलते रहे। रीतिमुक्त कवियों को छोड़कर प्राय: इस काल के सभी कवियों ने लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया। इस युग में रीति ग्रन्थों की रचना मुख्य रूप से तीन दृष्टियों से की गयी। इनमें प्रथम दृष्टि तो मात्र रीति कर्म की है। इसमें काव्यांग विशेष का परिचय कराना ही कवियों का मुख्य उद्देश्य रहा है। जसवन्तसिंह का "भाषा भूषण" ऐसा ही ग्रन्थ है। द्वितीय पद्धति में रीति कर्म और कवि कर्म का समान महत्व रहा है। चिन्तामणि, रतिराम, भूषण, देव, कुलपति आदि ऐसे ही कवि आचार्य हैं। तृतीय प्रवृत्ति के अन्तर्गत लक्षणों को महत्व नहीं दिया गया। बिहारी व मतिराम आदि ऐसे ही कवि हैं। फिर भी इन कवियों के बारे में यही कहा जा सकता है कि इन कवियों ने आचार्य कर्म की अपेक्षा कवि-शिक्षक के कर्म का निर्वाह किया है।

8. **मुक्तक शैली का प्राधान्य-** दोहा, कवित्त और सवैया इस काल के कवियों की सारी चातुरी मुक्तक शैली में ही प्रकट हुई है। इनकी कविता का उद्देश्य भी कुछ ऐसा ही था कि जब आश्रयदाताओं को अपनी काम क्रीड़ाओं एवं काम विलास में उत्तेजना की आवश्यकता हुई या वैसे भी मनोरंजन के लिए कवि कुछ पद्य सुना दिया करते थे। मानसिक थकान को दूर करने के लिए जो कविता रची गयी वह मुक्तक ही रही। इस प्रकार रीतिबद्ध कवियों में दोहा, कवित्त और सवैया का प्राधान्य हो गया। रीतिबद्ध कवियों में दोहा में भी कवित्त-सवैया शैली का प्राधान्य है। वीर काव्य के रचयिता भूषण ने भी इस शैली को अपनाया है।

9. **भक्ति और नीति-** प्रत्यक्ष रूप में रीतिकाल श्रृंगार-युग था। फिर भी इस काल में भक्ति और नीति सम्बन्धी सूक्तियाँ भी देखने को मिल जाती हैं। इस काल के कवियों की भक्ति के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र ने अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है, यह भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते होंगे तो राधा-कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्म-भीरू मन का आश्वासन देता होगा। आधुनिक अनुसंधानों से प्रकाश में आए हुए उत्तर मध्यकाल में रचित अनेक ग्रन्थों से यह प्रकट है कि उक्त काल में भक्ति की धारा इतनी क्षीण नहीं

थी जितनी कि प्राय: उसे समझा जाता है। भक्ति यदि इन कवियों के आकुल मन के लिए शरण भूमि थी तो नीति संघर्षमय दरबारी जीवन के घात-प्रतिघात से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व के विवेचन के परिणामस्वरूप शांति का आधार थी।

10. **वीर रस-** यद्यपि रीतिकाल में श्रृंगारी कविता की प्रधानता है किन्तु वीर रस की क्षीण धारा भी उसके साथ-साथ प्रवाहित होती रही है। भूषण, लाल और सूदन आदि कवियों ने ओजस्विनी भाषा में वीर रसात्मक काव्य की सृष्टि की है।

रीतिकाल की प्रमुख विशेषताओं का निर्देश यहां पर किया गया है। इनसे रीति युग का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

हिन्दी रीति मुक्ति काव्य धारा की उपलब्धियों का परिचय

इस धारा का नामकरण कुछ लोगों ने "रीति मुक्त या रीति निर्णुक्त कविता" या "स्वच्छन्द काव्यधारा" किया है। रीतिमुक्त का तात्पर्य है कि धारा रीति परम्परा के साहित्यिक बन्धनों और रूढियों से मुक्त है। यों "रीतिमुक्त" नामकरण विवाद रहित है परन्तु "स्वच्छन्द काव्य धारा" नाम थोड़ा विचारणीय है। अंग्रेजी साहित्य में रोमांटिक (स्वच्छन्द) काव्यधारा अपने विशिष्ट इतिहास और परिस्थितियों के कारण विशिष्ट अर्थ में रूढ़ हो गयी है। पश्चिम में स्वच्छंद काव्यधारी श्रृंगारिकता, साहसिकता, काल्पनिकता, भाव प्रधानता, अनगढ़ परक आदि गुणों के लिए प्रसिद्ध है। इस कोटि का काव्य आन्तरिक अनुभूतियों का काव्य होता है। परिणामत: इसमें भावावेग का उच्छल प्रवाह होता है। यह काव्यधारा मूलत: आत्म प्रधान होती है। यह सब प्रकार की रूढियों से मुक्त होती है। यह काव्यधारा भावना प्रधान अधिक और रूप प्रधान कम होती है। कवि की प्रवृत्ति अपने हृदय के पर्त खोलने की अधिक होती है। इस दृष्टि से रीतिमुक्त काव्यधारा को स्वच्छन्द काव्यधारा नि:संकोच कहा जा सकता है। रीतिमुक्त कविता उत्तर मध्य युग की एक साहित्यिक क्रान्ति है। रीति मुक्त कवियों द्वारा अन्वेषित नवीन मनोभूमि पर केवल ललित कल्पना का राज्य नहीं था, अपितु वहाँ मृदु प्रणय-प्रसंगों में से स्पंदित जीवन-यथार्थ को परिभाषित करने की दृढ़ स्वीकृति भी थी। उनकी कविता कोरे उबाल या क्षणिक आवेश-मात्र की अभिव्यक्ति नहीं थी। इसलिए रीतिमुक्त कविता अपने समय की एक ऐतिहासिक क्रांति बनी।

इस काव्य धारा की सामान्य उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं-

1. **स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण-** रीतिमुक्त कवियों को रीतिबद्ध कवियों के समान बंधी-बंधाई परिपाटी पर प्रेम का चित्रण करना वांछित नहीं था। इन कवियों का प्रेम स्वच्छन्द और संयत है। इस प्रेम में कहीं छिपाव नहीं है।

2. **एकान्तिक प्रेम की निष्ठा और प्रेम की पीर-** रीतिमुक्त धारा के कवियों की रचनाओं पर फारसी के एकान्तिक प्रेम की निष्ठा का वर्णन बहुत मिलता है। उसी की झलक घनानन्द और ठाकुर में मिलती है। जैसे "लगे अंसुअन झरी है ढंक छाती" चलावै सीस सों विरह धारा" आदि

3. **चित्रात्मकता-** रीतिकालीन कवियों की प्रमुख विशेषता चित्रात्मकता थी। चित्र विधान में ये कवि जितने सिद्ध हस्त थे, उतना कोई कवि शायद ही रहा हो, यथा-

नासा मोरि, मचाय लै, करौ कका की सौंह,
काँटे सी कसकै हिये, गड़ी कटीली भौंह।

4. **नायिका-भेद वर्णन-** रीतिकालीन कवियों को भारतीय काम शास्त्र से बड़ी प्रेरणा मिली थी। कामशास्त्र में अनेक प्रकार की नायिकाओं के वर्णन हैं। युग की श्रृंगारी मनोवृत्ति से प्रेरणा पाकर तथा युग के सम्राटों, राजाओं और नवाबों के हरम में रहने वाली कोटि-कोटि सुन्दरियों की लीलाओं, काम चेष्टाओं आदि से प्रभावित होकर साहित्य में नायिका भेद के रूप में उनकी अवतारणा की थी। कुछ प्राचीन कृष्ण चरित्र से भी नायिका भेद की प्रेरणा मिली थी। बहुस्त्रीवाद की प्रथा ने भी जो मुसलमानों व हिन्दुओ में समान रूप से प्रतिष्ठित थी- नायिका भेद को बल दिया था। फारसी के "इश्क मजाजी" साहित्य ने भी नायिका भेद की प्रेरणा दी थी। इन्हीं सब कारणों से हिन्दी साहित्य में नायिका भेद को लेकर रीतियुगीन कवियों ने एक विशाल साहित्य का सृजन किया।

5. **वियोग पक्ष की प्रधानता-** रीतिमुक्त कवि वियोग को प्रधान्य देता है। वियोग में घनी व्यथा सहनी पड़ती है, लेकिन वह इससे विचलित नहीं होता। वियोग पक्ष में कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी होती है। वह अन्तस्थल के प्रेम की अतुल गहराइयों तक पैठने के लिए आतुर रहता है। रीतिमुक्त कवियों की विरह विषयक धारणा अत्यन्त विलक्षण है। यहाँ संयोग में भी वियोग पीछा नहीं छोड़ता है।

6. **भक्ति का स्वरूप-** इन कवियों ने राधा और कृष्ण की लीलाओं का उन्मुक्त गान किया है। वस्तुत: रीतिकाल की इस धारा के सभी श्रृंगारी कवियों को भक्त कवि नहीं कहा जा सकता है। इन पर भी लगभग किसी रीतिकालीन कवि का यह कथन

आगे के कवि रीझि हैं तो कविताई,
न तु राधिक कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि सभी रीतिमुक्त श्रृंगारी कवियों को उन्मुक्त भक्त भी नहीं कहा जा सकता है। हाँ अधिक से अधिक रसखान और घनानन्द को उक्त कीर्ति में रखा जा सकता है।

7. **आत्मपरक कवित्व-** रीतिमुक्त काव्य व्यक्ति प्रधान है। इस धारा के कवि अपने व्यक्तिगत जीवन में किसी न किसी से प्रेमाहत हुये थे। अत: इन्हें प्रेम-व्यथा का वर्णन करने में मुक्ति जैसा अनुभव हुआ होगा। हिन्दी की लौकिक काव्य-परम्परा में यह शैली नवीन है। फारसी प्रभाव इसमें कारण हो सकता है।

8. **काव्यादर्श-** रीतिमुक्त कवि ने अपनी काव्यगत विशेषताओं के प्रति विशेष रूप में अपने काव्यादर्शों का आग्रह उद्घोष किया है। उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे अपने काव्य मार्ग को परम्परामुक्त स्वच्छन्द मानते थे। इन कवियों का लक्ष्य हृदय के भावावेगों को मुक्त भाव से उड़ेल देना है। आत्मविभोर काव्य रचना करने वाले ये लोग बौद्धिकता को काव्य अनुकूल गुण नहीं मानते। घनानंद और आलम के काव्य में भावों में परत दर परत उघड़ते जाते हैं। घनानंद और ठाकुर आदि पर भी फारसी काव्य पद्धति की रंगत देखी जा सकती है।

9. **बृजभाषा का विलक्षण प्रयोग-** रीतिमुक्त धारा के कवियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है बृजभाषा का असाधारण प्रयोग। जहाँ रीतिबद्ध कवियों की भाषा अलंकारों की सत्ता में जकड़ी होने के कारण अपने जीवन से कटी हुई है और एक रूपता के दोष से पीड़ित है, वहाँ रीतिमुक्त कवियों की भाषा इन अभावों से मुक्त है। रीतिमुक्त कवियों ने सूरदास आदि भक्त कवियों के समान लक्षणाओं, लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग में अपनी भाषा शक्ति बढ़ाई है और अभिव्यंजना शिल्प के नये आयाम खोले हैं। घनानंद का काव्य शिष्ट अलंकारों का मुहताज नहीं है, सहज भाषा में मार्मिक व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति उन्होंने की है।

10. **फारसी काव्य शैली का प्रभाव-** यों तो रीतिबद्ध कवियों पर भी फारसी के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता किन्तु रीतिमुक्त कवियों पर यह प्रभाव बहुत ही प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है। विषय प्रेम का आश्रयण, आत्मकथन की शैली में भावात्मक काव्य प्रणयन और भाषा में अलंकारों की उपेक्षा इसी प्रभाव के परिचायक हैं। घनांनद की रचना "इश्कलता" की भाषा में फारसी के शब्दों की भरमार है। उनके भाव भी फारसी की भाँति अत्युक्तिपूर्ण और आशिकाना ढंग के हैं। शराब, दिल के टुकड़े, प्राणों का घुट मरना, छाती में घाव या छाले पड़ना, छुरी तलवार या भाले आदि अप्रस्तुत इनके समस्त काव्य में प्रचुरता से प्रयुक्त हुये हैं। आलम की शैली में भी फारसी का प्रभाव है। आलम केलि के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि कहीं-कहीं फारसी शैली के रसबोधक भाव भी इनमें मिलते हैं। बोध की भाषा और भाव दोनों में फारसी का प्रभाव खुलकर पड़ा। इनके काव्य शैली पर फारसी के प्रभाव को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है।

रीतिमुक्त धारा के कुछ प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय

1. **घनानंद-** हिन्दी में इस नाम के तीन कवियों का पता चलता है- आनन्द कवि, आनन्दघन और घनानंद। इनके जीवन को लेकर विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के मत पाये जाते हैं। घनानन्द स्वच्छन्द मार्गी प्रेमी कवि थे। ये मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले के मीरमुँशी थे। कहा जाता है कि उस दरबार में सुजान नामक एक वैश्या भी थी जिस पर ये आसक्त थे। कालांतर में उसी के कारण उन्हें दरबार छोड़ना पड़ा। सुजान के प्रति उनका अनुराग इतना अनन्य और एक निष्ठ था कि उसका वह कभी विस्मरण नहीं कर सके। अपनी कविता में वह सुजान का सदैव स्मरण करते रहे। ये निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। लाला भगवानदीन ने इनका जन्म सन् 1746 माना है तथा मृत्यु 1796 में नादिरशाही हमले से मानी जाती है।

इनकी रचनाओं का संपादन आचार्य पं.विश्वनाथ मिश्र ने किया है। घनानंद सच्चे अर्थों में स्वच्छन्दतावादी थे। वे सच्चे प्रेमी कवि हैं। उन्होंने जीवन में जो प्रेम किया उनका काव्य उसी की अभिव्यक्ति है। स्वानुभूतिपरक वर्णन होने के कारण उनके काव्य में जो मार्मिकता और हृदय को स्पर्श करने की क्षमता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनका प्रेम रीतिबद्ध कवियों के समान शरीर तक सीमित नहीं। यहाँ प्रेम का उदात्तीकरण हो गया है।

2. **आलम-** आचार्य शुक्ल के अनुसार आलम नाम के दो कवि हुये। एक अकबर के समकालीन तथा दूसरे औरंगजेब के पुत्र मुअज्जमशाह के दरबारी। प्रथम आलम की रचना माधवानल कामकंदला है। नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरणों में आलम की चौदह रचनाओं का उल्लेख मिलता है लेकिन उनके प्रामाणिक चार ग्रंथ माने जाते हैं- माधवानल-कामकंदला, सुदामा चरित, श्याम सनेही और आलम केलि।

3. **बोधा-** हिन्दी में बोधा नामक दो कवियों का उल्लेख मिलता है। एक रीतिमुक्त कवि बोधा और दूसरे रीतिबद्ध बोधा कवि, स्वच्छन्दमार्गी कवि बोधा राजापुर जिला बाँदा के रहने वाले थे। ये महाराजा पन्ना के दरबार में रहते थे। इनका जन्म सन् 1804 माना जाता है।

व्यक्तित्व और रचना दोनों दृष्टियों से बोधा स्वच्छन्दमार्गी थे। जिस प्रकार इनका काव्य रीति की परम्पराओं और रूढियों से मुक्त है, उसी प्रकार जीवन में भी वे उन्मुक्त प्रेम के पथिक थे। बोधा कवि की दो रचनायें उपलब्ध हैं- (1) विरहवारीश अथवा माधवालन कामकन्दला, (2)इश्कनामा अथवा विरही सुभानदम्पत्ति विलास। इनमें विरहवारीश एक प्रबल काव्य है जो विरही

बोधा और सुभान के संवाद के रूप में लिखा गया है। बोधा की इन रचनाओं को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि उसमें प्रेम की पीड़ा का सहज किन्तु प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिपादन किया गया है।

4. **ठाकुर-** हिन्दी साहित्य के कतिपय इतिहास-ग्रन्थों में ठाकुर नामक तीन कवियों का उल्लेख मिलता है। किन्तु खोजों से पता चलता है कि असनी निवासी एक ही ठाकुर कवि थे, दो नहीं। ठाकुर कवि के दो काव्य संग्रह उपलब्ध हैं ठाकुर ठसक और ठाकुर शतक। ठाकुर कवि के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है, "ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि हैं। इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं। न तो कहीं व्यर्थ का शब्दाडम्बार है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष। भावों को यह कवि स्वाभाविक भाषा में उतार देता है। बोलचाल की भाषा में भावों को ज्यों का त्यों सामने रख देना कवि का लक्ष्य रहा है।"

रीतिसिद्ध काव्य

इस वर्ग के प्रमुख कवियों में बिहारी, बेनी, कृष्ण कवि, रसनिधि, नृपशंभु, नेवाज, हठी जी, रामसहाय दास, पजनेस आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

रीतिसिद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

(1) इन रचनाओं में रचयिता के कवित्व का अधिक उद्घाटन मिलता है जबकि रीतिबद्ध काव्य के रचयिता अपने आचार्यत्व की झलक अपनी कृतियों में छोड़ते हैं।

(2) रीतिबद्ध कवियों ने रीति-परंपरा की न तो उपेक्षा की न उसका अंधानुकरण। वे रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों से इस बात में भिन्न हैं कि वे आचार्य बनने के आकांक्षी न होते हुए भी रीति-परंपरा द्वारा प्राप्त काव्य के उपकरणों से अपनी रचनाओं को मंडित करने में संकोच नहीं करते। रीतिमुक्त कवियों की भांति वे काव्यशास्त्रीय परंपरा की नितांत उपेक्षा नहीं करते। रीतिसिद्ध कवि रीति-ग्रंथों का निर्माण नहीं करते। इस प्रकार ये न तो रीति से बंधे हैं न पूर्णत: उदासीन।

(3) रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा इन कवियों ने काव्य में अपने व्यक्तित्व का प्रतिबिम्बन अधिक किया है, परंतु रीतिमुक्त कवियों की अपेक्षा इनमें सामान्य तत्व अधिक है।

(4) इस वर्ग के कवि चमत्कार की चिंता लक्षण-ग्रंथों के अनुमोदन की अपेक्षा संस्कृत के श्रृंगार मुक्तकों के अधिक अनुगामी हैं।

(5) संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा की अपेक्षा संस्कृत के श्रृंगार मुक्तकों के अनुगामी कवि।

(6) ऐहिक जीवन के मार्मिक खंड-चित्र प्रस्तुत करने के कारण इनके मुक्तक रीतिबद्ध कवियों के लक्षण अनुगामी मुक्तकों की अपेक्षा अधिक रसात्मक हैं। इसी से कतिपय रीतिसिद्ध कवियों को समीक्षकों ने रस-सिद्ध भी माना है।

(7) इस वर्ग के कवियों ने दोहा-छंद का अधिक प्रयोग किया है। मुक्तक शैली तथा श्रृंगार का प्राधान्य इन्हीं कवियों की रचनाओं में सबसे अधिक उभर कर सामने आया है।

(8) अपनी काव्य कृतियों के लिए इन कवियों ने अलंकार, रस तथा ध्वनि संप्रदायों को अपना प्रेरणा-स्रोत बनाया है।

(9) इनके अलंकार-विधान में पिष्ट योषण न्यूनतम है।

(10) इनके काव्य में भाव-पक्ष और कला-पक्ष का संतुलित समन्वय है जबकि रीतिबद्ध काव्य में कला-पक्ष तथा रीति-मुक्त काव्य में भाव-पक्ष प्रधान है।

रीतिमुक्त काव्य

इस वर्ग के प्रमुख कवि रसखान, आलम, ठाकुर, घनानंद, बोधा, द्विजदेव आदि हैं। इन्हें स्वच्छंद कवि का भी नाम दिया गया है।

इस वर्ग में रीतिबद्ध कवियों के दोषों का लगभग अभाव है। इन कवियों के कारण ही कतिपय समीक्षकों की दृष्टि में श्रृंगारकालीन काव्य उन आरोपों से मुक्त कहा जा सकता है जिनके कारण श्रृंगारकालीन काव्य को भक्ति-काव्य से हेय बताया गया है। संक्षेप में, इस वर्ग के काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

(1) प्रतिपाद्य विषय अधिकतर निबंध एवं उदात्त प्रेम है।

(2) भाव-पक्ष कला-पक्ष की अपेक्षा अधिक मुखर है।

(3) पूर्ववर्ती लक्षण एवं लक्ष्य दोनों प्रकार के ग्रंथों का आधार इन्होंने कम से कम लिया है।

(4) स्वानुभूति एवं मुक्त प्रेम पर अधिक बल दिया गया है। परानुभूति, परोक्ष प्रेम तथा परंपरा की उपेक्षा की गई है।

(5) रसखान, आलम, शेख, बोधा, सुजान तथा सुभान सभी की व्यक्तिगत प्रेम की कहानियां प्रसिद्ध हैं, ठाकुर भी वैयक्तिक प्रणयानुभूति से शून्य नहीं थे, इसी से इनके काव्य में तन्मयता, सहजता तथा स्वाभाविकता है।

(6) इस वर्ग की कृतियों में काव्य के साधन और साध्य एकाकार हो गए हैं, इसका कारण कवियों की तीव्र अनुभूति, भाव-सघनता और सहज अभिव्यक्ति है।

(7) श्रृंगार के विप्रलंभ-पक्ष को सबसे अधिक प्रधानता इसी काव्य में प्राप्त है जिससे ऐहिक प्रेम का ऊर्जस्वीकरण हो गया है और प्रेम की यथार्थता को नष्ट किए बिना ही उसमें दिव्यता, पावनता, व्यापकता तथा अपार्थिविता आ गई है। त्याग और समर्पण की भावना इस काव्य को अनन्य तथा एकनिष्ठ आत्मा की पुकार में परिणित कर देती है।

(8) विरह-वर्णनों में कल्पना और ऊहा के स्थान पर ऋजुता, यथार्थता एवं भावुकता की त्रिवेणी प्रवाहमान दृष्टिगोचर होती है।

(9) इस काव्य में वर्णित प्रेम उभय-पक्षी न होकर अधिकतर एकपक्षीय है, प्रेम के इस विषम पथ पर कामुकता लड़खड़ा कर धराशायी हो जाती है और केवल उत्सर्ग भावोत्प्रेरित साधना ही चरम गंतव्य तक पहुंचने के लिए अपेक्षित धैर्य एवं उत्साह जुटा पाती है।

इस संदर्भ में कतिपय उद्धरण दृष्टव्य हैं-

ठाकुर- **ऊधौ जू दोष तुम्हैं न उन्हैं हम आपुहि पांव में पाथर मारे।**
नैंननि के तारे तुम न्यारे कैसे होहु पीय,

आलम- **पायन की धूरि हमैं दूरि कै न जानिए।**

घनानंद- **नित नीके रहौ तुम्हैं चाड़ कहा,**
पै असीस हमारियौ लीजियौ जू॥
आरतिवंत पपीहन कौ घन आनंद जू पहिचानौ कहा तुम।
ने ही महा ब्रजभाषा प्रवीन और सुन्दर तानि के भेद को जानै।
जोग-वियोग की रीति में कोविद भावना-भेद स्वरूप को ठानै॥
चाह के रंग में भीज्यो हियो विधुरे मिलै प्रीतम सांतिन मानै।
भांषा प्रवीन सुछंद सदा रहै सो धन जी के कवित्त बखानै॥

अपने कवित्त बखानने वाले भावुक सामाजिक की उपर्युक्त विशेषताओं का परिगणन कराते समय कवि ने अपने ही व्यक्तित्व का नहीं, अपने वर्ग के समस्त कवियों की सामान्य प्रवृत्तियों का जाने में या अनजाने में उद्‌घाटन कर दिया है। इन कवियों की रचनाओं को हृदयंगम करने के लिए चर्म-चक्षुओं की नहीं अंतश्चक्षुओं की आवश्यकता है। साहित्य श्रुतता इस वर्ग के कवियों का सबसे प्रधान गुण है। इन कवियों में यह गुण घनानंद में सबसे अधिक पाया जाता है। इन कवियों की प्रेम-संवेदना का उन्नयन ही उसके भक्ति-संवेदना में रूपांतरित हो जाने का मनोवैज्ञानिक कारण है। भक्ति-संवेदना में जिस अनुभूति-भंगिमा की दुर्बलता अधिकांश परवर्ती भक्तों की रचनाओं में आ गई थी, वहीं सहजानुभूति इन रीतिमुक्त कवियों में प्रभूत मात्रा में विद्यमान थी।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने घनानंद के निरालेपन को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है- "घनानंद के काव्य में केवल रसखान की सी रचना नहीं मिलती, उसमें आलम ठाकुर, बोधा, द्विजदेव सबकी उत्कृष्ट विशेषताओं का समावेश हो गया है, पर घनानंद की कुछ विशेषता ऐसी है, जो न रसखान में है, न आलम में, न ठाकुर में, न बोधा में, न द्विजदेव में। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त स्वच्छंद गायकों से अपनी विशेषताओं के कारण पृथक्‌और श्रेष्ठ है वह रीति काव्य के कर्ताओं से अपनी विशेषताओं और प्रवृत्तियों के कारण निश्चय ही पृथक्तर और श्रेष्ठतर है।"

भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से मीरा के काव्य की समीक्षा

मीराबाई की काव्यगत विशेषताएं मध्यकालीन कवियों के समान ही कई प्रकार के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करने वाली हैं। इस विषय पर इस प्रकार से प्रकाश डाला जा रहा है-1. भावपक्षीय वैशिष्ट्य और 2. कलापक्षीय वैशिष्ट्य।

1. भावपक्षीय वैशिष्ट्य

मीराबाई के काव्य का भावपक्षीय वैशिष्ट्य इतना विविध है कि उसमें किसी प्रकार के असंभावित तथ्यों का प्रवेश नहीं दिखाई पड़ता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उसमें स्वाभाविकता और यथार्थता के गुण विद्यमान हैं। इस प्रकार के वैशिष्ट्य निम्नलिखित हैं-

1. **निर्गुण भक्ति-पद्धति-** निर्गुण संतों के अनुसार ही उनका प्रियतम संपूर्ण विश्व में समाया हुआ है, सबके घट-घट में व्याप्त है, केवल सूरत-निरत की दिव्यता संजोकर उसे देखने की आवश्यकता है, इसके लिए मीराबाई ने संतों के प्रतीकों को भी अपनाया है, जैसे-पंचरंग का चोला पहनकर झिरमिट खेलने जाना, अपने प्रियतम से द्वैत गाती खोलकर मिलना, गगन मंडल पर पिया की सेज बिछाना, शून्य महल के झरोखे से उसकी सूरत लगाना आदि। इस प्रकार के स्वरूपों को व्यक्त करने वाली मीराबाई के कुछ निर्गुण पद इस प्रकार से हैं-

"बंदे बंदगी मति भूल।
चार दिना की करले खूबी, ज्यों दाड़िमया फूल।
आया था ए लोभ के कारण, मूल गमाया भूल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, रहना है वे हजूर॥"

2. **वैष्णव भक्ति-पद्धति-** वैष्णव भक्ति-पद्धति का एक महत्वपूर्ण सोपान है, इस भक्ति-पद्धति का अंगीकार प्राय: सभी भक्तिकालीन रचनाकारों ने किसी-न-किसी रूप में अवश्य किया है, इस भक्ति-पद्धति में नवधा भक्ति को पूर्ण रूप से महत्व दिया गया है। भक्ति के नौ सौपान हैं-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पद-सेवा, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन। श्रवण में भक्त अपने आराध्य के गुणों को सुनता है, कीर्तन के द्वारा उन्हें प्रकट करता है, नाचकर तथा गाकर सुनाता है, पद-सेवा का अर्थ है-अपने भगवान् के चरणों की पूजा करना, उनका गुण-गान करना; अर्चन का अर्थ है पूजा

करना, वंदन का अर्थ है वंदना करना, स्तुति करना; दास्य का अर्थ है, दास अथवा दासी भाव से भगवान की सेवा करना, सख्य का अर्थ है, संखा या सखी या साथी के भाव से पूजा करना और आत्म-निवेदन का अर्थ है-अपने प्रियतम के समक्ष हृदय खोलकर रख देना।

3. **माधुर्य भक्ति-पद्धति-** सगुण भक्त कवियों ने माधुर्य भक्ति-पद्धति को विशेष महत्व दिया है। इसके लिए इन कवियों ने हृदय की सच्ची अनुभूति प्रकट की है-

मधुर रस के अनुसार भक्त अपने भगवान को पति-रूप में देखता है और इसी भाव के कारण उसका अपने आराध्य के प्रति घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जाता है कि 'सूरज-घामा' की भांति दोनों में कोई अंतर नहीं रहता। मीरा नारी थीं, इसलिए इनका माधुर्य भाव अत्यंत सहज, स्वाभाविक और मार्मिक है। जिस प्रकार ब्रज की गोपियां मधुर भाव से कृष्ण को अपना सर्वस्व न्यौछावर कर चुकी थीं, उसी प्रकार उसी गोपी-भाव से मीरा ने भी स्वयं को उसी गिरधरनागर के हाथों बेमोल बेच दिया है। यह पद्धति है कि मीरा स्वयं को ललिता गोपी का अवतार मानती थीं और इसलिए यह कृष्ण के साथ अपना जन्म-जन्म का संबंध घोषित करती हैं-

"मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिनि पल न रहाऊं।
जहां बैठावे तितही बैठूं बेचै तो बिक जाऊं॥"

2. कलापक्षीय वैशिष्ट्य

मीराबाई का कलापक्षीय वैशिष्ट्य अत्यंत समृद्ध है। इसमें सहजता और रोचकता दोनों ही दिव्य गुण विद्यमान हैं। इस प्रकार के कलापक्षीय वैशिष्ट्य को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

1. **भाषा-** मीरा की पदावली भारतीय भाषाओं और बोलियों की पदावली है। इनमें-राजस्थानी, ब्रज और गुजराती आदि प्रमुख हैं। इनके कुछ उद्धरण इस प्रकार से हैं-

राजस्थानी भाषा का प्रयोग-

"मुज अबला ने मोटी नीरांत गई रे।
छामल धरेणु मारे सांचु रे।
वाली घड़ावूं बिट्ठल र अकेरी, हार हरी नो मारे हैये रे।
चित्र माला चतुरभुज चूड़लो, शिव सोनी धरे जइये रे।
झांझरिया जग-जीवन केरा, कृष्ण जी कड़ला ने कांवी रे।
वीथिया घूंघरा रामनारायण ना अपघट अंतरजामी रे॥"

ब्रजभाषा का प्रयोग-

"यहि बिधि भक्ति कैसे होय।
मन की मैल हियतें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय॥
काम कूकर लोभ डोरी, बांधि मोंही चंडाल।
क्रोध कसाइ रहत घट में, कैसे मिले गोपाल॥
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै छुधा रत से, राम नाम न लेत॥"

मीराबाई की भाषावली की कुछ अन्य विशेषताएं हैं- प्रवाहमयता, भावप्रवणता और संगीतात्मकता आदि। इनसे मीराबाई की भाषा कहीं जटिल और कहीं सुबोध हो गई है।

2. **रस-** मीरा की समस्त पदावली का पर्यवेक्षण कर लेने के पश्चात् यह असंदिग्ध रूप में कहा जा सकता है कि इनकी रस-योजना के अंतर्गत केवल दो ही रस आते हैं-श्रृंगार और शांत रस। अनेक पदों में करुण रस की अभिव्यक्ति की भी अनुभूति होती है, किन्तु वह करुण रस न होकर विप्रलंभ श्रृंगार की करुणा है। अनेक पदों में वीर, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रसों का आभास भी मिलता है, किन्तु ये भक्ति की प्रेरणा के अंतर्गत ही आये हैं और शुद्ध मनोभावना पर आश्रित हैं, अतः इन्हें रस न मानकर भाव मानना ही उपयुक्त है। श्रृंगार रस के दो भेद हैं-

1. संयोग-श्रृंगार और 2. वियोग श्रृंगार या विप्रलंभ श्रृंगार

इन दोनों ही रसों का सरस प्रवाह मीरा की रचनाओं में प्राप्त होता है।

3. **छंद-** मीराबाई की कविताओं में मुख्य रूप से मार्मिक छंदों के ही प्रयोग हुए हैं-इनमें सार छंद, सरसी छंद, विष्णुपद छंद, दोहा छंद, समान सवैया, शोभन छंद, ताटक छंद और कुंडल छंद प्रमुख हैं। मीराबाई की प्रयुक्त हुई छंद-योजना गेय होने पर भी शुद्ध नहीं है। उसमें यत्र-तत्र अनेक दोषों का दर्शन होता है। यह कहना कठिन है कि ये दोष मूलतः मीरा के हैं अथवा इनके भक्तों की कृपा है जिन्होंने इनके पदों को इतने प्रेम और तल्लीनता के साथ गाया है कि वे छंद नियमों की ओर कोई ध्यान नहीं दे सके। मीरा के काव्य की भावमयता को देखकर इनकी ये छद-विषयक त्रुटियां नगण्य हैं।

4. **अलंकार-** मीराबाई के काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों के ही उचित प्रयोग हुए हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार से हैं-

1. **अनुप्रास -** **मोर मृगट माथ्यां तिलक विराज्यां, कुंडल अलकां कारी जी।**
भोजन भवन भलौ नहिं लागै, पिया कारण भई गेली॥

2. **रूपकालंकार-** **अंसुवां जल सींच प्रेम बेलि बूयां।**
विरह भवंग वस्यां कलेजा मा लहर हलाहल जागी॥

संक्षेप में हम कहेंगे कि मीराबाई का संपूर्ण व्यक्तित्व सर्वथा अनोखा और अद्वितीय व्यक्तित्व है। मीराबाई काव्य भावमय और प्रेरणादायक है। इस प्रकार की विशेषताओं के अतिरिक्त मीराबाई की कतिपय और विशेषताएं हैं जिनसे इनका स्थान आज तक कोई नहीं ले पाया है।

केशव के काव्य की भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से समीक्षा

(अ) भाव पक्ष

उनके भाव पक्ष की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(1) **केशव के काव्य में पांडित्य अधिक** - कुछ लोगों की दृष्टि में केशव में स्स की खोज करना ही निर्रथक है। वे हिन्दी में कठिन काव्य का प्रेत कहलाते हैं। इससे एक व्यक्ति इस परिणाम पर पहुंच सकता है कि केशवदास में भावपक्ष बिलकुल ही नहीं है, परन्तु यह कथन सर्वथा अनुपयुक्त है। उसका कारण यह है कि हम उनके दृष्टिकोण को नहीं समझ पाये हैं। केशवदासजी के पूर्वज भी संस्कृत के साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने अपनी रचनाएं संस्कृत भाषा में ही की थीं। उनमें अकेले केशवदास ही थे जिनको हिन्दी में कविता करनी पड़ी। कवि ने स्पष्ट लिखा है -

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
तिन भाषा कविता करी, जड़मति केशवदास॥

(2) **केशव अलंकारवादी थे** - केशव को गहन अध्ययन का अच्छा अवसर मिला था। वे महाराज इन्द्रजीत के यहां राजसी ठाठ से रहते थे, इसलिए उनमें आत्माभिमान होना स्वाभाविक था। इस समय संस्कृत साहित्य का पूर्ण विकास भी हो गया था और उनके सम्प्रदाय भी चल पड़े थे - अलंकार सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय और रस सम्प्रदाय। केशवदासजी ने अलंकार

सम्प्रदाय को चुना। उन्होंने भामह, उद्‌भट और दण्डी आदि प्राचीन आचार्यों का अनुसरण किया, जो रस, रीति आदि सब कुछ अलंकार के ही अन्तर्गत मानते थे। इसलिए उनमें अलंकार पक्ष ही प्रबल रहा। उन्होंने स्पष्ट रूप में घोषित किया है -

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न विराजहीं, कविता बनिता मित्त॥

(3) **श्रृंगार रस को प्रधानता** - केशवदासजी में श्रृंगार रस की प्रधानता है। उन्होंने श्रृंगार रस के दोनों पक्ष - संयोग पक्ष और वियोग पक्ष, को स्थान दिया है। परन्तु कवि का मुख्य लक्ष्य अलंकारों की ओर था, इसलिए उनकी कविताओं में वह भावुकता न आ पाई जो अपेक्षित है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का वह मार्मिक वर्णन प्रस्तुत न कर सके। वात्सल्य और प्रेम आदि के सफल चित्र वे उतार न सके। अनेक प्रसंगों में उनके पांडित्य की झलक मिलती है। यही कारण था कि तुलसीदासजी ने भक्ति सुरसरि में अपनी लेखनी डुबोकर जिन वर्णनों को अमरत्व प्रदान किया, वहां केशवदासजी उनका वर्णन मात्र ही करके रह गये।

(4) **केशन को कवि हृदय नहीं मिला था** - उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी, जो एक कवि में होनी चाहिए। वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य और रचना कौशल की धाक जमाना चाहते थे, पर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए, वैसा उन्हें प्राप्त न था। अपनी रचनाओं में उन्होंने अनेक संस्कृत काव्यों की उक्तियां लेकर भरी हैं, पर उन उक्तियों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में उनकी भाषा बहुत कम समर्थ हुई। पदों और काव्यों में न्यूनता, अशक्त फालतू शब्दों के प्रयोग और सम्बन्ध के अभाव आदि के कारण भाषा भी अप्रांजल और ऊबड़ - खाबड़ हो गई और तात्पर्य भी स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हो सका है। केशव की कविता जो कठिन कही जाती है, उसका प्रधान कारण उनकी यही त्रुटि है, उनकी मौलिक भावनाओं की गम्भीरता या जटिलता नहीं है।

(5) **इसी भावुकता के कारण उनकी रामचन्द्रिका में भावुकता का अभाव मिलता है** - जिन वर्णनों में तुलसीदासजी ने पूर्ण भावुकता का परिचय दिया है, उन स्थलों का केवल संकेत मात्र केशव ने कर दिया है। उनमें प्रबन्धात्मकता नहीं आने पाई है। उसमें कथा का स्वाभाविक प्रवाह नहीं आने पाया है। वह मुक्तक छन्दों का सा ग्रन्थ प्रतीत होता है। प्रबन्ध की श्रन्खला टूटी हुई सी दृष्टिगोचर होती है। कल-कल-निनादिनी गोदावरी और प्रकृतिधाम दण्डक वन उनके हृदय में कोई आकर्षण उत्पन्न न कर सका। मानव प्रकृति पर भी उन्होंने पूर्ण ध्यान नहीं दिया है। वे चमत्कार-प्रदर्शन से आगे न बढ़ सके।

(6) **प्रबन्ध के अंतर्गत मार्मिक प्रसंगों के वर्णन में केशव की वृत्ति नहीं रमी** - केशवदास रामचरित को अपने काव्य का विषय बनाते हैं, परन्तु फिर भी अपने काव्य में मार्मिक चित्रों के चित्रण में सर्वथा असफल रहते हैं। रामचरित मार्मिक स्थलों का और मानव हृदय की कोमल भावनाओं का भण्डार है। राम का अयोध्या त्याग, दशरथ-मरण और राम-वन-गमन इत्यादि ऐसे अनेक स्थल हैं जहां कवि अपने वर्णन द्वारा पाठकों के हृदय को द्रवित कर सकता था। केशव राम-वन-गमन की सम्पूर्ण मार्मिक कथा को एक ही छन्द में दे देते हैं -

यह बात भरत्व की मातु सुनी। पठऊँ वन रामहिं बुद्धि गुनी॥
ते मन्दिर, महँ नृप सों विनयो। वर देहु हुतो हमको जु दयो॥
(कैकयी) नृपता सुविशेष भरत्य लहं। बरसै वन चौदह राम रहै॥

(7) **केशव में भावुकता** - उपर्युक्त जो कुछ वर्णन दिया गया है, उसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि केशव में भाव-पक्ष का नितान्त अभाव है। जहां कवि ने अलंकारों का चोगा उतार फेंका है,

वहां उनके वर्णनों में स्वाभाविकता मिलती है। पति के परदेश जाने के समय नायिका के कथन में कितनी मार्मिकता और मन मुग्धता है -

जो हौं कहौ रहिये तो प्रभुता प्रगट होत,
चलन कहौं तो हित-हानि नाहिं सहनो।
भाव सो करहु तो उदास भाव प्राननाथ,
साथ लै चलहु कैसे लोक लाज बहनो॥
केसोराय की सौं तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत तो पै नहिं आज रहनो।
तैसिए सिखाओ सीख तुम हो सुजान प्रिय,
तुमरे चलत मोहि जैसे कछु कहनो।

(ब) कला पक्ष

उनके कला पक्ष की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(1) **अलंकार-** अलंकारों के प्रयोग में केशवदासजी को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है। एक-एक पद में तीन-तीन और चार-चार अलंकारों का बड़ी सुन्दरता से उन्होंने प्रयोग किया है। उनके अलंकारों में उनके पांडित्य का स्पष्ट रूप से पता चलता है। रामचन्द्रजी की सेना के वर्णन में एक-एक शब्द के तीन-तीन अर्थ लगाने पड़ते हैं। देखिये-

कुन्तल ललित नील भृकुटी धनुष नैन,
कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन,
मध्य देश केशरी सुगज गति भाई है॥
विग्राहानुकूल सब लच्छ लच्छ ऋण बल,
ऋक्षराज मुखी मुख केशोदास गाई है।
रामचन्द्र जू की चमू राजश्री विभीषन की,
रावण की मीचु दरकूच चलि आई है॥

(2) **भाषा शैली** - केशवदास की भाषा ब्रजभाषा है, परन्तु उस पर बुन्देलखंडी भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कहीं-कहीं पर उन्होंने बुंदेलखंडी मुहावरों को भी रख दिया है। उनकी भाषा में कहीं कहीं व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियां भी खटकती हैं। उनकी भाषा में दुरूहता मिलती है। रस, नायिका आदि के भेद-वर्णन में भाषा प्रवाह गुण युक्त है। पांडित्य के प्रदर्शन के कारण ही उनकी भाषा संस्कृतबहुला हो गयी है। केशवदासजी ने अभिधा शक्ति से ही अधिकतर काम लिया है। कहीं-कहीं पर लक्षणा भी मिल जायेगी, परन्तु व्यंजना शक्ति का आपने अधिक प्रयोग नहीं किया है। इनकी शैली में अपनापन अधिक मिलता है। अपने समय की सभी प्रचलित शैलियां आपकी रचनाओं में मिलती हैं।

(3) **छन्द विधान** - रामचन्द्रिका आरम्भ करने के समय ही कवि ने इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर दिया - **'रामचन्द्र की चन्द्रिका बरनत हौ बहु छन्द ।'** केशव का छन्दमाला ग्रन्थ हिन्दी में छन्द-शास्त्र पर पहला ग्रन्थ है। रामचन्द्रिका में केशव ने विचित्र छन्दों का प्रयोग किया है। छन्द निर्वाह में उनको सफलता मिली है। एकाक्षरी छन्द से लेकर बड़े-बड़े छन्द 'रामचन्द्रिका' में मिलते हैं। उन्होंने कुछ नये छन्दों की भी उद्‌भावना की है।

(4) **आचार्यत्व -** केशव रीतिग्रन्थ लिखने की शैली के प्रवर्तक हैं। उन्होंने अलंकारवादी आचार्यों दण्डी, रूय्यक आदि का अनुकरण किया। केशव ने रस को अलंकारों के अन्तर्गत ही माना है। कविप्रिया में कवि कर्म का विस्तार से विवेचन है।कवि शिक्षा के लिए अपेक्षित सभी बातें कविप्रिया में बताई हैं। केशव का रसिक प्रिया लक्षणग्रन्थ है। इसमें मुक्तक काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। आचार्यत्व की दृष्टि से रीतिकाल के कवियों में केशव का महत्वपूर्ण स्थान है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि केशव में भावपक्ष की कमी अवश्य है किन्तु अनुभूति का पूर्ण रूप से अभाव नहीं है। वे अलंकारों के महान पण्डित थे। भाषा और छन्द के वे कुशल कलाकार थे। उनके सम्वाद हिन्दी - साहित्य में प्रमुख स्थान रखते हैं। अपने अपनाये हुए पथ में वे सर्वथा सफल रहे।

घनानंद के काव्य का भाव पक्ष

इनके भावपक्ष की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं -

(1) **सौंदर्य चित्रण-** घनानंद ने दो विषयों पर कलम चलाई है- (i) भक्ति तथा (ii) प्रेम।प्रेम का प्रकट आलंबन 'सुजान' है-गौण श्रीकृष्ण एवं राधिकाजी। मुख्यत: वियोग श्रृंगार का काव्य होने पर भी घनानंद ने 'प्रिय' के रूप-सौंदर्य का अपूर्व चित्रण किया है। रूप यौवन, अंग मुख कवि और चलने, हंसने, बोलने आदि क्रियाओं का मधुर एवं आकर्षक वर्णन किया है। सुजान के रूप में वे अनुपम छटा देखते हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हंसे बोलनि में छवि-फूलत की, वरषा उर ऊपर जाति है व्है।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कण्ठ बनी जल जावलि द्वै॥
अंग-अंग तरंग उठै दुति की, परि है मनौ रूप अबै घर च्वै॥"

यह वर्णन क्रमबद्ध रूप से नहीं है, जिस आकर्षक छवि पर उनकी दृष्टि पड़ी उसी का चित्रण करने में उनका मन रम गया है। वर्णन कामुक न होकर प्रेम के पवित्र भाव जगाने वाला है। **"तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजति आदे सुभायन।**

छातत सौंदर्य की राशि होकर भी सीधे स्वभाव वाली सात्विक नारी है।"

(2) **संयोग वर्णन-** 'घनानंद गाइ है, चिरवियोग की गाथ' परंतु कुछ छंद उन्होंने संयोग श्रृंगार के भी लिखे हैं। 500 की विशाल काव्य राशि में भी 20 छंद संयोग वर्णन से संबंध रखते हैं। संयोग की अवस्था का वर्णन करते कवि से समीप्यलाभ, संसर्गलालसा, लाज भीनी चितवन, आलिंगन आदि का चित्रण हुआ है। प्रेमी को उन्मुक्त करता नायिका का यह चित्र देखिए-

"मृदु मूरित लाड़-दुलार भरी अंग-अंग बिराजति रग मई।
घनानंद जोबन-माता दसा सवि छाकत ही मति छाक छइ।

कुछ चित्र संभोग दशा की निकटता के हैं।

मरि जोबन रंग अनंग-उमंगनि अंगहि अंग समोह रहे।"

पर ये चित्र वीभत्सता और कुरुचि से दूर कवि की मानसिक दशा के उद्घाटक हैं।

(3) **वियोग वर्णन-** घनानंद की विरह-वेदना में प्राण और आत्मा की बेचैनी समाई है, क्योंकि उनका प्रेम और विरह स्वानुभूति था। उन्होंने अपना जीवन ही प्रेम पर न्यौछावर कर दिया था। विरह वर्णन रूढ़िगत न होकर मर्मगत है। वियोग तो घनानंद के काव्य का प्राण है। वियोग उनके प्रेम का चिरतत्व है।

वियोगी की स्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि-

"सोयबो न, जागिबो हो, हंसिबो न, रोयबों हूं,
खोय खोय आप ही में चेटक लहनि है।"

न सोते बनता है, न जागते बनता है, न हंसते बनता है, न रोते बनता है अपने आप में खोये हैं, मानो किसी जादूगर का शिकार हो।

प्रेमिका के देखे बिना हरदा ही अमावस है और आंखें सदैव सावन की तरह बरसती रहती हैं। एक क्षण के लिए भी उसके मन को चैन नहीं मिलता-

"नैननि धारि दियै बरसै घनानंद छाई अनोखिए पावस,
जीवन मुरित जान को आनन है बिन हरे सदाई अमावस।"

प्रेमिका से दूर होने पर वह हर क्षण उसकी समृद्धि में ही डूबा रहता है। मिलन में भी उसे विछोह का डर था, अब तो बीच में पहार ही आ गिरते हैं-

"तब तो छवि पीवत जीवत है, अब सोचन लोचन जात जरै।
तब हार पहार से लागत है, अब आनि के बीच पहार परै।।"

विरह की मारी नागमति का संदेश लेकर पक्षी गया था। घनानंद अपनी विरहिणी आत्मा का संदेश 'पवनदूत' के माध्यम से भेजते हैं और 'उसके' पावों की धूरी ला देने की याचना करते हैं- **"ऐरे बीन पौन ! तेरो सबे और गोन बीरी,**

तो सों और कौन? मने दर कौ ही बानि दे।
विरह विथाह भूरि आंखनि मैं राखौ पूरि,
घूरि तिन पायन की हा-हा नेकु आनि दे।"

मेघदूत से मार्मिक निवेदन करते हुए कवि कहता है कि वह कभी उसकी विरह व्यथा से आंसू लेकर उसके आंगन में बरसा दे, ताकि उसकी विरह व्यथा का अंदाजा हो सके-

"पर-काजहि देह को धारे फिरौ पराजन्य जथारथ व्है दरसौ।
कबहूं वा बिसासी सुजान के आंगन अंसुवानि को लै बरसौ।"

आर्या शुक्ल इनकी विरह व्यंजना पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-

"प्रेम दशा की व्यंजना ही इनका अपना क्षेत्र है। प्रेम की गूढ़ अंतर्दशाओं का जैसा उद्घाटन इनमें है वैसा हिन्दी के अन्य श्रृंगारी कवि में नहीं।"

(4) **भक्ति निरूपण-** घनानंद निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित थे। इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण की चरण सेवा महत्व ही सर्वोपरि है। घनानंद ने श्रीकृष्ण, राधा, ब्रज, गोकुल, वृन्दावन, बरसाना आदि के प्रति अनन्य भक्तिभाव से परिपूर्ण रचनाएं की हैं। उन्होंने दास्यभाव से, सख्यभाव के गोपीभाव से भगवान कृष्ण की भक्ति की है।

दास्यभाव- 'आयो सरन विकार भरयो।'

संख्यभाव- 'मोरे मितवा तुम बिन रहयो न जाये।'

सखीभाव- 'राधा कौ सुखं मनाऊं। सुख दै दै हौ सुख ही पाऊं।'

इसी प्रकार अनेक सवैयों, कवित्तों, पदों में घनानंद ने अपनी उत्कृष्ट भक्ति भावना का परिचय दिया है। उनके काव्य के प्रमुख रस श्रृंगार और शांत रस हैं। उनका प्रिय रस श्रृंगार रहा है। कल्पना की ऊंची उड़ान, गहरी भावानुभूति उनके काव्य के श्रृंगार हैं।

काव्य का कलापक्ष

घनानंद के काव्य का कला पक्ष भी भाव पक्ष की भांति सजा-संवरा है। इसमें कोई शक नहीं कि भाव पक्ष अधिक सफल बन पड़ा है। भाषा, छंद, अलंकार सभी उनके भावों के दास-दासी रहे। घनानंद का काव्य इन सभी दृष्टियों में धनी है।

उनके कला पक्ष की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(1) **भाषा-** घनानंद की काव्य भाषा रीतिकालीन कवियों की काव्य भाषा से अलग है। उनकी भाषा टकसाली भाषा नहीं, गढ़ी हुई भाषा नहीं वरन् भावों की भाषा है, हृदय की भाषा है, उनकी भाषा मायावी है, जो यथासमय संकोच और विस्तार, लोच और वक्रता, सुंदरता और एकरूपता, क्रांति और गांभीर्य, अर्थमत्ता और गूढ़ता व्यक्त करने में प्रवीण है। भाषा के प्रयोग में घनानंद असाधारण रूप से पटु थे।

उनकी काव्य भाषा साहित्यिक ब्रज भाषा है, जिसमें ठेठ ब्रजभाषा भी अपने संपूर्ण सौष्ठव के साथ विद्यमान है। 'शब्द स्थापना' उनकी काव्य भाषा की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है, भावों के अनुकूल शब्द चयन कर उन्हें छंद में बांधा है। घनानंद की काव्यभाषा में उक्तियों की जो भंगिमा है, वह अन्य कवियों की भाषा में नहीं। एक उदाहरण देखिए-

"तुम कौन-सी पाटी पढ़े हो लला मन लेहु ते देहु छटांक नहीं।"

लोकोक्तियों एवं मुहावरों का आपके काव्य में भरपूर प्रयोग है। इनकी भाषा सामाजिक भी रही है और द्विअर्थी भी। उसमें कतिपय काव्य दोष और क्लिष्टता देखी जा सकती है। लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों का उनके काव्य में जमकर प्रयोग हुआ है।

घनानंद की भाषा रीतिकालीन काव्य भाषा की अपेक्षा अधिक श्रीसंपन्न है।

(2) **छंद योजना-** रचना शैली की दृष्टि से उनका काव्य मुख्यत: 6 भागों में विभक्त किया जा सकता है- (1) कवित्त सवैया शैली, (2) फारसी प्रभावित छंद शैली, (3) दोहा चौपाई शैली, (4) मिश्रित शैली, (5) पद शैली, (6) नव छंद प्रधान शैली।

फिर भी उनकी लोकप्रिय रचनाओं को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि कविता सवैया शैली उनकी प्रिय शैली है। इसके बाद उन्हें दोहा और चौपाई छंद ही अधिक प्रिय थे।

(3) **अलंकारी योजना-** घनानंद का काव्य भावपूर्ण शैली में लिखा गया निरलंकृत काव्य है। उनके काव्य में अलंकार अनायास लिए हैं। उनकी वर्णन शैली इन्हें साथ ले आयी है, परंतु 'सुजानहित'जो उनकी काव्य कीर्ति का आधार ग्रंथ है, उसमें अलंकारों का अभाव नहीं है।

विरोधाभास- उनका प्रिय अलंकार है। कहा जाता है कि जिस रचना में विरोधाभास न हो वह घनानंद की रची नहीं हो सकती। विरोधाभास आपके काव्य का अविभाज्य अंग है। उदाहरण देखिए- (1) **पौन सौ जागत आग सुनी ही पै पानी सौ लागति आंखिन देखि।**

(2) **ही घनानंद जीवन मूल दई कित प्यासन मारतमोही।**

रूपक घनानंद का दूसरा प्रिय अलंकार है। भक्ति भाव एवं वैराग्य भावना से परिपूर्ण इस पद में रूपक का निर्वाह कैसे भावपूर्ण ढंग से हुआ है।

"लारिकाई प्रदोष में खेल खग्यौ हंसी रोग सु औसर खोय दयौ।

बहुरौ करिपान विषं मदिरा तरुनाक तभी मधि सौय गयौ।"

उपमा- बहीर-सी उम्र तो लदी जा रही है आप कब उचित अवसर समझकर आए हो।

"कब आये हो औस जानि सुजान, बहीर लौ बैसतो जात लदी।"

आपके काव्य में अनन्वय, प्रतीक, उत्प्रेक्षा, व्यक्तिरेक, संदेह, असंगति, विभावना तद्‌गुण, उदाहरण, यथासंख्या, अर्थान्तरन्यास, अपन्हु आदि अनेक अन्य अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

डॉ. कृष्णचंद्र वर्मा के अनुसार, "जहां उनमें हम साधारण भावुकता के दर्शन करते हैं, वहीं उनके काव्य में कलापक्ष को भी पर्याप्त समुन्नत पाते हैं। रह-रहकर रूपों का ठाट खड़ा करना, हर छंद में विरोध का निदर्शन करना और सहज ही अपनी भावभंगिमा और भाषा कौशल द्वारा सुन्दर से सुन्दर अलंकार प्रयोग करना उनके काव्य शिल्प का एक प्रधान गुण है।"

निष्कर्ष

अंत में उपरोक्त आधारों पर कहा जा सकता है कि वे एक सहज भावुक कवि थे। उन्हें अपने हृदय के भावों का स्पष्टीकरण मात्र ही अपेक्षित था। कविता उनके भावोद्‌गारों की पूंजी थी।

नंददास की प्रसिद्ध साहित्यिक रचना

नंददास सूर के पश्चात् अष्ट छाप के दूसरे कवि हैं। उनकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएं 'रासपंचाध्यायी' एवं भवगीत हैं। अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी नामशाला के अलावा विरह मंजरी में एक ब्रजयुवती की वियोग-दशा का वर्णन किया गया है। इसकी शैली बारहमासे जैसी है। ब्रजयुवती की वियोग काल्पनिक रूप में वर्णित है। युवती सोचती है कि कृष्ण द्वारिका चले गये हैं तथा वह उनके वियोग में व्यथित हो रही है। वास्तविक स्थिति का ध्यान आते ही वह प्रेम-मग्न हो जाती है। इस रचना का उद्देश्य प्रेमभक्ति में विरह की महत्ता का प्रतिपादन करना है। 'रूप मंजरी' एक छोटा-सा कथा-काव्य है, जिसमें एक सुंदर स्त्री के सौंदर्य तथा लौकिक प्रेम को छोड़कर कृष्ण के प्रति उसके 'जार भाव' के प्रेम एवं उसकी एक सखी इंदुमती के साथ उसके संबंध का वर्णन है। काव्य की नायिका रूपमंजरी स्वयं नंददास की मित्र रूपमंजरी है और सखी स्वयं कवि नंददास है। यद्यपि रूपमंजरी का कथानक लौकिक श्रृंगार से संबद्ध है किन्तु उसमें नंददास ने अपने आध्यात्मिक भावों तथा प्रेम लक्षणा-भक्ति के अंतर्गत किया प्रेम के आदर्श को स्पष्ट किया है। काव्यकला तथा रसात्मकता की दृष्टि से यह रचना उत्कृष्ट है। 'रुक्मणी-मंगल' की कथा श्री भागवत के दशमस्कंध उत्तरार्ध के 52, 53 और 54वें अध्याय से ली गयी है। नंददास ने भागवत के कुछ विस्तारों को छोड़ दिया है तथा कुछ भावपूर्ण स्थलों को अधिक विशद कर दिया है। 'दशमस्कंध' की रचना नंददास ने अपने एक मित्र के अनुरोध से की थी, जिसमें उन्हें संस्कृत भागवत के विषय का भाषा द्वारा ज्ञान हो जाए। उसमें भागवत का भावानुवाद किया गया है तथा साथ ही भागवत की कुछ टीकाओं का भी उपयोग कर कर लिया गया है। दशमस्कंध की कथा का इसमें सिर्फ उंतीसवें अध्याय तक का वर्णन है।

कृष्णलीला से संबद्ध विषयों के अतिरिक्त उनके ऐसे भी पद हैं, जिनमें गुरु-महिमा, नाम महिमा, विनय-भावना और भक्ति के लक्षणों का वर्णन हुआ है। नंददास के नाम से 'गोवर्द्धन लीला' और 'सुदामाचरित' नामक दो रचनाएं और प्रसिद्ध हैं किन्तु गोवर्द्धनलीला दशमरस्कंध का ही एक

अंश है और वह उसके 24-25वें अध्याय में वर्णित है। 'सुदामाचरित' की प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतभेद है।

अष्ट छाप के कवियों में नंददास का स्थान

रचना की प्रचुरता तथा विषय की विविधता की दृष्टि से नंददास का स्थान अष्टछाप के कवियों में बहुत ऊंचा है। भक्त होने के साथ ही वे ऐसे सचेष्ट तथा सचेतन कलाकार भी हैं, जिन्हें अपने कविकर्म के उत्तरदायित्व का सदैव ध्यान रहता है। यह अवश्य है कि नंददास ने काव्यकला संबंधी जो सामग्री प्रस्तुत की है, उसका स्रोत बहुत अंश में 'सूरसागर' ही है। नंददास की विशेषता यह है कि उन्होंने उस विषय को जो सूरदास, परमानंददास एवं अष्टछाप के अन्य कवियों के प्रच्छन्न रूप में वर्णित किया था, स्पष्ट रूप में सम्मुख रख दिया और इस प्रकार वे हिन्दी के भक्ति-काव्य तथा लौकिक श्रृंगारी-काव्य को जोड़ने वाली एक कड़ी बन गये। काव्यकला की दृष्टि से नंददास की इस प्रवृत्ति की सराहना की जा सकती है परंतु उनके भक्तिभाव की ऐकांतिकता और तीव्रता में शंका उठना भी स्वाभाविक है। भावानुभूति की गंभीरता के अभाव के ही कारण नंददास की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति में वैसी एकात्मकता और घनिष्ठता नहीं है, जैसी कि पूर्ववर्ती कवियों में पायी जाती है। शब्दों के प्रयोग में नंददास बड़ी सावधानी और सतर्कता का परिचय देते हैं और यह कथन सत्य ही है कि जहां और कवि 'गढ़िया' हैं, नंददास 'जड़िया' है परंतु भाषा सौंदर्य पर अत्यधिक ध्यान देने के कारण वे न केवल कभी-कभी भावों की उपेक्षा कर जाते हैं, वरन् यमक, अनुप्रास छंद की लय और प्रवाह के अनुरोध से शब्दों को विरूप भी कर देते हैं। नंददास का छंद-प्रयोग उन्होंने सूरदास के अनुकरण पर अपनी कई रचनाओं में किया है। इस छंद के अंत में एक छोटा चरण जोड़कर पूर्वगामी भाव का सार वे जिस प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हैं, उससे छंद का आकर्षण और ज्यादा बढ़ जाता है। अपनी अनेक विशेषताओं के कारण हिन्दी-साहित्य में नंददास का स्थान कुछ चुने हुए महान् कवियों के बाद ही आता है। नंददास की संपूर्ण कृतियों के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं-एक पंडित उमाशंकर शुक्ल द्वारा संपादित तथा प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नंददास' तथा दूसरा ब्रजरत्न दास द्वारा संपादित और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'नंददास ग्रंथावली'।

मीरा का संक्षिप्त जीवन परिचय

मीराबाई का जन्म जोधपुर के कुडको ग्राम में सन् 1503 में हुआ। उनका विवाह 1516 में राणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ। 1527 में उनके पति मारे गए तथा उन्होंने साधु संगति की 1533 में मीरा ने चित्तौड़ त्यागा और वे ब्रज की तीर्थयात्रा पर चल पड़ीं। 1539 में वे तुलसीदास से मिली फिर द्वारिका चली गई। यहां संतों के संपर्क से विभोगानुभूति का विकास हुआ एवं भजन लिखने लगीं। वे रणछोड़ की मूर्ति के आगे नर्तन करने लगीं। 1573 में उनका देहांत हो गया।

मीराबाई की रचनाओं का वर्णन

मीरा की रचनाओं के संबंध में विद्वानों के मतों में एकता नहीं है। 'राजपुताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज' के अंतर्गत मीरा का निम्नलिखित चार रचनाओं को स्वीकार किया गया है- 1. गीत-गोविंद का टीका, 2. नरसी जी का माहरो, 3. फुटकल पद, 4. राग सोरठा संग्रह।

पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त 'राग गोविंद' और 'मीरा की मल्हार' नामक दो पुस्तकों का उल्लेख किया है। अब तक प्राप्त खोजों के आधार पर मीरा की

रचनाएं निम्न प्रकार कही जाती हैं- 1. गीत-गोविन्द का टीका, 2. नरसीजी का माहरो, 3. फुटकल पद, 4. राग सोरठपद संग्रह, 5. राग-गोविन्द, 6. मीरा की मल्हार, 7. गर्वा गीत, 8. मीरा की पदावली।

मीरा पदावली का संक्षिप्त वर्णन

मीरा के पदों के अब तक कई संग्रह निकल चुके हैं। किन्तु सभी में पद संख्या पृथक-पृथक है। बंगाल के श्री कृष्णनंद देव व्यास द्वारा 'राग-कल्प-प्रेम' नाम से मीरा के पदों का सबसे पहला संग्रह 'मीराबाई-भजन' नाम से 'नवलकिशोर प्रेस' लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इसके प्राय: सभी पदों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। इसके पश्चात् भी मीरा के पदों के संग्रह प्रकाशित हुए, जिनके नाम और उन पदों की व्याख्या निम्न प्रकार हैं-

1. मीरा जीवनी और काव्यपद संख्या 108
2. मीरा की प्रेम-साधनापद संख्या 216
3. मीरा स्मृति-ग्रंथपद संख्या 103
4. मीराबाई की पदावलीपद संख्या 202
5. मीरा-वृहद पद संग्रहपद संख्या 590

पदों की इन विभिन्न संख्याओं को देखकर मीरा के प्रामाणिक पदों का संग्रह करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। आज हिन्दी-साहित्य में मीरा के प्रामाणिक पदों की आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। वे प्रेम दीवानी भक्त ही नहीं अपितु मूर्धन्य कवियित्री थी थीं।

मीरा के काव्य की विशेषताएं

मीरा की भाषा में राजस्थानी, ब्रज, गुजराती तथा पंजाबी का प्रयोग है। उसमें संगीतात्मकता है वह लोचयुक्त, संयुक्त शब्दों से एक है, कहीं विकृत प्रयोग है। उनमें एक शुद्ध के स्थान पर दूसरा शब्द, अनुस्वार युक्त दीर्घ स्वरों का प्रयोग है।

अलंकारों का प्रयोग- मीरा के काव्य में अलंकारों का भी अधिक प्रयोग नहीं हुआ है क्योंकि मीरा का काव्य भावों का उमड़ता हुआ सागर है। अलंकार-योजना भावों को उत्कर्ष करने में सहायक है।

छंद-योजना- मीरा काव्य गेय काव्य है। संगीत की कसौटी और भावस्तर पर खरे उतरने वाले विभिन्न छंदों का प्रयोग मीरा ने किया है, पर मात्रिक छंदों का प्रयोग बहुत हुआ है।

मुहावरों का प्रयोग- मीरा के काव्य में मुहावरों का प्रयोग प्राय: कम ही हुआ है, लेकिन जितना भी है वह सफल है। मीरा ने वीप्सा, रूपक, उपमा अर्थान्तर न्याय इत्यादि तीनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है।

मीरा के गीति काव्य की विशेषताएं

गीति काव्य के निम्नलिखित तत्व हैं-

1. **आत्माभिव्यंजना-** कवि अपने एक अनुभक्ति भागों को ही मुख्य रूप से अभिव्यक्त करता है।

2. **संगीतात्मकता-** संगीतात्मकता गीति-काव्य का प्रमुख तत्व है। आत्माभिव्यंजित स्वसुर भी संगीत की स्वर-लहरी पर खरी उतरनी चाहिए।

3. **अनुभूति की पूर्णता अथवा भाव-प्रवणता-** गीति-काव्य में प्रत्येक पद भाव-प्रवणता में पूर्ण होता है और पद-भाव बिखेरकर अपना समग्र प्रभाव डालता है।

4. **भावों की एकता-** गीति-काव्य में भावों का केन्द्रीकरण आवश्यक है।

5. **आत्माभिव्यंजना-** गीति-काव्य कवि के आंतरिक भावों का प्रत्यक्ष रूप बाह्याभिव्यंजना है। गीतिकार काव्य में ऐसी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करता है, जो सार्वकालिक और सार्वमौलिक होती है। मीरा के गीत इस दृष्टि से विशेष सफल हैं।

मीरा के पदों में गीति-काव्य के उपयुक्त सभी तत्व हैं। उनका सारा प्रेम-पीर की मार्मिक अभिव्यक्ति है। गीत की प्रत्येक पंक्ति संगीत के उतार-चढ़ाव पर खरी उतरती है। अनुभूति और भाव-प्रवणता में हर पद स्वयं में पूर्ण है, इससे उनका हर भावों का एकीकरण करता हुआ अनुभूति का समग्र चित्र प्रस्तुत करता है।

मीरा की रसयोजना

मीरा के काव्य में 'श्रृंगार' और 'शांत' केवल दो ही रस हैं। कहीं-कहीं पर करुण रस की अनुभूति अवश्य होने लगती है पर वह करुणानुभूति विप्रलंभ श्रृंगार का ही अंग है। कई पदों में वीर, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रस की भी झलक मिलती है, परंतु ये रस की कोटि में न पहुंचकर भाव की कोटि में रह जाते हैं।

श्रृंगार रस- मीरा के काव्य में प्रयोग श्रृंगार का वर्णन प्रवासजन्य संयोग-श्रृंगार के अंतर्गत है। मीरा के विप्रलंभ श्रृंगार में विरह की दसों दशाओं का चित्रण है।

मीरा की वेदनानुभूति का चित्रण

मीरा के सामने उसके बाल्यकाल से ही ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती गईं जो उनके हृदय में वेदना को घनीभूत करती चली गई। वैष्णवीय-भक्ति भावना ने उनके हृदय में अनुभूति और वेदना को अंकुरित कर दिया था। पति, माता-पिता की मृत्यु ने भी उनके हृदय को झकझोर डाला, परिजनों द्वारा भीषण-यातनाएं पाकर पीड़ा से उनका हृदय कराह उठा। इन समस्त घटनाओं ने उनके हृदय में निर्वेद और वेदना को भर दिया। बचपन में मीरा के हृदय में जो भक्ति के संस्कार थे, इन परिस्थितियों के कारण उफन कर ऊपर आ गए। कुटुम्बी जनों से मीरा को घोर यातनाएं मिलीं, उनका मीरा ने अपने कई पदों में उल्लेख किया।

मीरा के काव्य में वेदना का स्वरूप दुखात्मक न होकर सुखात्मक होता है। भक्त और प्रेमी वेदना में सुख का अनुभव करता है। मीरा के काव्य में पार्थिव और अपार्थिक विरह का समन्वय है। उनकी वेदना में एक कुचले हुए स्वप्न की और एक प्रेम दग्ध हृदय की व्याकुलता है। उसमें पार्थिवता और यथार्थता है। मीरा अपने-अविनाशी प्रियतम कृष्ण के लिए उसी प्रकार वेदना का अनुभव करती है, जिस तरह प्रेमिका अपने हाड़-मांस प्रियतम के लिए करती है। अत: मीरा की अपने प्रियतम के लिए जो वेदना है, वह सजीवता, वास्तविकता के साथ में भव्य और है। इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल मीरा की वेदनाभूति को पार्थिव मानते हैं परंतु मीरा की वेदनानुभूति को सर्वथा पार्थिव मानना उचित नहीं है, क्योकि पहले से वह वेदनानुभूति इतनी परिष्कृत और उदात्त है कि उसमें पार्थिवता लेश मात्र भी नहीं है। दूसरे लोक-भूमि से ऊपर उठने के कारण ही उसमें सजीवता, यथार्थता, भव्यता और दिव्यता आई है। तीसरे पार्थिव वेदना में दु:ख रहता है जबकि मीरा की वेदना में निराशा और दु:ख के स्थान पर आशीर्वाद है।

मीरा की प्रेम साधना

मीरा मानती है कि प्रेम की पीड़ा सहन करना सरल नहीं है। उन्होंने अपने गिरधर के ऊपर तन-मन-धन से सभी न्यौछावर कर दिया था, वे प्रेम दीवानी होकर जहर का प्याला चरणामृत की

तरह पी गई और विषधर को सुमन हार की तरह धारण कर लिया। कुल लाज और मर्यादा को छोड़कर वे वृंदावन की कुंज गलियों में फिरीं-उसमें निम्नलिखित तत्व हैं-

1. प्रेम में पूर्ण समर्पण, 2. उल्लास की भावना, 3. ममता का आधिक्य, 4. प्रेम में विश्वास, 5. प्रेम में अभिमान, 6. प्रेम में नित्य नवीनता।

मीरा की प्रेम साधना हृदय की पावन एवं मंजुल धारा है।

आचार्य केशव का जीवन-परिचय

केशवदास जी का जन्म मध्य प्रदेश के ओरछा नगर में सनाढ्य ब्राह्मण कुल में संवत् 1612 में हुआ था। इनके पिता का नाम काशीनाथ था, इनका परिवार संस्कृत के ज्ञानी पंडितों में प्रमुख माना जाता था। केशवदास जी ओरछा नरेश इंद्रजीत सिंह राजा के दरबारी तथा काव्यगुरु थे। केशवदास जी का निधन संवत-1680 के लगभग माना जाता है। केशवदास जी की गोस्वामी तुलसीदास जी से भेंट हुई थी, उनकी प्रेरणा से इन्होंने रामचंद्रिका नामक महाकाव्य की रचना की।

ग्रंथ रचना- केशवदास प्रणीत नौ ग्रंथ माने जाते हैं-(1) रसिक प्रिया, (2) कविप्रिया, (3) नख-शिख, (4) छंदमाला, (5) वीर सिंह देव चरित, (6) रतन बाबानी, (7) जहाँगीर जस चंद्रिका, (8) विज्ञानगीता, (9) रामचंद्रिका।

केशवदास जी को संस्कृत काव्य शास्त्र का गंभीर ज्ञान अपने पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था। इन्होंने समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर युगानुरूप रीतग्रंथों की रचनाएं कीं। केशवदास का काव्य बड़ा क्लिष्ट माना जाता है। चूँकि केशवदास जी संस्कृत के विद्वान थे इसलिए उनके काव्य में क्लिष्टता आना स्वाभाविक है। यह उनका दोष नहीं है। केशवदास जी का जन्म ज्ञानी पंडितों के परिवार में हुआ था एवं उनको सदैव ही विद्वानों की सन्निधि प्राप्त हुई। किन्तु उनको इस बात का क्षोभ रहा कि संस्कृत को छोड़कर हिन्दी में काव्य रचना मैंने क्यों प्रारंभ की? इसके लिए उनको संपूर्ण जीवन ग्लानि रही।

भाषा बोलि न जानहिं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि मोमंद मति, तिहिकुल केशव दास॥

संस्कृत निष्ठ विद्वान केशव जहाँ कहीं कविता में चमत्कार का त्याग कर देते थे वहीं उनकी भावाभिव्यक्ति अत्यंत सरल एवं सरस हो जाती थी।

केशव जी को कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है।

केशवदास अलंकार संप्रदाय के अनुयायी थे तथा हिन्दी में रीति ग्रंथ लिखने वाले प्रथम आचार्य कवि थे। विद्वानों का एक बहुत बड़ा वर्ग केशवदास को रीतिकाव्य का प्रवर्तक नहीं मानता है। उनका तर्क यह है कि रीति-ग्रंथों की अविच्छिन्न परंपरा केशवदास के 50 वर्ष बाद चिंतामणि त्रिपाठी से चली तथा रीतिकाल के समस्त आचार्यों ने रस सिद्धांत को स्वीकार किया। अलंकार संप्रदाय को मानने वाले अकेले केशवदास ही थे। हमारी मान्यता यह है कि भले ही केशवदास के पश्चात् अविच्छिन्न रूप से तथा उनके मार्ग पर ग्रंथों की रचना नहीं हुई, लेकिन सर्वप्रथम रीति ग्रंथ रीति-निरूपण का मार्ग प्रशस्त करने वाले आचार्य केशव ही थे।

यह तथ्य निर्विवाद है कि रीति-काल में केशवदास को पढ़े बगैर कवि-कर्म पूर्ण हो ही नहीं सकता था। केशवदास को भक्तिकाल का फुटकर एवं हृदयहीन कवि घोषित करने वाले आचार्य पं.

रामचंद्र शुक्ल ने भी लिखा है कि "काव्यांगों का विस्तृत परिचय कराकर उन्होंने (केशवदास ने) आगे के लिए रास्ता खोला।"

केशवदास का काव्य-सिद्धांत- कवि, शिक्षक एवं आचार्य के रूप में केशवदास सर्वांग-निरूपक आचार्य थे। 'कविप्रिया' में उन्होंने अलंकार-निरूपण किया है। अलंकार को केशवदास ने अत्यंत व्यापक अर्थ में ग्रहण किया। उनकी दृष्टि में काव्य को विभूषित करने वाले समस्त उपकरण अलंकार के अंतर्गत आते हैं। जैसे-

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन-बिन न बिराजई, कविता बनिता मित्त॥

इसकी तुलना करें-

न कांतमपि निर्भूष विभाति वनिता मुखम्।

केशवदास का कठिन काव्य- केशवदास अलंकारवादी संप्रदाय के अनुयायी थे एवं चमत्कार को काव्य का आवश्यक गुण मानते थे। इस कारण उनकी कविता अपेक्षाकृत दुर्बोध है। इस आधार पर कतिपय आलोचक उन्हें कठिन काव्य का प्रेत आदि कहकर आलोचना करते हैं।

केशवदास के काव्य का क्लिष्टत्व वस्तुत: सैद्धांतिक होने के कारण उनकी सफलता का द्योतक है। वे तो वस्तुत: क्लिष्टत्व का संकल्प लेकर ही काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे। केशवदास कवि नहीं, आचार्य थे। उनके काव्य में भावुकता की खोज करना विशेष उपयोग नहीं हो सकता है। वस्तुत: कठिन काव्य का प्रेत के शव को वे ही लोग कहते हैं जिन्हें काव्य का ज्ञान नहीं है या इस शास्त्र के मर्मज्ञ नहीं है।

प्रश्न घनानंद के सौन्दर्य चित्रण का वर्णन कीजिए।

उत्तर- सौंदर्य चित्रण- घनानंद ने दो विषयों पर कलम चलाई है- (i) भक्ति तथा (ii) प्रेम।प्रेम का प्रकट आलंबन 'सुजान' है-गौण श्रीकृष्ण एवं राधिकाजी। मुख्यत: वियोग श्रृंगार का काव्य होने पर भी घनानंद ने 'प्रिय' के रूप-सौंदर्य का अपूर्व चित्रण किया है। रूप यौवन, अंग मुख कवि और चलने, हंसने, बोलने आदि क्रियाओं का मधुर एवं आकर्षक वर्णन किया है। सुजान के रूप में वे अनुपम छटा देखते हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हंसे बोलनि में छवि-फूलत की, वरषा उर ऊपर जाति है व्है।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कण्ठ बनी जल जावलि द्वै॥
अंग-अंग तरंग उठै दुति की, परि है मनौ रूप अबै घर च्वै॥"

यह वर्णन क्रमबद्ध रूप से नहीं है, जिस आकर्षक छवि पर उनकी दृष्टि पड़ी उसी का चित्रण करने में उनका मन रम गया है। वर्णन कामुक न होकर प्रेम के पवित्र भाव जगाने वाला है। **"तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजति आदे सुभायन।**

छातत सौंदर्य की राशि होकर भी सीधे स्वभाव वाली सात्विक नारी है।"

प्रश्न घनानंद के संयोग वर्णन का वर्णन कीजिए।

उत्तर- संयोग वर्णन- 'घनानंद गाइ है, चिरवियोग की गाथ' परंतु कुछ छंद उन्होंने संयोग श्रृंगार के भी लिखे हैं। 500 की विशाल काव्य राशि में भी 20 छंद संयोग वर्णन से संबंध रखते हैं। संयोग की अवस्था का वर्णन करते कवि से समीप्यलाभ, संसर्गलालसा, लाज भीनी चितवन, आलिंगन आदि का चित्रण हुआ है। प्रेमी को उन्मुक्त करता नायिका का यह चित्र देखिए-

"मृदु मूरित लाड़-दुलार भरी अंग-अंग बिराजति रग मई।
घनानंद जोबन-माता दसा सवि छाकत ही मति छाक छइ।

कुछ चित्र संभोग दशा की निकटता के हैं।

मरि जोबन रंग अनंग-उमंगनि अंगहि अंग समोह रहे।"

पर ये चित्र वीभत्सता और कुरुचि से दूर कवि की मानसिक दशा के उद्घाटक हैं।

घनानंद की भाषा का वर्णन

भाषा- घनानंद की काव्य भाषा रीतिकालीन कवियों की काव्य भाषा से अलग है। उनकी भाषा टकसाली भाषा नहीं, गढ़ी हुई भाषा नहीं वरन् भावों की भाषा है, हृदय की भाषा है, उनकी भाषा मायावी है, जो यथासमय संकोच और विस्तार, लोच और वक्रता, सुंदरता और एकरूपता, क्रांति और गांभीर्य, अर्थमत्ता और गूढ़ता व्यक्त करने में प्रवीण है। भाषा के प्रयोग में घनानंद असाधारण रूप से पटु थे।

उनकी काव्य भाषा साहित्यिक ब्रज भाषा है, जिसमें ठेठ ब्रजभाषा भी अपने संपूर्ण सौष्ठव के साथ विद्यमान है। 'शब्द स्थापना' उनकी काव्य भाषा की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है, भावों के अनुकूल शब्द चयन कर उन्हें छंद में बांधा है। घनानंद की काव्यभाषा में उक्तियों की जो भंगिमा है, वह अन्य कवियों की भाषा में नहीं। एक उदाहरण देखिए-

"तुम कौन-सी पाटी पढ़े हो लला मन लेहु ते देहु छटांक नहीं।"

लोकोक्तियों एवं मुहावरों का आपके काव्य में भरपूर प्रयोग है। इनकी भाषा सामाजिक भी रही है और द्विअर्थी भी। उसमें कतिपय काव्य दोष और क्लिष्टता देखी जा सकती है। लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों का उनके काव्य में जमकर प्रयोग हुआ है।

घनानंद की भाषा रीतिकालीन काव्य भाषा की अपेक्षा अधिक श्रीसंपन्न है।

घनानंद की छंद योजना का वर्णन

छंद योजना- रचना शैली की दृष्टि से उनका काव्य मुख्यत: 6 भागों में विभक्त किया जा सकता है- (1) कवित्त सवैया शैली, (2) फारसी प्रभावित छंद शैली, (3) दोहा चौपाई शैली, (4) मिश्रित शैली, (5) पद शैली, (6) नव छंद प्रधान शैली।

फिर भी उनकी लोकप्रिय रचनाओं को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि कविता सवैया शैली उनकी प्रिय शैली है। इसके बाद उन्हें दोहा और चौपाई छंद ही अधिक प्रिय थे।

अति लघुत्तरीय प्रश्न

प्रश्न सूरदास का जन्म कब और कहां हुआ था?

उत्तर- सूरदास का जन्म संवत् 1540 ई. में आगरा के निकट रुनकता ग्राम में हुआ था।

प्रश्न सूर किस रस के सम्राट माने जाते हैं?

उत्तर- सूर को वात्सल्य रस का सम्राट माना जाता है।

प्रश्न सूर ने किस भाषा में काव्य रचना की है?

उत्तर- सूर ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की है।

प्रश्न सूर की दो प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।

उत्तर- सूर सागर एवं साहित्य लहरी सूरदास की दो प्रमुख रचनाएं हैं।

प्रश्न सूर के भ्रमरगीत का मुख्य विषय क्या है?

उत्तर- भ्रमरगीत का मुख्य विषय निर्गुणोपासना के स्थान पर सगुणोपासना की स्थापना करना है।

प्रश्न सूरदास किस भक्तिशाखा के कवि हैं?

उत्तर- सूरदास सगुण भक्तिधारा की कृष्ण भक्तिशाखा के कवि हैं।

प्रश्न तुलसीदास का जन्म समय बताइए।

उत्तर- तुलसीदास का जन्म संवत् 1554 ई. में हुआ था।

प्रश्न तुलसीदास का जन्म स्थान बताइए।

उत्तर- तुलसीदास का जन्म-स्थान बांदा जिले के राजपुर नामक ग्राम में माना जाता है।

प्रश्न तुलसीदास की मृत्यु कब हुई थी?

उत्तर- तुलसीदास जी की मृत्यु संवत् 1680 ई. में श्रावण श्यामा तीज शनिवार को हुई थी।

प्रश्न तुलसीदास की मृत्यु कहां हुई थी?

उत्तर- तुलसीदास जी की मृत्यु काशी के असी घाट पर हुई थी।

प्रश्न तुलसीदास की दो श्रेष्ठ रचनाओं के नाम बताइए।

उत्तर- रामचरित मानस और विनय-पत्रिका तुलसीदास जी की दो श्रेष्ठ रचनाएं हैं।

प्रश्न तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना कब प्रारंभ की थी?

उत्तर- तुलसीदास जी ने सन् 1574 ई. में रामचरित मानस की रचना प्रारंभ की थी।

प्रश्न कवितावली किस कवि की रचना है?

उत्तर- कवितावली तुलसीदास जी की रचना है।

प्रश्न तुलसी की विनय-पत्रिका का मुख्य विषय क्या है?

उत्तर- तुलसी की विनय-पत्रिका का मुख्य विषय उनका आत्म-निवेदन है।

प्रश्न आचार्य शुल्क ने भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व कवि किसे कहा है?

उत्तर- शुक्ल जी ने तुलसीदास को भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि कहा है।

प्रश्न तुलसीदास ने किस भाषा का काव्य-रचना में प्रयोग किया है?

उत्तर- तुलसीदास ने रामचरित मानस और बरवै रामायण में अवधी तथा अन्य रचनाओं में ब्रज भाषा का प्रयोग किया है।

प्रश्न मीराबाई का जन्म कब हुआ था?

उत्तर- मीराबाई का जन्म सन् 1503 ई. के लगभग हुआ था।

प्रश्न मीराबाई का जन्म स्थान बताइए।

उत्तर- मीराबाई का जन्म जोधपुर राज्यांतर्गत कुड़को ग्राम में हुआ था।

प्रश्न मीराबाई का विवाह कब और किससे हुआ था?

उत्तर- मीराबाई का विवाह सन् 1516 ई. के लगभग चित्तौड़ के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ था।

प्रश्न मीराबाई का देहांत कब हुआ?

उत्तर- सन् 1573 ई. में लगभग सत्तर वर्ष की अवस्था में मीराबाई का देहांत हुआ।

प्रश्न मीराबाई के आराध्य कौन थे?

उत्तर- मीराबाई के आराध्य गिरिधर नागर हैं।

प्रश्न मीराबाई ने किस भाषा में पद-रचना की है?

उत्तर- मीराबाई ने राजस्थानी भाषा में पद-रचना की है किन्तु उसमें गुजराती और ब्रजभाषा का सम्मिश्रण है।

प्रश्न हिन्दी साहित्य में माधुर्य भाव की उपासिका किसको कहा जाता है?

उत्तर- हिन्दी साहित्य में मीराबाई को माधुर्य भाव की उपासिका कहा जाता है क्योंकि वे अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं।

प्रश्न घनानंद का जन्म और मृत्यु समय बताइए।

उत्तर- घनानंद का जन्म समय संवत् 1746 वि. (सन् 1689 ई.) और मृत्यु समय संवत् 1817 वि. (सन् 1760 ई.) है।

प्रश्न घनानंद कहां के निवासी थे?

उत्तर- घनानंद उत्तर प्रदेश में बुलंदशहर के निवासी थे।

प्रश्न घनानंद किस दरबार में रहे थे?

उत्तर- घनानंद दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में पीर मुंशी के पद पर रहे थे।

प्रश्न घनानंद की कविता में 'सुजान' शब्द का प्रयोग किसके लिए किया गया है?

उत्तर- सुजान नाम की राज-नर्तकी के प्रति घनानंद आसक्त थे। उन्होंने सुजान शब्द का प्रयोग उसी के लिए किया था। बाद में कृष्ण-भक्ति में निमग्न हो जाने पर भी वे इसी नाम से कविता करते रहे। इसी आधार पर इस नाम को कृष्ण अथवा राधा का पर्याय भी माना जाता है।

प्रश्न घनानंद की तीन प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।

उत्तर- घनानंद की तीन प्रमुख रचनाएं हैं-1. रस केलिवल्ली, 2. सुजान सागर, 3. घनानंद कवित्त।

प्रश्न घनानंद के काव्य की तीन प्रमुख विशेषताएं बताइए।

उत्तर- घनानंद के काव्य की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं-1. प्रेम की निजी संवेदना, 2. उक्तियों की लाक्षणिकता और व्यंजकता, 3. वियोग में गहरी अनुभूति और विह्वलता।

प्रश्न अति सूधो सनेह को मारग है, जहां नेकु सयानप बांक नहीं...' किस कवि का छंद है?

उत्तर- यह छंद घनानंद का है।

प्रश्न घनानंद का काव्य किस प्रकार का काव्य है?

उत्तर- घनानंद का काव्य "प्रेम का काव्य" है।

प्रश्न नंददास का जन्म कब हुआ?

उत्तर- नंददास का जन्म सन् 1533 ई. में हुआ।

प्रश्न नंददास किस मार्ग के अनुयायी थे?

उत्तर- नंददास पुष्टि मार्ग के अनुयायी थे।

प्रश्न नंददास के बारे प्रसिद्ध उक्ति क्या है?

उत्तर- नंददास के बारे में उक्ति है-"और कवि गढ़िया नंददास जड़िया" है।

प्रश्न नंददास की दो प्रसिद्ध रचनाओं के नाम बताइए।

उत्तर- ये रचनाएं हैं-1. रास पंचाध्यायी, 2. भंवरगीत।

प्रश्न बिहारी का जन्म तथा मृत्यु तिथि बताइए।

उत्तर- बिहारी की जन्म-तिथि संवत् 1652 वि. (सन् 1595 ई.) तथा मृत्यु तिथि सं. 1720 वि. (सन् 1663 ई.) है।

प्रश्न बिहारी का जन्म कहां हुआ था?

उत्तर- बिहारी का जन्म ग्वालियर के समीप बंसुआ गोविन्दपुर में हुआ था।

प्रश्न बिहारी किसके राज्याश्रय में रहे?

उत्तर- बिहारी जयपुर नरेश राजा जयसिंह के राज्याश्रय में रहे।

प्रश्न बिहारी ने किसके दरबार में प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी प्राप्त की?

उत्तर- बिहारी ने महाराजा जयसिंह से हर दोहे पर एक अशर्फी प्राप्त की।

प्रश्न बिहारी के दोहों के विषय में कौनसी उक्ति प्रसिद्ध है?

उत्तर- बिहारी के दोहों के विषय में 'गागर में सागर' की उक्ति प्रसिद्ध है।

प्रश्न बिहारी सतसई में कितने दोहे हैं?

उत्तर- 'बिहारी सतसई' में 726 दोहे हैं।

प्रश्न बिहारी सतसई की रचना कब पूर्ण हुई थी?

उत्तर- सन् 1662 ई. में 'बिहारी सतसई' की रचना पूर्ण हुई थी।

प्रश्न बिहारी की भाषा की एक प्रमुख विशेषता बतलाइए।

उत्तर- बिहारी की भाषा की प्रमुख विशेषता उसकी सामासिकता है।

प्रश्न बिहारी के काव्य की कोई चार विशेषताएं बताइए।

उत्तर-
1. *बिहारी का काव्य रससिद्ध काव्य है।*
2. *बिहारी के दोहे गांसी के तीर के समान हृदय पर असर करते हैं।*
3. *बिहारी के काव्य का पढ़े-लिखे लोगों में 'रामचरित मानस' के पश्चात् ही सम्मान है।*
4. *भाषा-शैली में सामासिकता बिहारी के काव्य की प्रमुख विशेषता है।*

प्र. सगुण भक्ति की शाखाओं के नाम बताइए।

उत्तर- सगुण भक्ति की शाखाओं के नाम हैं- (अ) रामभक्ति शाखा (ब) कृष्णभक्ति शाखा।

प्र. कृष्ण भक्ति शाखा के दो कवियों के नाम बताइए।

उत्तर- (अ) सूरदास (ब) नंददास

प्र. राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि का नाम बताइए।

उत्तर- तुलसीदास राम भक्ति के प्रमुख कवि हैं।

प्र. भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएं बताइए।

उत्तर- भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं- (i) ईश्वर की महत्ता, (ii) भक्ति भावना, (iii) भारतीय संस्कृति की रक्षा, (iv) लोक कल्याण की भावना।

प्र. रीतिकाल का समय बताइए।

उत्तर- रीतिकाल का समय संवत् 1700 से लेकर संवत् 1900 तक माना जाता है।

प्र. रीतिकाल में किस प्रकार की कविताएं हुईं ?

उत्तर- रीतिकाल में दो प्रकार की कविताएं हुईं- (अ) रीतिबद्ध कविताएं, (ब) रीतिमुक्त कविताएं। रीति से बंधकर चलने वाली काव्यधारा को रीतिबद्ध और रीति से हटकर चलने वाली काव्यधारा को रीतिमुक्त कविता कहा जाता है।

प्र. दो प्रमुख रीति ग्रंथकारों के नाम बताइए।

उत्तर- केशव तथा चिंतामणि दो प्रमुख ग्रंथकार हैं।

प्र. रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि किसे कहते हैं ?

उत्तर- बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं।

प्र. रीतिकाल के एक महाकाव्य का नाम लिखिए।

उत्तर- केशव कृत रामचंद्रिका रीतिकाल का प्रमुख महाकाव्य है।

प्र. रीतिकाल काव्य की प्रमुख विशेषता बताइए।

उत्तर- रीतिकालीन काव्य की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें श्रृंगार की प्रधानता मिलती है।

प्र. रीतिकाल के प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

उत्तर- केशव बिहारी, देव, चिंतामणि, घनानंद, पद्माकर, बोधा, ठाकुर, सेनापति, भूषण, भिखारीदास, ग्वाल आदि रीतिकाल के प्रमुख कवि हैं।

प्र. बिहारी रीतिबद्ध काव्यधारा के कवि हैं या रीतिमुक्त काव्यधारा के ?

उत्तर- बिहारी रीतिबद्ध काव्यधारा के कवि हैं।

प्र. रीतिमुक्त काव्यधारा के दो कवियों के नाम बताइए।

उत्तर- घनानंद एवं ठाकुर रीतिमुक्त काव्यधारा के दो प्रमुख कवि हैं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न कृष्ण ने गोपियों से प्रेम करके क्या किया?

(अ) गोपियों को वियोग दिया *(ब) गोपियों के गले पर छुरी चलाई*

(स) गोपियों को सुखा दिया *(द) गोपियों को बदनाम किया* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न गोपियों ने 'मधुकर' शब्द का प्रयोग किसके लिए किया है?

(अ) भौंरे के लिए *(ब) कृष्ण के लिए*

(स) उद्धव के लिए *(द) इनमें से कोई नहीं* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न गोपियों के कथनानुसार उनकी आंखों में कौनसा गुण था?

(अ) मीनता (ब) लाली (स) खुला रहना (द) पलक झपकाना **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न गोपियों के कथनानुसार विष का कीड़ा क्या खाता है?

(अ) मिट्टी (ब) मांस (स) फल (द) विष **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न कृष्ण गोपियों का मन कहां ले गये?

(अ) मथुरा (ब) अपने संग (स) वृंदावन (द) वंशी वट **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न सूरदास रचित विरह-वर्णन के पदों के संग्रह का नाम क्या है?

(अ) विरहा *(ब) सूरसंचयन*

(स) भ्रमरगीत काव्य *(द) सूरसागर* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न सूरदास द्वारा रचित ग्रंथ माने जाते हैं-

(अ) 3 *(ब)* 5 *(स)* 7 *(द)* 9 **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न सूर सम्राट कहे जाते हैं-

(अ) वात्सल्य रस के (ब) हास्य रस के (स) वीर रस के (द) करुण रस के **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न सूर की भाषा है-

(अ) अवधी *(ब) ब्रजभाषा*

(स) राजस्थानी *(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न सूर के गुरु थे-

(अ) बल्लभाचार्य *(ब) विट्ठलनाथ*

(स) रामानंद *(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न तुलसीदास ने सीता माता से अवसर पाने पर क्या करने को कहा?

(अ) मेरी सुधि दिलाना *(ब) मेरा पाप क्षमा करना*

(स) मेरा अपराध क्षमा कराना *(द) मेरा परिचय देना* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न तुलसीदासजी भव कैसे तरेंगे?

(अ) भक्ति करके *(ब) राम के गुण गाकर*

(स) पुण्य करके *(द) गुरु को प्रसन्न करके* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न मन कब पछतायेगा?

(अ) अवसर बीतने पर *(ब) मरने पर*

(स) वृद्ध होने पर *(द) अवसर बीत जाने पर* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न राम ने शरीर क्या करके दिया है?

(अ) कृपा करके *(ब) प्रसन्न होकर*

(स) विचार करके *(द) नियम के अनुसार* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न तुलसीदास का वह ग्रंथ जो उनके भक्त-रूप का उद्घाटन करता है?

(अ) रामलला नहछू *(ब) वैराग्य संदीपनी*

(स) विनय-पत्रिका *(द) रामचरितमानस* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न श्रीकृष्ण गीतावली के रचनाकार हैं-

(अ) सूरदास (ब) मीराबाई (स) रसखान (द) तुलसीदास **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न हिन्दी साहित्य में लोकनायक कवि हैं-

(अ) तुलसीदास (ब) सूरदास (स) घनानंद (द) केशवदास **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न रामचरितमानस में प्रयुक्त शैली है-

(अ) कवित्त-सवैया शैली *(ब) गीत-शैली*

(स) दोहा-चौपाई शैली *(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न तुलसीदास का मृत्यु-स्थान है-

(अ) काशी (ब) मगहर (स) राजापुर (द) रुनकता **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'विषय तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउं' में नरहरि किसे कहा गया है?

(अ) नृसिंह को (ब) कृष्ण को (स) राम को (द) पुरुष सिंह को **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न प्रिय अद्वैतता कौन चाहता है?

(अ) वियोगिनी *(ब) वियोगिनी पत्नी*

(स) कानन सेवन नैन *(द) पत्नी* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न बिहारी के दोहे किस बात के लिए प्रसिद्ध हैं?

(अ) संतुलित शब्द-प्रयोग *(ब) अध्यात्म*

(स) दर्शन *(द) भक्ति* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न सुजान के हंसकर बोलने में छवि-फूलों की वर्षा किस पर हो जाती है?

(अ) दर्शकों पर (ब) प्रेमी पर *(स) उर पर* *(द) पति पर* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न सुजान के कंठ-कंठ पर क्या बनी हैं?

(अ) पुष्पमाल *(ब) चंदन का तिलक*

(स) दो मुक्ता मालाएं *(द) इनमें से कोई नहीं* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न घनआनंद की अकुलानि के समान कौन नहीं है?

(अ) जल *(ब) मीन*

(स) जल और मीन *(द) इनमें से कोई नहीं* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न सुजान ने पहले क्या किया?

(अ) मधुर व्यवहार किया *(ब) शील का प्रदर्शन किया*

(स) प्यार-पगी बातें की *(द) इनमें से कोई नहीं* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न घनआनंद के प्राण किसके पले हुए हैं?

(अ) पोष के *(ब) हियपोष के*

(स) तोष के *(द) हियपोष के तोष के* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न प्रिय सुजान के बिना घनआनंद का क्या टल गया था?

(अ) सुख *(ब) सब ही कुछ*

(स) साज-समाज *(द) सबही कुछ, साज-समाज* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न घनआनंद का जीव किसके समान उड़ा रहता है?

(अ) रुई के समान *(ब) धूल के समान*

(स) गुड़ी (पतंग) के समान *(द) कागज के समान* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न घनानंद की काव्य-शैली का क्या रूप है?

(अ) छंद-शैली विरह-वर्णन *(ब) मुक्तक-शैली प्रगीत-वर्णन*

(स) दोहा-शैली नवीन-वर्णन *(द) इनमें से कोई नहीं* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न सूरदास का जन्म हुआ था-

(अ) सन् 1450 में *(ब) संवत् 1450 में*

(स) सन् 1540 में *(द) संवत् 1540 में* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न तुलसी का जन्म हुआ था-

(अ) सन् 1532 में *(ब) सन् 1542 में*

(स) सन् 1552 में *(द) सन् 1562 में* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न कृष्णमार्गी शाखा के सर्वप्रमुख कवि हैं-

(अ) कुंभनदास (ब) बिट्ठलदास (स) बंददास (द) सूरदास **उत्तर-** (द)

प्रश्न सूरदास की प्रमुख रचना का नाम है-

(अ) सूर सारावली (ब) अखरावट

(स) सूरसागर (द) रामलला नहछू **उत्तर-** (स)

प्रश्न अष्टछाप में सम्मिलित कवियों की संख्या है-.

(अ) छह (ब) आठ (स) बारह (द) दस **उत्तर-** (ब)

प्रश्न केशवदास ने प्रमुखतः किस भाषा का प्रयोग किया है

(अ) ब्रजभाषा (ब) अवधी (स) संस्कृत (द) हिन्दी **उत्तर-** (अ)

प्रश्न केशव का जन्म हुआ था-

(अ) सन् 1600 में (ब) सन् 1606 में

(स) सन् 1609 में (द) सन् 1612 में **उत्तर-** (द)

प्रश्न कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है–

(अ) केशव (ब) सूरदास (स) तुलसीदास (द) बिहारी **उत्तर-** (अ)

प्रश्न भक्ति काल का समय माना जाता है-

(अ) सं. 1050 से 1375 तक (ब) 1375 से 1900

(स) 1375 से 1700 (द) 1700 से 1900 तक **उत्तर-** (स)

प्रश्न राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं-

(अ) केशवदास (ब) जायसी (स) कबीर (द) तुलसी **उत्तर-** (द)

प्रश्न भक्तिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं-

(अ) प्रसाद, पंत, निराला (ब) बिहारी, देव, पद्माकर

(स) सूर, तुलसी, कबीर, जायसी (द) केशव और घनानन्द **उत्तर-** (स)

प्रश्न 'भ्रमर गीत' से आशय है-

(अ) भ्रमर द्वारा गाया जाने वाला गीत

(ब) भ्रमर के समान गुनगुना कर गाया जाने वाला गीत

(स) भ्रमर उपालम्भ करके गाया जाने वाला गीत

(द) उद्धव और गोपी संवाद से सम्बन्धित गीत **उत्तर-** (स)

प्रश्न तुलसीदास के अनुसार ईश्वर ने मानव पर सबसे बड़ा कौनसा 'अनुग्रह' किया है-

(अ) मानव योनि में जन्म दिया

(ब) अपनी शक्ति प्रदान की

(स) सुख साधन प्रदान किये

(द) उसने माया के बन्धन से मुक्त कर दिया **उत्तर-** (अ)

प्रश्न तुलसीदास ने कुल रचनाएं लिखीं-

(अ) 9 रचनाएं (ब) 10 रचनाएं (स) 12 रचनाएं (द) 11 रचनाएं **उत्तर-** (स)

प्रश्न तुलसीदास की रचनाओं की भाषा है-

(अ) ब्रज (ब) अवधी (स) बुन्देली (द) खड़ी बोली **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न 'रामचरित मानस' निम्न में से है-

(अ) महाकाव्य (ब) खण्ड काव्य

(स) मुक्तक काव्य (द) गीति काव्य **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न तुलसीदास में मुख्यतः निम्न भावना पायी जाती है-

(अ) समन्वय (ब) देश प्रेम (स) परोपकार (द) मानवता **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न सूरसागर का प्राण है-

(अ) विनय के पद (ब) भ्रमर गीत (स) गोचारण (द) मुरली **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न सूरदास निम्न रस के सम्राट माने जाते हैं-

(अ) करुण (ब) श्रृंगार (स) वीर (द) वात्सल्य **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न मीरा का विवाह कितने वर्ष में हुआ-

(अ) 18 *(ब)* 15 *(स)* 13 *(द)* 12 **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न मीरा की भक्ति थी-

(अ) रामभक्ति (ब) कृष्ण भक्ति

(स) उक्त दोनों (द) उक्त दोनों नहीं **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न मीरा की कृतियों में किन भाषाओं का सम्मिश्रण है-

(अ) हिन्दी, गुजराती, मराठी (ब) गुजराती, मालवी, निमाड़ी

(स) गुजराती, राजस्थानी, ब्रजभाषा (द) अरबी, फारसी, पंजाबी **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न मीराबाई के पदों की शैली है-

(अ) गीति काव्य (ब) मुक्तक काव्य

(स) उक्त दोनों (द) उक्त दोनों नहीं **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न मीरा के पदों में कितने प्रकार के द्वन्द्व हैं-

(अ) 15 *(ब)* 14 *(स)* 12 *(द)* 8 **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न "हैंरी मैं तो प्रेम दीवानी ...." उक्त पंक्तियाँ किस रचना की हैं-

(अ) मीरा पदावली (ब) गीत गोविन्द टीका

(स) राग गोविन्द (द) गर्वागीत **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न मीराबाई का 'गर्वागीत' किस स्थान का है-

(अ) मध्यप्रदेश (ब) महाराष्ट्र (स) मेवाड़ (द) गुजरात **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न मीराबाई का काव्य है-

(अ) प्रेम प्रधान (ब) रस प्रधान

(स) रीति प्रधान (द) उक्त कोई नहीं **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न केशवदास का जन्म कब हुआ-

(अ) सं. 1612 *(ब) सं.* 1513 *(स) सं.* 1812 *(द) सं.* 1920 **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न केशवदास की रचनाएं हैं-

(अ) नखशिख *(ब) बारहमासा*

(स) राम अलंकृत मंजरी *(द) उपरोक्त सभी* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न बिहारी के 'सतसई' नामक ग्रन्थ में दोहे हैं-

(अ) 507 *(ब)* 726 *(स)* 125 *(द)* 620 **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न बिहारी श्रेष्ठ कवि माने गये हैं-

(अ) मुक्तक काव्य परम्परा के *(ब) भक्ति भावना के*

(स) वीर रस के *(द) वात्सल्य रस के* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न घनानंद का नाम रीतिकाल के किन कवियों में गिना जाता है-

(अ) स्वच्छन्द काव्य धारा *(ब) ब्रजभाषा*

(स) श्रृंगार रस *(द) उक्त कोई नहीं* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न घनानंद की प्रमुख रचनाएं हैं-

(अ) प्रेम सरोवर *(ब) ब्रज विलास*

(स) प्रीति पाबस *(द) उक्त सभी* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं-

(अ) भूषण (ब) घनानंद (स) भारतेन्दु (द) उक्त कोई नहीं **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न घनानंद की कुल रचनाएं हैं-

(अ) 90 *(ब)* 95 *(स)* 74 *(द)* 41 **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न नंददास का जन्म हुआ-

(अ) 1533 *(ब)* 1535 *(स)* 1537 *(द)* 1601 **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न नंददास किस मार्ग के अनुयायी थे-

(अ) पुष्टि मार्ग *(ब) भक्ति मार्ग*

(स) प्रेम मार्ग *(द) वैचित्र्य मार्ग* **उत्तर-** *(अ)*